Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

॥ओ३म॥

योग-जीवन

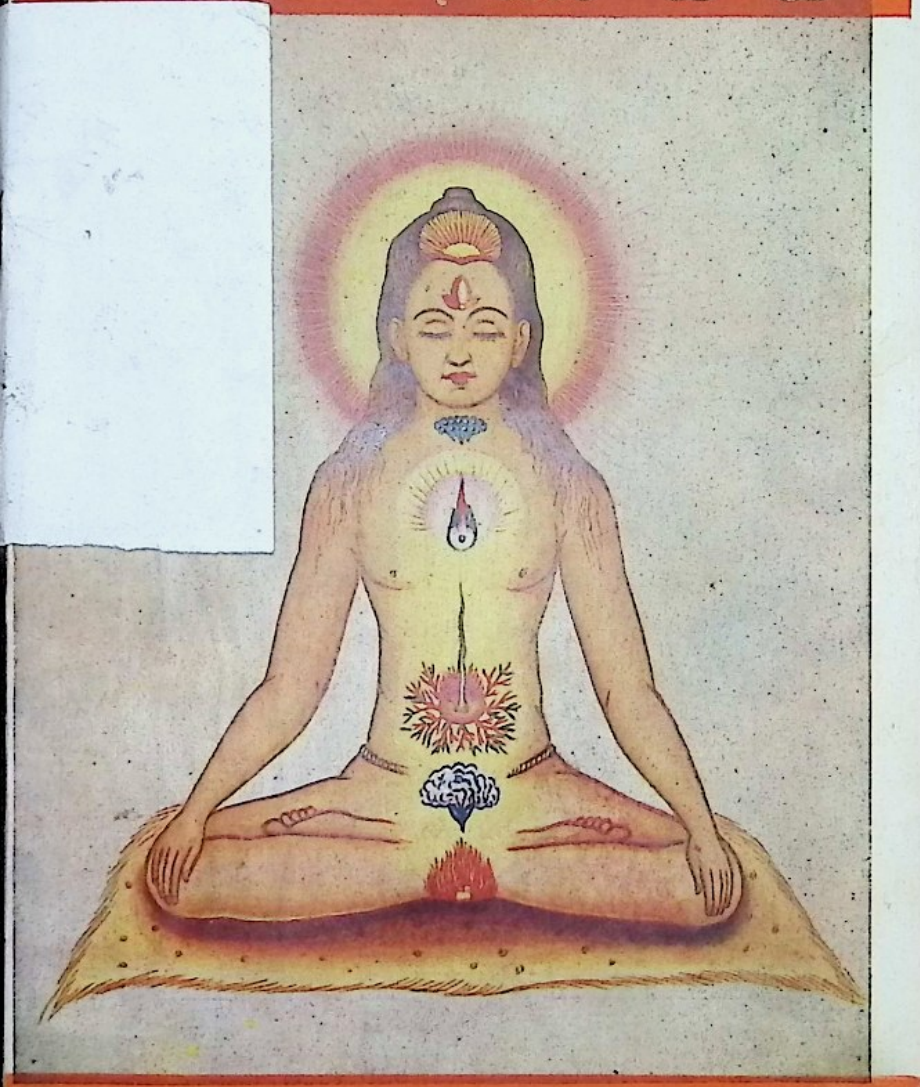

जन जाग्रत मासिक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

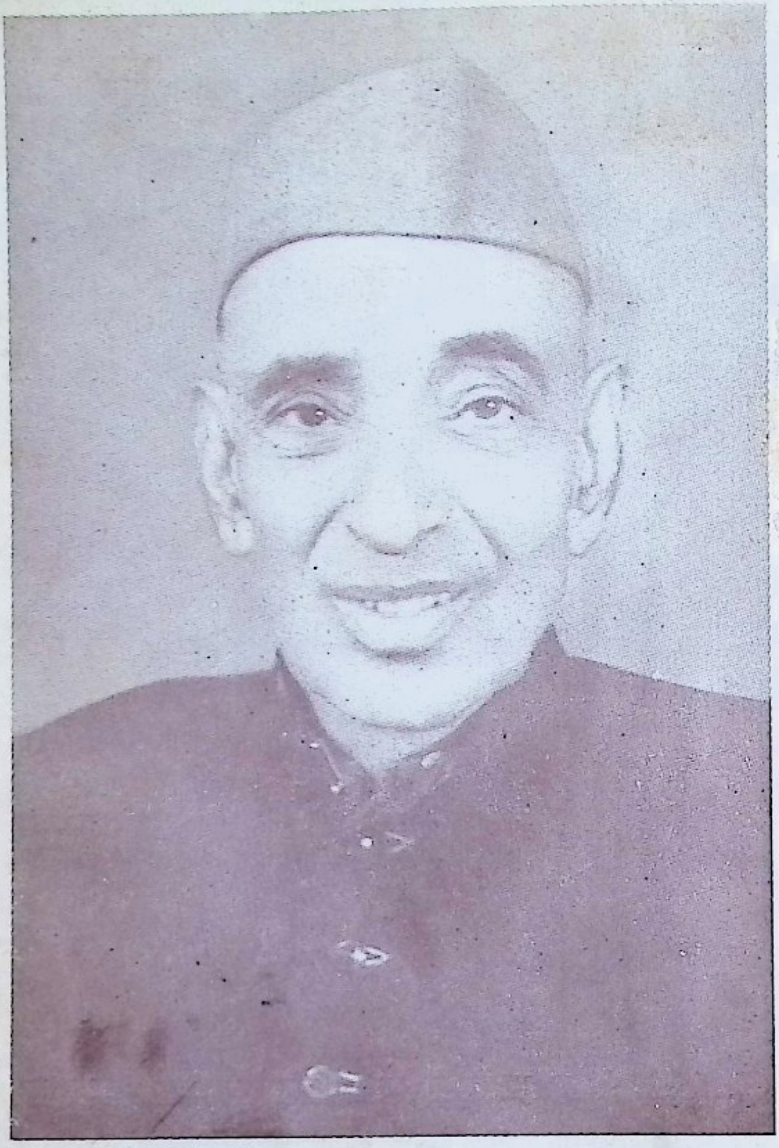

योग-जीवन के लेखक : श्री हुक्मचन्द जी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

॥ ओ३म ॥

योग-जीवन

योग का जीवन में उपयोग और उसके द्वारा
समस्त रोग व दुःख कारणों को दूर कर
शान्ति और आनन्द की प्राप्ति
का मार्गदर्शन

लेखक
श्री हुक्मचन्द जी

अप्रैल १९७०

जन-ज्ञान-(मासिक)
नई दिल्ली-५

मूल्य २)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन-ज्ञान (मासिक)
१५९७ हरध्यानसिंह रोड,
करौलबाग,
नई दिल्ली-५

आर्य जनता का अपना
प्रतिनिधि प्रकाशन

भारतेन्द्रनाथ साहित्यालंकार
के संरक्षण-निर्देशन में
प्रकाशित

सम्पादक—
राकेश रानी

धरती के प्रत्येक मानव के हृदय
मन्दिर पर "वेद ज्ञान" की
पावन पताका फहराने के
लिए कृत संकल्प

फोन नं० ५६६६३९

वार्षिक मूल्य १०)
एक प्रति ८० पैसे
विदेश में १ पौंड

इस अंक का मूल्य २)

संसार में वेद का सन्देश फैलाने और वैदिक साहित्य प्रकाशन के लिए

१. जन-ज्ञान (मासिक) के सदस्य बनें।

वार्षिक मूल्य १०) : आजीवन १५१)

नमूना पत्र लिखकर बिना मूल्य मँगाएँ

२. वैदिक साहित्य व अंग्रेजी के ग्रन्थ प्रकाशन हेतु व ईसाइयत के प्रवाह को रोकने के लिए उदारतापूर्वक सहयोग दीजिए।

संचालक :

जन-ज्ञान (मासिक)

१५९७, हरध्यानसिंह मार्ग, करौल बाग, नई दिल्ली-५

वर्ष २ अङ्क १२

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सम्पादकीय

जीवन का मार्ग

यह अंक 'जन-ज्ञान' के द्वितीय वर्ष का बारहवाँ अंक है । प्रभु कृपा से पलक झपकते २ वर्ष बीत गए । दो वर्षों में 'जन-ज्ञान' ने क्या किया, यह बताने की संभवतः आवश्यकता नहीं ।

कठिनतम परिस्थितियों से जूझते हुए बिना एक पैसा भी पास हुए कैसे यह सब कुछ हो रहा है,···आज के युग का यह दसवाँ आश्चर्य है । फिर भी सब काम जनता के आशीर्वाद और परमपिता परमात्मा की अनुकम्पा से पूरे होते हैं ।

मुझे जब सम्पादन सौंपा गया था तब बड़ा संकोच था सब कुछ संभालते हुए, किन्तु पिछले १८ मास में मैंने अपने जीवन का प्रत्येक क्षण 'जन-ज्ञान' के अर्पित कर दिया है । और सब कुछ भूलकर इसे संभालने का, आगे बढ़ाने का यत्न कर रही हूँ ।

इन २ वर्षों की प्रगति का सम्पूर्ण श्रेय है उन कृपालु सदस्यों को, जिन्होंने इसे अपना ही समझ सदा आशीर्वाद भी दिया और सहयोग भी, अभी त्रुटियाँ बहुत हैं, हमें उनका ज्ञान भी है फिर भी जितने साधन और हमारी योग्यता है उसके अनुसार देव दयानन्द का कार्य सम्पन्न करने का हम यत्न कर रहे हैं ।

अंधेरा और निराशा दूर कर सर्वत्र प्रकाश और आशा की किरणे प्रसारित करने के लिए हम कृत संकल्प हैं । हमारी इच्छा है कि महर्षि दयानन्द के वीर सैनिक जागें और विश्व विजय के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होकर लगें । धरती के प्रत्येक मनुष्य तक प्रभु का संदेश पहुँचाना ही हमारा एक मात्र लक्ष्य है ।

अगले अंक से 'जन-ज्ञान' तीसरे वर्ष में प्रवेश करेगा । यह वर्ष कैसा बीतेगा यह तो अंतर्यामी ही जानता है, हाँ इतनी इच्छा अवश्य है कि हम इसे **कम से कम १० हजार छाप सकें** । यह कोई बड़ी बात नहीं, हमारे सदस्य गण यदि १-१ **नया सदस्य** और नए वर्ष के उपलक्ष्य में बना दें तो हमारी यह इच्छा पूरी हो सकती है ।

मन कहता है आगे बढ़ो, बढ़ते हैं तो साधनों का अभाव जंजीर बन कर रोक लेता है । प्रभु, हमें शक्ति दो कि हम जँजीरें तोड़ कर दौड़ सकें । 'ज्ञान' का प्रकाश फैलाते हुए प्राण भले ही चले जाएं पर हमारे पैर कभी लड़खड़ाएँ नहीं । हमारा सहारा तो प्रभु ! तुम्हीं हो, तुम्हारा हाथ सिर पर हो तो फिर विजय दूर कैसे रह सकती है—

भाई···बहिन ! आप भी अपनी इस दुर्बल बहन को आगे बढ़ने में सहयोग दें । आपका स्नेह ही हमारी शक्ति है । आभारी हूँ, हृदय से, बढ़ती चली जा रही हूँ इस विश्वास से, कि मंजिल से पहले अभियान रुकेगा नहीं—क्योंकि आगे बढ़ना ही जीवन है—

—राकेश रानी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विश्व की महान् विभूति : राष्ट्र गौरव

तपस्वी-योगी और प्रभु चरणों में लीन श्रद्धेय श्री स्वामी योगेश्वरानन्द जी सरस्वती के पवित्र चरणों में

'योग-जीवन' सादर-अर्पित है···

—राकेश रानी
संपादक

श्रद्धेय श्री स्वामी योगेश्वरानन्द जी

देश जिन विभूतियों पर आज भी अभिमान कर सकता है और जो निराशा के वर्तमान में आशा की किरण बन सकते हैं, ऐसे व्यक्तियों में एक हैं श्री स्वामी योगेश्वरानन्दजी महाराज। १९४१-४२ कुछ दिनों आपके चरणों में रहने का सौभाग्य मिला। वे दिन हमारे जीवन की अनमोल निधि हैं। तब से अनेक बार आप के दर्शनों की इच्छा हुई पर व्यस्तता से चाह कर भी एक-एक दिन करते, २८ वर्ष बीत गए।

और फिर ९ मार्च को देहरादून उत्सव पर गया तो मन नहीं माना, ९ की प्रातः ९ बजे स्वर्गाश्रम के सामने ऊँचे पर्वत की गोदी में बसे योग निकेतन पहुँचा तो लगा जीवन सफल हो गया। शान्ति का साकार नृत्य और आनन्द का संगीत सर्वत्र थिरक रहा था।

स्वामीजी के दर्शन किए, उनका आशीर्वाद और प्रोत्साहन मिला। हमारे सारे कार्यों की सूचना उनके पास थी! उन्होंने मुग्ध भाव से योग और वेद के संदेश को सर्वत्र फैलाने में लगे रहने की आवश्यकता बतायी। उनका कथन था कि आज मनुष्य को बचाने के लिए महर्षि दयानन्द के सच्चे अनुयायियों को ईश्वर पर विश्वास रख प्राणों के उत्सर्ग की भावना से कर्म करना होगा।

उनके समीप बिताया एक घण्टा हमारी अनमोल निधि बन गयी है। नए उत्साह और आत्मविश्वास से हम गुरुदेव दयानन्द के संदेश को सर्वत्र प्रसारित करने का व्रत लेते हैं।

स्वामी योगेश्वरानन्दजी जैसे महान् पुरुषों का आशीर्वाद मिल गया तो फिर सफलता कैसे दूर रह सकती है।

—भारतेन्द्रनाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हम क्या कर रहे हैं ?

जन-ज्ञान मासिक ने

अपने प्रथम वर्ष में ४ विशेषांक भेंट किये

१—श्रद्धांजलि अंक　　२—अध्यात्म अंक

३—ऋषि जीवन　　४—क्रांतिकारी दयानन्द

जिनका मूल्य था ४.७५ पैसे : वार्षिक शुल्क लिया ६)

द्वितीय वर्ष में ५ विशेषांक भेंट किए

१—मां गायत्री　　२—वेद-ज्योति

३—वैदिक गीता　　४—वैदिक अध्यात्म ज्योति　　५—योग जीवन

जिनका मूल्य था ६.७५ पैसे। वार्षिक शुल्क लिया ८) और १०)

इनके अतिरिक्त ईसाई निरोध के ग्यारह ट्रेक्ट लाखों की संख्या में छापे व बाँटें

वैदिक विचारधारा प्रसार के लिए ३२ पुस्तकें हजारों को संख्या में बाँटीं।

हमारे पास धन न था न है, केवल प्रभु के भरोसे और आर्य जनता के आशीर्वाद से जो कार्य किया वह प्रत्यक्ष है।

हम योजनाओं में नहीं, कार्य में विश्वास रखते हैं

हमारा कार्य देख कर जिन्हें हमारी कार्यक्षमता और भावना पर विश्वास हो

हम केवल उन्हीं ऋषि भक्तों के सम्मुख भिक्षापात्र लेकर उपस्थित हैं। आप जितना देंगे, हम उतना कार्य करते जायेंगे।

आशीर्वाद भी दीजिए और स्नेह भी

अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशन के लिए आप के सहयोग की राह देख रहे हैं

—राकेश रानी

सम्पादक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सच्चो योग विद्या के प्रकाश स्तम्भ

योगीराज देव पुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और अब छप कर तैयार है—

एक ऐसी पुस्तक

★ जो लाखों की संख्या में बंटनी चाहिए

★ जो प्रत्येक अंग्रेजी पढ़े-लिखे तक पहुँचनी चाहिए

★ विदेशों में हजारों भेजनी चाहिए।

Teachings of Swami Dayananda

हमने तैयार कर दी : अब देखनी है

आप की ऋषि भक्ति

दयानन्द का नाम लेने वाले प्रत्येक
आर्य भाई और बहन का कर्तव्य
है कि इसे मंगाएं और बाँटें

मूल्य ७५ पैसे

५५) सैकड़ा

जन-ज्ञान-प्रकाशन

१५९७, हरध्यानसिंह रोड, नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

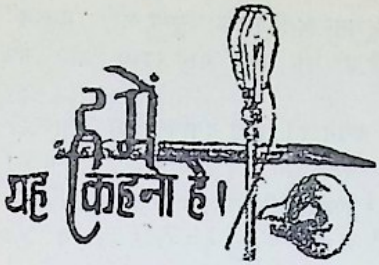

प्रभु की राह

योग शब्द का अर्थ है जोड़ना, मिलाना। वस्तुतः हम जीवन में जो कुछ भी करते हैं वह हमें किसी के समीप ले जाने का कारण नहीं बनता अपितु हम जो कुछ भी जीवन में संग्रह करना चाहते हैं उसका हमसे कोई भी तो सम्बन्ध नहीं होता।

खाली हाथ आए और खाली हाथ जाएंगे, का दर्शन "योग" का नहीं "भोग" का दर्शन है। वस्तुतः हम कुछ लेकर इस धरती पर आते हैं और जो कुछ संचित कर्म हम लेकर आते हैं उनके बल पर मनुष्य शरीर द्वारा कुछ ऐसा संग्रह करने के लिए आते हैं जिससे हम मिल सकें उस प्रभु से, जिससे मिलना ही 'मेरा' चरम लक्ष्य है।

'योग' नाम है उस मार्ग का जो हमें 'सत्य' के द्वारा 'सत्य' के दर्शन कराता है। 'योग' वह मंत्र है जिसकी सिद्धि के पश्चात् मनुष्य को वह सभी कुछ मिल जाता है जो आनन्द का कारण है। जन्म से मृत्यु तक 'माँ' की गोदी में झूला झूलते हुए मुस्कराते रहना कौन नहीं चाहता ? बस 'योग' जीवन की इसे उद्देश्य-लालसा को तृप्त करता है।

जीवन में दुःख न मिले क्या इसकी गारंटी की जा सकती है ? हमारा उत्तर हाँ में है। हम ने बहुत गहरे बैठ कर अन्तर में झाँका है, हमारी पूँजी यही पावन स्मृतियाँ हैं जिनसे हमें कठिन से कठिन घड़ियों में भी कभी कष्ट का अनुभव नहीं हुआ।

प्रभु का नाम सभी लेते हैं पर कितने हैं जिन्होंने उसे देखा है ? आप कहते हैं प्रभु सर्व व्यापक है, कण-कण में विद्यमान है पर क्या कभी एक क्षण को भी आप मिले हैं उससे···? यदि नहीं, तो फिर बताइए आप कोआनन्द कैसे मिले ?

प्रभु से मिलना, अपने को प्रकाश के लिए उससे जोड़ना, क्या असाधारण बात है। उत्तर 'हाँ' में भी हो सकता है और नहीं में भी। क्योंकि भोग मार्ग पर चलकर कोई कभी भी प्रभु को नहीं जान सकता और 'योग' के मार्ग पर चल प्रभु दूर नहीं रह सकता।

आज के युग में 'योग' शब्द भी भ्रमित अर्थों में प्रयुक्त हो रहा है। योग की माया ने सर्वत्र ऐसा जाल फैलाया है कि शब्दों के अर्थ ही बदल रहे हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

फिर भी यह 'सत्य' किसी को नहीं भूलना चाहिए कि मनुष्य को "मनुष्य" बनकर धरती पर रहना यदि सीखना है तो उसे 'भोग' मार्ग त्याग "योग" की राह पर चलना ही होगा।

और सत्य तो यह है कि हम जो अपने को ऋषि दयानन्द का अनुयायी कहते हैं, दयानन्द के मार्ग से कोसों दूर भटक गए हैं। हम नाम दयानन्द का लेते हैं पर काम करते हैं अपने मन के। ईश्वर भक्ति और योग को हमने व्यवहार द्वारा सर्वथा त्याज्य घोषित कर दिया है। किन्तु हमारी दृष्टि में देव दयानन्द द्वारा आरंभ महायज्ञ ने जिस महान् क्रांति को जन्म दिया था वह क्रांति न राज्यों की थी न नाम की। वह क्रांति भोगवाद की समाप्ति और अध्यात्मवाद की स्थापना के लिए थी।

जीवन गहराइयों में डूबता जा रहा है। मन व्यथा का भंडार बन गया है। गंगा के पावन तट पर ऋषिकेश में एक शिला पर बैठे हुए इस समय यह पंक्तियाँ जब लिखी जा रही हैं तब सोच रहा हूँ कि जो शाँति का संगीत यहां बह रहा है, जो गीत यहाँ गूँज रहे हैं उनकी तुलना में विश्व का साम्राज्य भी कितना छोटा है।

प्रभु पुत्रो! जीवन का हर क्षण हमारी विदायी का सूचक है। हमें यहाँ से जाना है, यह शरीर सदा तो नहीं रहेगा फिर क्या हमने जाने की तैयारी की है। कभी सोचा भी है कि जाना भी होगा···यदि नहीं, तो आओ एक बार फिर सत्य की ओर, और सोचो तो सही कि हमने क्या पाया और क्या खोया ?

हृदय तंत्री बजा कर गीत गाओ,
सोचकर अपना मधुर जीवन बनाओ।
प्यार कर लो प्राण से तुम मुस्कराओ।
आज फिर अपने प्रभु की शरण आओ।।

चिता की लपटों पर शरीर की समाप्ति का क्षण कब आएगा ? मालूम है क्या···यदि नहीं तो सोचो और 'योग' की सुगन्ध की सुवास से अपने को ऐसा बनाओ कि इस जीवन में 'प्रभु' तुम्हारे साथ रह सकें, तुम प्रभु की गोद में प्रतिपल रह कर मुस्करा सको !

प्रभु की राह 'योग' की राह है। योग की विस्मृति विनाश को निमंत्रण है। जो आग लगी है आज सर्वत्र उसे योग का पावन गंगाजल ही शांत कर सकेगा, ऐसा हमारा विश्वास है। प्रभु कृपा करें कि हम आत्मचिन्तन के सोम रस का पान कर जीवन में वह सब कुछ पाएं जिसके पान और संग्रह के लिए यह शरीर हमें प्राप्त हुआ था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमारे सपने

अंधेरी रातों में ही नहीं दिन के उजाले में भी मैंने सपने देखे हैं, ऐसे सपने जिन्हें देख-देख जीवन की रंगीनियों का साया भी कभी पास नहीं फटका। जीवन के वे सुनहले दिन जिन्हें "जवान" कहा जाता है, कभी धुँधले-धुँधले से भी पास नहीं आए क्योंकि होश संभालने के साथ जो दुनियां मन और मस्तिष्क में छायी थी आज सोच कर कभी-कभी अनुभव होता है कि शायद मैं पागल तो नहीं था।

पागल था या नहीं इसमें किसी को संदेह हो या न हो लेकिन यह तो संदेह से परे की बात है कि आज की दुनियाँ की परिभाषा में मुझे प्रथम श्रेणी का मूर्ख तो कहा ही जा सकता है। पिछले २० साल के अपने कारनामों पर दृष्टि दौड़ाता हूँ तो लगता है कि आखिर मैंने क्या किया···मेरे पास न अपना मकान है, न कोई छोटा-सा भी जमीन का टुकड़ा। घर में न जेवर हैं ,न बैंक बैलेंस। मेरी सारी जमा पूँजी और घर के सारे सामान का मूल्यांकन कोई करे तो शायद वह तीन की संख्या से आगे न बढ़ सकेगा। न कभी अपनी चिन्ता की न परिवार की, एक पागलपन सा लिए लगातार अपनी पूरी साधना और शक्ति से मैंने केवल ऋषि के गीत गाए। राजनीति के विषभरे प्रलोभन को तिलांजलि देकर वेद-प्रचार के लिए जो कुछ कर सकता था किया···क्या खोया क्या पाया, इसकी परख करने का अभी समय नहीं आया···

अभी तो मेरा पागलपन का कहिए या मूर्खता का नशा उतरा नहीं है। कभी अपनी हालत पर सोचता हूँ तो सोचता ही रह जाता हूँ, लेकिन मुझे कभी अपनी राह पर असंतोष नहीं हुआ।

मुझे नहीं भूलती वह घड़ी, १३ अप्रैल १९४५—गुरुकुल के दीक्षान्त समारोह में जब मैं स्नातक हुआ था तो मेरी जन्मदात्री पूज्या जननी ने सार्वजनिक रूप से मुझसे यह याचना की थी या कहिए कि मुझे आदेश दिया था था कि "मैं अपने जीवन में अर्थोपार्जन के लिए कभी कोई काम न करूँ।"

वास्तव में तो मेरा मार्ग किसी के भी प्रति न अहसान है न कुछ और मैं तो अपनी उस स्वर्गीया आदर्श माँ के आदेश का पालन कर रहा हूँ, जिसने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मुझे यह शरीर दिया था। और अपने प्रभु से मैंने यदि कभी कुछ मांगा है तो केवल यही कि प्रभु मुझे कभी संसार के चकाचौंध से विचलित न करना।

जीवन की हर सांस के साथ मैंने अपने निश्चय के पालन का यत्न किया है। और आज भी बिना साधन के लगा हूँ अपने सपने पूरे करने में। सचमुच मेरे सपनों को मूर्त रूप देना क्या संभव है? इस प्रश्न का उत्तर तो अभी नहीं दे सकता, लेकिन इच्छा अवश्य है कि प्रभु कृपा से कुछ ऐसा हो सके कि महर्षि दयानन्द के सपनों का संसार बने। मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य बने, उसके बीच खड़ी दीवारें समाप्त हों और प्रभु की अमृत वाणी वेद की ऋचाओं का संगीत धरती के समस्त प्रभु पुत्रों के अंतर में ज्योति-झंकृतियां उत्पन्न करने में समर्थ हो।

सचमुच वह दिन धरती के इतिहास का स्वर्ण दिन होगा जब सारी धरती के मन और मस्तिष्क एक स्वर में एक गीत गाएँगे। जब रूस, पाकिस्तान, चीन, अमेरिका की धरती से एक से स्वर गूंजेंगे और मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य बन धरती पर स्वर्ग साकार लाएगा।

यह सपना भले ही किसी को पागलों का लगे लेकिन अगर श्रद्धा और आदर से महर्षि दयानन्द के जीवन को कोई देख सके तो उसे दीखेगा कि ऋषि ने समाधि का सुख छोड़ विष पान ईंट पत्थर की बौछार में इसी स्वप्न को मूर्त रूप देने के लिए जीवन बलिदान किया था।

शहीद लेखराम और श्रद्धानन्द की शहादत किसी भौतिक स्वार्थ के लिए नहीं अपितु इसी सपने की पूर्ति के लिए थी। यह सच है कि आज ईश्वर विश्वास के अभाव में दयानन्द के अनुयायी मार्ग भटक चुके हैं। उनके मन और मस्तिष्क में दयानन्द का नाम भले ही हो दयानन्द की आत्मा नहीं है।

आज जरूरत है धरती को ऐसे दयानन्द के अनुयायियों की, जो अपना सब कुछ दयानन्द के चरणों में अर्पित कर सकें। सर पर कफन बांध सर्वस्व की आहुति दे दयानन्द के स्वप्न पूरे करने के लिए कुछ कर सकें।

हर घर आंगन में ऋषि दयानन्द की जय पताका फहराने का समय आ गया है। अगर मार्क्स के चेले धरती पर लाल झंडा फहराने का सपना देख सकते हैं, अगर ईसा के शिष्य धरती पर ईसा का साम्राज्य स्थापित करने के मंसूबे बांध सकते हैं तो क्या महर्षि दयानन्द के वीर अनुयायियों के शरीर में ऋषि-मुनियों का रक्त प्रवाहित नहीं हो रहा कि वे धरती के कोने-कोने में, वैदिक "ओ३म्" पताका लहराने का व्रत लें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पता नहीं क्यों आर्यों का स्वाभिमान सोया पड़ा है। खून खौलता क्यों नहीं, त्याग और बलिदान की अग्नि में आहुति देने की तैयारी क्यों नहीं होती।

आर्य समाज मंदिरों में व्यक्ति दीखते है पर उनमें प्राणों का प्रकाश नहीं दीखता। इच्छा होती है कि कहूँ, बहुत जोर से पुकारूँ कि ओ दयानन्द का नाम लेने वालो! कुछ ऐसा करो कि धरती पर रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति दयानन्द के गीत गाने लग जाए।

भोग की ज्वालाएँ धरती को झुलसा रही हैं। मनुष्य ने अपने को मिटा कर एक नए शैतान को अपने रूप में जन्म दे दिया है। आज उस अग्नि का धधकाने की जरूरत है जिसमें शैतान जल जाए और इन्सान का फिर से जन्म हो।

यह प्रभु का काम है, प्रभु पर भरोसा हो तो मैदान में आओ। अपने पर विश्वास हो तो कर्म क्षेत्र की पुकार सुनो—

जीवन बीत जाएगा योंही चलते चलते,
इस धरती से तुम को जाना होगा।
जाना ही है तो कुछ काम करो प्रिय, ऐसे,
जिससे सतयुग साकार यहाँ पर आए।

मन में प्रभु की ज्योति जगाओ, आत्मविश्वास पैदा करो आर्य वीरो! विश्व विजय के लिए अभियान आरम्भ करो। मैंने बिना साधनों के 'जन-ज्ञान' द्वारा युद्ध का बिगुलबजा दिया है। शाम को सोता हूँ तो अगले दिन के भोजन का भी प्रबन्ध नहीं होता, फिर भी हज़ारों रुपए मासिक का साहित्य तैयार हो रहा है। सचमुच मेरा प्रभु मेरे सारे काम कर जाता है।

आज तक कोई काम नहीं रुका, रुकेगा भी नहीं, यह विश्वास ही मेरी पूंजी है। और आज मैं कहता हूँ कि अपने-अपने क्षेत्र में कार्य आरम्भ करो। भूखे-रहो, व्रत रखो कष्ट उठाओ पर अपने-अपने क्षेत्र में आर्य विचारधारा फैलाने का संकल्प लो। गाँव-गाँव गली-गली और हर घर-आँगन में ऋषि दयानन्द का संदेश फैलाओ। साहित्य के अस्त्र से विजय अभियान आरम्भ करो। मूर्तिपूजा, अंधविश्वास, मत-वाद, प्रांतीयता, नास्तिकता, भौतिकता के विरुद्ध युद्ध घोषणा करो। और अपना सारा बल दयानन्द की जय के लिए लगा दो।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्य वीर दल संगठित करो

प्रत्येक आर्य समाज में आर्य वीर दल की स्थापना अनिवार्य रूप से की जानी चाहिए। हमारी युवा शक्ति बिखर रही है। आर्य समाज के अधिकारियों को यह करना ही चाहिए कि वे आर्य समाज को शक्तिशाली बनाने के लिए 'आर्य वीर दल' को पूरे बल से अपने-अपने समाज में संचालित करें।

वीभत्स अश्लीलता और उद्दाम वासनात्मक प्रवृत्तियों के विरोध के लिए आर्य वीर ही सक्षम हो सकते हैं। विध्वसकारी देश द्रोही शक्तियों का फुंकारता फन कुचलने के लिए आर्य-वीर-दल शीघ्र से शीघ्र सर्वत्र गठित होने ही चाहिएं।

आर्य वीर दल ही आर्य समाज का वैधानिक संगठन है। इसका संचालन आर्य समाज के सर्वोच्च संगठन सार्वदेशिक सभा द्वारा हो रहा है। इसका विधान, नियम, अनुशासन आर्य समाज को शक्तिशाली बनाने का साधन है।

वस्तुतः अज्ञान अन्याय और अभाव के विरुद्ध तीव्रतम आन्दोलन के लिए कृतसंकल्प आर्य वीर दल द्वारा ही आज देश को बचाया जा सकता है।

हमारा सभी आर्य समाज के अधिकारियों से सानुरोध निवेदन है कि वे अपने-अपने क्षेत्र में आर्य वीर दल की अविलंब स्थापना करें। जहाँ आर्य समाजें नहीं भी हैं वहाँ आर्य युवक **आर्यवीर दल** की स्वयं स्थापना करें। इस संबंध में जो भी गतिविधि हो या जिस सहयोग की आवश्यकता हो उसके लिए केन्द्रीय कार्यालय सार्वदेशिक आर्यवीर दल रामलीला मैदान नई दिल्ली से संपर्क करें। हमें विश्वास है कि देश के आर्य समाज और आर्य युवक जागेंगे और १९७० के अंत तक सारे देश में आर्यवीर दल संगठन का जाल बिछ जाएगा।

धन्यवाद

शिवरात्री पर हमारी प्रार्थना पर जिन उदार दानी महानुभावों ने धन भेज कर सहयोग दिया है। हम उनके आभारी हैं। सभी की नाम सूचि अगले अंक दें छपेगी।

२० के लगभग पुस्तकें तैयार पड़ी हैं प्रकाशन के लिए। काश कि हम में ऋषि का संदेश फैलाने की भावना जाग सकती—

आशीर्वाद और स्नेह इसी भाँति देते रहें। तीसरे वर्ष में प्रवेश करते हुए जनज्ञान शीघ्र से शीघ्र १० हजार तक पहुँचने की आशा कर रहा है।

—भारतेन्द्रनाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लेखक की ओर से

"समाचार पत्रों" के स्तम्भों में, वर्षों से, मेरे लेख छपते आ रहे हैं। अब भी यह प्रसंग जारी है। मेरी तो पुस्तक लिखने की कोई इच्छा नहीं थी। पर "लेख"' पढ़ने वाले कई सज्जनों ने पत्रों द्वारा बल पूर्वक माँग की कि लेखों को पुस्तक का रूप दे दिया जाय। अजमल खाँ बाग, करौल बाग, नयी दिल्ली में मैं प्रतिदिन योगासन कक्षा चलाता हूँ। इस कक्षा के साथियों ने भी माँग की कि पुस्तक अवश्य लिखी जाए, विशेषतः मेरे मित्र श्री सन्त-राम जी ने मेरी हिम्मत बंधायी। वस्तुतः, यह पुस्तक उनकी प्रेरणा का ही परिणाम है।

उत्साह बढ़ाने वाले दूसरे हैं मेरे चिरंजीव पुत्र श्री बलदेव राज जी। मेरठ सदर में इनका इमारती लकड़ी का अपना कारोबार है। पर, अपने चिरंजीव का धर्म प्रेम देख मेरा उत्साह, स्वतः, बढ़ गया।

अब प्रश्न उठा कि पत्रों में तो कई विषयों पर अलग-अलग लेख लिखे गये हैं। किस विषय को पहले पुस्तक का रूप दिया जाए। मुझे यही अच्छा लगा—फिर मेरा क्षेत्र भी यही है और आज की दुःखी और सन्तप्त जनता को इस शिक्षा की बड़ी जरूरत भी है—इसलिए निश्चय किया कि "योग" विषय पर ही पहले पुस्तक लिखनी चाहिए। मैंने योग के प्रत्येक अंग को पाठकों के सम्मुख रखने का प्रयत्न किया है। महात्मा गाँधी के जीवन, श्री अरविन्द घोष, स्वामी शिवानन्द जी, अजमेर के आचार्य भद्रसेन जी इत्यादि की पुस्तकों से मैंने सहायता ली है। इन सबका मैं आभारी हूँ। संक्षेप से विभिन्न वाटिकाओं से पुष्प चुनकर यह कुसुम गुच्छ सजाकर जनता के चरणों भेंट करता हूँ

उपर्युक्त तथा अन्य सज्जन—जिनसे इस पुस्तक की तैयारी में किसी प्रकार की भी सहायता मिली है, उन सबका धन्यवाद करना मैं अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ।

करौल बाग नई, दिल्ली-५ —हुक्मचन्द (बग्गा)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लेखक परिचय

मुंडक उपनिषद् में ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति का वर्णन करते हुए कहा गया है :—

आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावनेष ब्रह्मविदां वरिष्ठ।
३।१।४॥

ऐसे व्यक्ति का क्रीड़ा क्षेत्र प्रकृति नहीं किन्तु आत्मा होता है। और उसका अनुराग सांसारिक पदार्थों से नहीं, किन्तु अपने आत्म तत्त्व से होता है। पर वह क्रियाहीन नहीं हो जाता। आत्म ज्ञान में संलग्न उसका जीवन क्रियाशील होता है। इसीलिए, ब्रह्मवादियों में वह उच्च पद का अधिकारी होता है।

इस पुस्तक के लेखक श्री हुक्मचन्द जी इसी कोटि के श्रेष्ठ पुरुष हैं। मैं उन्हें गत लगभग २० वर्ष से अत्यन्त समीपता से जानता हूँ। अजमल खाँ बाग, करौल बाग, नयी दिल्ली में वे प्रतिदिन भोर वेला में योगासन कक्षा और आध्यात्मिक सत्संग लगाते हैं। उन्हीं की प्रेरणा से लगभग १८ वर्ष पूर्व इसी बाग में "प्रातः आर्य-सत्संग" प्रारम्भ हुआ जिसमें मैं प्रवचन करता हूँ। इस प्रकार, लगभग प्रतिदिन ही, मुझे उनके साक्षात्कार का सौभाग्य मिलता है। मैंने उनमें कई अनुपम गुण पाये और उनके जीवन से बहुत प्रभावित हुआ। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पहले के युग के कई तपे, मंजे, सधे और एकनिष्ठ व्यक्ति आज जब मार्गभ्रष्ट, कर्तव्यच्युत और सस्ती वाह वाही व पदलोलुपता के पीछे भागते देखे जाते हैं तो, बहुधा, हृदय निराशा, खेद और विषाद से भर जाता है। पर भाई हुक्मचन्द जी का जीवन इस रेगिस्तान में उस वन-कुंज के सदृश है जहाँ भटकता यात्री शान्ति, विश्राम और प्रेरणा प्राप्त कर सकता है। गीता में वर्णित दैवी सम्पत्ति का संग्रह करने में अहर्निश मौनभाव से तत्पर इस ब्रह्मनिष्ठ का जीवन, वस्तुतः, बड़ा स्फूर्तिप्रद है।

मुझे विश्वास है कि अनुभवों से भरी इस पुस्तक से अध्यात्म प्रेमी और योगानुरागी भाई-बहिन पूरा लाभ उठाएँगे।

नई दिल्ली,

—दीनानाथ सिद्धान्तालंकार
—पत्रकार—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१

तीन ताप

इस पुस्तक के सम्बन्ध में दो शब्द विशेष महत्त्व के हैं, योग और रोग। प्रश्न है, योग कैसे रोग का नाशक है? इस विषय पर विचार करने से पहले हमें इन दोनों शब्दों के महत्त्व और इन की वास्तविकता पर विचार करने की आवश्यकता है। हम पहले रोग के बारे में ही कुछ विचार करेंगे, क्योंकि, सिद्धान्त यही है कि पहले रोग के कारण का पता लगाया जाता है और बाद में उसकी चिकित्सा होती है।

रोग एक प्रकार का दुःख ही है। शास्त्रों में इस दुःख को तीन प्रकार का माना गया है। इन्हें तीन ताप के नाम से कहा गया है। इन तीन तापों को राम चरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास ने इस प्रकार कहा है :—

देहिक भौतिक दैविक तापा,
राम राज नहीं काहू इह व्यापा।

अर्थात्, देह सम्बन्धी, या दूसरों से आने वाले या देव सम्बन्धी—तीनों ताप राम राज्य में किसी को न होते थे। तुलसीदास जी ने इन थोड़े शब्दों में ही गम्भीर तत्व भर दिया है। आजकल का मानव कभी ऐसे युग की कल्पना भी नहीं कर सकता है, जहां तीनों तापों का एकदम अभाव हो। आज शायद ही कोई ऐसा सौभाग्यशाली व्यक्ति होगा जो इन तीनों में से तीनों का, दो का व किसी एक का शिकार न हो। इसका कारण गोस्वामी तुलसीदास ने इन शब्दों में बता दिया है :—

मोह सकल व्याधिन को मूला,
तेहीं ते उपजें बहु शूला।

समस्त शारीरिक, मानसिक, आत्मिक—व्याधियों का भूल मोह है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसी से सब दुःख पैदा होते हैं, चाहे वह मोह अपने तन से, भोजन से, धन से या अपने स्वजनों से हो। तुलसी महाकवि इसकी व्याख्या करते हुए दूसरे स्थान पर कहते हैं :—

हनुमद् आदि सब बानर बीरा,
धरे मनोहर मनुज शरीरा।

अर्थात्, जब रावण मर गया तो हनुमान् आदि सब वानर नर हो गये। वानर बन्दर को नहीं कहते। हनुमान् की पूंछ लगाकर यह भ्रम पैदा कर दिया गया है। वस्तुतः वानर कहते हैं, अविकसित मानव को, जिस के अन्दर रावण की भावनाएं मौजूद हों। नर कहते हैं, विकसित मानव को। अब रामायण की कथा से ध्यान हटा कर इसी बात को शरीर पर लगाया जाता है। १० इन्द्रियां रावण के १० सिरों के समान हैं। चंचल मन जिसे दूसरे सम्प्रदाय वाले शैतान कहते हैं—रावण के ग्यारहवें सिर के सदृश है। अगर १० सिरों को काट भी दिया जाय, अर्थात् ५ ज्ञानेन्द्रिय और ५ कर्मेन्द्रिय, इन पर दमन भी किया जाए, तो भी ११ वें सिर, अर्थात्, मन के कारण अन्दर का रावण जीवित ही रहेगा। जब तक यह रावण जीवित है, तब तक मानव वानर ही रहेगा। जब इस रावण का अन्त हो जाएगा तो वह वानर से नर बन जाएगा। इसलिए, तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है कि रावण के मरने पर मानव पूर्ण विकसित हो सकता है। अगर मन के विचार शुद्ध हैं, तभी नर है, अन्यथा, वानर है। इसी दृष्टि से वेद में कई जगह कहा गया है कि प्रार्थना वही है जो शुद्ध बुद्धि के लिए की जाए। फलतः, जिसकी बुद्धि शुद्ध हो जाए, उसके तीनों ताप समाप्त हो जाते हैं।

गुरु नानक ने रोग का स्वरूप इस प्रकार बताया है :—

दुःख दारु सुख रोग भया।

गुरु जी ने सुख को रोग बता दिया है, क्योंकि सुख मिलने पर मनुष्य भगवान् के साथ खिलवाड़ करता है। जिस व्यक्ति को दूध, मक्खन, मलाई, मकान, मोटर, सन्तान आदि पदार्थ प्राप्त हों उसे ही संसार में सुखी माना जाता है। ऐसा मनुष्य, प्रायः, भगवान् की सत्ता से विमुख हो जाता है। इस प्रसंग में मेरे पास अपनी आँखों से देखा एक उदाहरण है।

पंजाब में एक रुई के कारखाना के मालिक का एक नौजवान लड़का था, बहुत सुन्दर और शिक्षित, वह भी कारखाने के कारोबार में शामिल हो गया। रुई के कारोबार में पहले कपास खरीदी जाती है। कारखाने वाले

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आढ़तियों से कपास के गड्डे व ठेले अपने कारखाने में मूल्य निश्चित कर मंगवा लेते हैं। फिर, बम्बई से आने वाली तारों की प्रतीक्षा करते हैं कि अमरीका के बाजार की क्या स्थिति है ? अगर बाजार मन्दा हो जाए, तो निश्चित की गयी दर को कम करने के लिए बेमतलब हीले और बहाने बनाते हैं। कपास नर्म रहे तो उस पर बट्टा लगा लेते हैं। यह सारा बट्टा, लगभग, अनुचित होता है। वह नौजवान भी इसी प्रवाह में बह गया। नमक की खान में सब नमक हो जाते हैं। एक दिन उस नौजवान को वहाँ के एक चौधरी ने कहा "यह ठीक है कि अपनी अमीरी की वजह से—जिसे अत्याचार ही कहना चाहिए—मनुष्य से तो नहीं डरते पर क्या आपको भगवान् का भी डर नहीं है ? उसके दरबार में तो हिसाब देना होगा।" तब इस नौजवान ने बड़े ताव से कहा "कौन भड़ुआ है जो हम से हिसाब मांग सकता है ?" कुछ समय के बाद हुआ यह कि इस नौजवान खूबसूरत लड़के को—जिसके साथ के सुन्दर नौजवान मैंने कम ही देखे हैं—तपेदिक से मेरी आँखों के सामने देर तक दुःख पाकर इंच-इंच गलकर समाप्त हो गया। उसके माता-पिता ने अपनी समूची सम्पत्ति का जोर लगा दिया, पर सब बेकार हुआ। इसी लिए कहा है :—

इन्कलाबे दहर से कह दो, सबक हासिल करें।
वहम में अपने जो कहते हैं, खुदा कुछ भी नहीं ।।

जो अपने हृदय में तो भगवान् की सत्ता को नहीं मानते पर वाणी से ही भगवान् की कृपा का सदा स्मरण करते हैं, वह तब तक ही प्रभु का गुण-गान करते हैं जब तक मक्खन-मलाई मिलती रहे। दुःख-संकट आने पर उससे बचने के लिए प्रभु का सहारा छोड़ अपने धन के बल से —उचित व अनुचित उपायों से—बचने की कोशिश करते हैं। उस समय प्रभु कृपा को भूल जाएँगे। जिसे दुःख में भी प्रभु कृपा का स्मरण रहता है, इसी लिए गुरु नानक के शब्दों में उसका दुःख दारु—दवाई का रूप बन जाता है। इस दुःख का समूलनाश करने के लिए भगवान् से ही प्रार्थना की जाती है। उस समय मनुष्य पश्चात्ताप भी करता है। जो अपने धन-वैभव के जोर से अनुचित साधनों से बचना चाहते हैं उनके अन्दर से दुःख पैदा करने वाले साधनों के प्रति झुकाव दूर नहीं होता। जब तक मूल कारण दूर नहीं होंगे परिणाम कभी ठीक नहीं निकलेगा। इसे ही कार्य-कारण का नियम कहते हैं। आज का मानव कार्य अर्थात् परिणाम को ठीक करने के पीछे भाग रहा है पर कारण की ओर से विमुख है। इसी लिए रोग, दुःख या ताप की जड़ नहीं कटती ; एक अंग्रेज विद्वान् के शब्दों में :—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

It was never the intention nor is the plan of God to produce, disease, but, as a logical consequence and through disobedience of the divine laws of life a disease in produced."

परमात्मा की न तो यह इच्छा थी और न ही उसकी योजना में रोग व ताप को पैदा करना शामिल था, परन्तु जीवन के प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करके हम ने स्वयं ही रोग पैदा कर लिया है। दूसरे शब्दों में, प्रभु के नियमों का उल्लंघन ही तीन तापों को आमंत्रित करता है। मानव तीन तापों से छुटकारा तो चाहता है पर नियम का भंग करना नहीं छोड़ता, कोई धन के बल से और कोई बुद्धि के बल से और कोई अन्य किसी साधन से यत्न करता है। संक्षेपतः, अशुद्ध ढंग से इलाज करके मनुष्य रोग से मुक्ति चाहता है जिसका परिणाम यह है :

मर्ज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की।

❀❀

२

दुःख के कारण

पिछले अध्याय में मैंने रोग तीन प्रकार के बताये। उनमें से इस अध्याय में आध्यात्मिक रोगों के सम्बन्ध में कुछ कहूँगा। इनका सम्बन्ध हमारे शरीर और मन के साथ है और इनके कारण हम स्वयं हैं।

दुःख या रोग कोई भी हो वह कार्य-कारण के नियम के अधीन है। इसे कुछ अधिक स्पष्ट करने के लिए मैं एक घटना का वर्णन करता हूँ।

एक कमरा मेरे बैठने का अलग है। एक दिन मैंने देखा कि कमरे में बिछी दरी पर एक जगह काली मिट्टी पड़ी है। मैंने अपनी पत्नी का ध्यान उस ओर दिलाया। उसने झाड़ू से मिट्टी साफ कर दी। दूसरे दिन फिर वहाँ मिट्टी पड़ी देखी। फिर साफ कर दी गयी। मैंने कहा, इस तरह तो काम नहीं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चलेगा। यह देखना होगा कि मिट्टी गिरती क्यों है ? अचानक ही एक चिड़िया ऊपर लगी फट्टी के सुराख पर आ बैठी और लगी चोंच से छत को कुरेदने, इससे मिट्टी गिरने लगी। मैंने कहा कि "दो दिन तो हम कार्य का इलाज करते रहे, आज कारण समझ में आ गया"। फौरन अपनी लड़की को कह कर एक फट्टी से सुराख बन्द करा दिया। दूसरे दिन मिट्टी का नामो-निशान भी न था। स्पष्ट है, अगर हम किसी रोग या दुःख की जड़ काटना चाहते हैं तो हमें कारण की खोज करनी होगी। तभी सही इलाज हो सकेगा। पर आजकल इस नियम की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। वस्तुतः, छाया तभी होती है, जब कोई ठोस वस्तु हो, अर्थात् छाया का अस्तित्व वस्तु के साथ है। अगर हम छाया को पकड़ना चाहें, तो हमारी पकड़ असफल रहेगी। अगर हम वस्तु को पकड़ लें, तो छाया अपने आप पकड़ में आ जाएगी। वस्तु कार्य है और छाया कारण है। यह मूल भूत सिद्धान्त ठीक प्रकार से आप लोगों के दिमाग में बैठ जाए, तो सब प्रकार के दुःखों का उत्तम इलाज हो जाता है।

अब देखना यह है कि आध्यात्मिक दुःख का कारण क्या है ? यह कारण कभी-कभी समझ में आ जाता है और कई बार समझ में नहीं भी आता। उदाहरण के रूप में, अगर जुकाम हो जाता है तो कभी यह प्रतीत होता है कि खट्टी व गर्म वस्तु खाकर ऊपर से ठंडी वस्तु खाली—इत्यादि। जो ठीक कारण नहीं जानता, वह केवल दवाई से उसे ठीक करने का यत्न करेगा। पर इससे कारण का इलाज तो न हुआ। फल यह होगा कि जुकाम के दुःख की जड़ कभी नहीं हटेगी। दवाई से केवल यह लाभ होगा कि नाक से निकलने वाला गन्दा मादा बाहर आने से रुक जाएगा। बीमार समझेगा कि वह स्वस्थ हो गया है। पर, वही रुका हुआ मादा, समय पाकर, बाहर निकलने का दूसरा मार्ग तलाशेगा। अब इस नये दुःख का कारण कहाँ ढूँढा जाएगा ? मानो अब तो यह पुराना हो गया। इस रोग का कारण तो वह दवाई है जिससे रोग को दबाने की चेष्टा की गयी थी। पर यह पता नहीं लगता कि इस जुकाम की मूल भूत भूल क्या थी ? इस लिए, यह व्यक्ति इसी चक्कर में फंसा रहता है कि एक रोग को दवाई से दबाकर दूसरे रोग को जन्म दे दिया। लेकिन, उसकी समझ में यह बात कभी नहीं बैठती कि प्रारम्भ में ही जुकाम का अशुद्ध इलाज था।

अब उस व्यक्ति के सम्बन्ध में विचारें जिसे उस हेतु का पता नहीं जो जुकाम का मूल कारण है। वह सोचता है, कारण समझ में नहीं आ रहा परन्तु

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मूल रूप में वह जानता है कि इसके पीछे उसकी कोई अपनी भूल ही है। चाहे वह अधिक खाने के कारण हो, अथवा अशुद्ध इलाज से। अवश्य ही, कोई ऐसी भूल हुई है जिससे भीतर की जीवन शक्ति ने उस विदेशी पदार्थ को भीतर से बाहर निकालना जरूरी समझा था। यह हमारी जीवन शक्ति की बड़ी कृपा थी। इसलिए, जुकाम के इस रोगी को जीवन शक्ति के कार्य में रुकावट नहीं पैदा करनी चाहिए थी। इसके विपरीत, सहायता करनी चाहिए थी, अर्थात्, जुकाम को दबाने के लिए कोई दवाई नहीं खानी चाहिए थी क्योंकि इससे मल के बाहर निकलने में बाधा पड़ती है, और साथ ही कुछ समय के लिए, इस जीवन शक्ति का ध्यान दूसरी ओर चला जाता है। जीवन शक्ति को अपना काम स्वयं करने देना चाहिए, न कि किसी अन्य भोजन के पाचन में शक्ति लगाने का दायित्व उस पर डालना चाहिए। किसी प्रकार का भी भोजन इस मल के निःसारण में रुकावट डालता है। जब यह मल भीतर की शक्ति से बाहर निकल जाएगा, तो भविष्य के लिए वह व्यक्ति रोग से मुक्त हो जाएगा। इसे ही शास्त्रों में "प्रायश्चित्त" कहा गया है। "प्रायश्चित्त" का अर्थ यही है कि अपने किये कार्य का दंड स्वयं प्रसन्नता से भोगना और भविष्य में न करने का यत्न करना, दंड भोग से भागना नहीं। अशुद्ध इलाज तो एक प्रकार से दंड भोगने के विरुद्ध है। अंग्रेजी के महाकवि शेक्सपीयर ने "प्रायश्चित्त" के बारे में सुन्दर शब्दों में कहा है :—

> True repentance has a double aspect, it looks upon the past with a weeping eye and upon the future with a watchful eye.

अर्थात्, सच्चे प्रायश्चित्त के दो पहलू होते हैं। पहला यह कि बीती हुई घटनाओं की ओर यह रोती हुई आँख से देखता है, इस ढंग से सोचता है कि जो कुछ मैंने किया, मुझे वह नहीं करना था। दूसरी ओर भविष्य की घटनाओं पर चौकसी की दृष्टि रखना ताकि उन बातों को न दोहराऊँ जिनकी सजा मुझे मिल रही है। ऐसा प्रायश्चित्त वही मनुष्य कर सकता है जो कारण की खोज करता है। रोग चाहे शारीरिक हो, चाहे मानसिक उसका कारण बाहर कहीं नहीं है। अगर मन में पाप की तरंगें उठती हैं, तब भी कहीं न कहीं भूल अवश्य हुई है। उसकी जड़ तलाश करें, तो वह अवश्य मिल जाएगी।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं :—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Desires, anger, hatred, jealousy,
tease you every second.

अर्थात्, "इच्छाएँ, क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, चिड़चिड़ापन, चिन्ताएँ, हर क्षण तुम्हें दुःख दे रही हैं।" यह सब दुःख की जड़ हैं। इसी को गीता में "आसुरी सम्पत्ति" कहा गया है। जब कोई आध्यात्मिक रोग सताये, तो इसी आसुरी सम्पत्ति में खोज करें कि रोग का मूल कहाँ पर है। जो खोज करता है, वह मूल तक पहुँच जाता है। जब तक मूल कारण पता नहीं लगेगा, तब तक जो उपाय होगा, अशुद्ध होगा। आज का मनुष्य यह सोचता है कि किसी दूसरे के कारण मुझे दुःख मिल रहा है। परिणाम यह कि अपनी ओर ध्यान केन्द्रित करने के बदले दूसरों के दोषों को देखने की आदत पड़ी हुई है। स्वामी शिवानन्द जी इसे पीलिया की बीमारी से उपमा देते हुए लिखते हैं :—

When the eyes are affected by jaundice one realises that milk is yellow. Every thing seen is yellow. There is another kind of jaundice which affects the mind. It makes one see only fault in others; fault where they do not exist; fault in every thing under the sun. The deceased mind ignores the rose but sees the thorns.

अर्थात्, "जब आँखों पर पीलिये का असर होता है तो दूध जैसीं सफेद चीज भी पीली नजर आने लगती है। स्वामी जी कहते हैं कि पीलिये का एक दूसरा रूप भी है जिसका प्रभाव मन रूपी आँख पर होता है, तब दूसरों के दोष ही देखता है। दुःख का कारण वहाँ ढूँढता है जहाँ उसका अस्तित्व ही नहीं है। सब चीजें उसे दुःखदायी नजर आती हैं। ऐसा दुःख ग्रस्त मन फूलों की ओर से मुँह मोड़कर केवल काँटों को ही देखता है। अभिप्राय यह कि जिसके मन में आसुरी सम्पत्ति का कोई रोग विद्यमान है, उसका निराकरण करने के बदले, दूसरों को अपने दुःख का कारण समझता है। यह एक प्रकार का मानसिक पीलिया का रोग है। मन रूपी आँख में से इस रोग को हटाने की आवश्यकता है। फिर कहीं भी दुःख नजर नहीं आएगा। एक उर्दू कवि के शब्दों में :—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

न थी हाल की अपने हमें जब खबर ।
रहे देखते औरों के एबो हुनर ।।
पड़ी अपने गुनाहों पै जब कि नजर ।
तो नजर में कोई भी बुरा न रहा ।।

❀❀

३

आधिभौतिक दुःख

यह दुःख उस रोग व ताप को कहते हैं जो प्राणि मात्र की ओर से प्राप्त हो, जैसे, चोरी, डाका, हत्या इत्यादि, अथवा हिंस्र पशुओं की ओर से प्राप्त होने वाले कष्ट। मेरी मान्यता यह है कि किसी भी प्रकार का दुःख हमारे बुलावे के बिना नहीं आ सकता। यहाँ पर प्रश्न हो सकता है कि ऐसे दुःख जो हमें दूसरों की ओर से प्राप्त होते हैं— हम कैसे उन्हें आमंत्रित करते हैं? जो व्यक्ति हमारे घर डाका डाल रहा है, वह हमारे किसी कर्म के भुगतान में पाप का भागी है वा नहीं? क्योंकि वह तो वैसे ही काम कर रहा है, जैसे फाँसी देने वाला जल्लाद जेल अधीक्षक की आज्ञा से फाँसी देता है। वह तो अपने कर्त्तव्य के साथ बंधा हुआ है। उसका क्या अपराध है? इस प्रकार के प्रश्नों में व्यक्ति उलझ जाता है। इसका उत्तर यही है कि कार्य कारण के नियम का, बड़े विस्तार के साथ, पिछले अध्याय में वर्णन किया जा चुका है। इस सिद्धान्त को दृष्टि में रखते हुए यदि हम सोचें कि हमें दूसरों के द्वारा दंड क्यों मिला, तो पता लगेगा कि बिना कारण के कोई कार्य नहीं हो सकता। सम्भव है, वह कारण हमें मालूम न हो। अगर कोई किसी दूसरे की बहू बेटी की ओर कुदृष्टि से देखे, अथवा किसी चीज के चुराने की कोशिश करे, और, ऐसा करता हुआ पकड़ा जाए, तो जो दंड उसे उसी अवसर पर गाली-गलौज और मार-पीट की शक्ल में मिल जाये, उसे तो वह अपने कर्म का फल समझ लेता है, यद्यपि वह दूसरों की ओर से उसे मिला। अगर उस अपराधी को यह पता नहीं कि किस अपराध का दंड उसे मिल रहा है, तो वह यही समझता है कि मुझ निरपराध को दूसरी ओर से बिना कारण क्यों दंड मिला? अगर ऐसे लोग जो आवागमन के चक्र को नहीं मानते, और वे ऐसे प्रश्न करें, तो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भी इस ढंग से वह गल्त हो जाता है। छोटी उम्र से लेकर बड़ी उम्र तक किसे सब कार्य याद रहते हैं जबकि पहले दिन का भोजन भी दूसरे दिन याद नहीं करता। जो आवागमन के सिद्धान्त को मानते हैं, उन के लिए जो कर्म बिना फल के रह जाते हैं, वे संचित कर्म होते हैं। वह याद नहीं रहते। पर इस भूल जाने में भी प्रभु की बड़ी कृपा है।

मैं एक बार स्वर्गीय महात्मा टेकचन्द जी प्रभु आश्रित के सत्संग में शामिल हुआ। उन्होंने सत्संगियों से एक प्रश्न किया कि 'प्रभु की सबसे बड़ी कृपा क्या है ?" कोई इस प्रश्न का उत्तर न दे सका। तब उन्होंने स्वयं ही उत्तर दिया कि पिछले जन्मों का स्मरण न रहना ही प्रभु की सबसे बड़ी कृपा है। यदि ये संस्कार याद रहते तो आजन्म प्रतिशोध की भावनाएं, प्रबल रूप से जागृत रहतीं। इनके कारण मनुष्य सदा संतप्त रहता। हमारे कई पाठक शान्ति देवी की घटनाओं से परिचित होंगे। इसका संकेत स्वामी शिवानन्द जी ने अपनी "डिवाइन लाइफ" पत्रिका १९५८ फरवरी के अंक में किया है। छोटी उम्र में उसे पिछला जन्म पूरा याद था। उसकी बातों की सच्चाई की खोज करने के लिए एक समिति नियुक्ति की गयी जिसने मथुरा जा कर उसके सब कथनों को सत्य पाया। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय घटना यह है कि जब शान्ति देवी ने अपने पिछले जन्म के माता-पिता को पहचाना और अपने परिवार की सब घटनाएं ठीक-ठीक बता दीं, तब उसके माता-पिता उसे चिपट गये और अपने पास ही रखने का आग्रह करने लगे। तब नये माता-पिता ने कहा कि यह लड़की तो हमारी है, आप लोगों के पास कैसे रह सकती है ? अन्त में बड़ी कठिनता से शान्ति देवी को नये माता-पिता उसके पहले माता-पिता से छुड़ाकर अपने साथ ला सके। पर यह बालिका बड़ी उदास रहने लगी। यह सन् १९२६ की घटना है। स्वामी जी ने अपनी पत्रिका में इस बालिका का पूरे ब्यौरे के साथ वर्णन किया है।

मेरा अभिप्राय इस घटना की ओर संकेत करते हुए यह बताना है कि अगर ऐसे गत जन्मों के स्मरण प्रत्येक व्यक्ति को हों, तो ज़रा सोचिए, कितने झंझट खड़े हो जाएंगे ? इसलिए इस विस्मृति को प्रभु की सर्वोच्च कृपा कहा गया है। अब असली प्रश्न का उत्तर यह है कि जब हम ईश्वर को न्यायकारी मानते हैं, तब यह कैसे हो सकता है कि हमें कोई दुःख व दंड बिना हमारे भोग व संचित कर्म के मिल सके ? अपने अपराध का ज्ञान न होने से हम अपने को निर्दोष नहीं कह सकते हैं। यदि हम यह मान लें कि हमारे ही अपराधों का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दंड हमें मिल रहा है तो हम दूसरों को दोषी नहीं ठहराएंगे।

अब इस प्रश्न के दूसरे पक्ष पर विचार करें। फिर, हम दुःख देने वाले को क्यों पकड़वाएं, या वह स्वयं ही क्यों पकड़ा जाए? उसका क्या अपराध है? उसने तो हमें हमारे कर्म का ही फल भुगतवाया। उसे तो सरकार भी दंड देती है बशर्ते वह पकड़ा जाए। इस सम्बन्ध में कर्म के सिद्धान्त को कुछ गहराई से समझने की जरूरत है। जेल में जब किसी को फांसी मिलती है, तब उसमें जेल का कोई भी कर्मचारी व न्यायाधीश जिम्मेदार नहीं है, बशर्ते उन्होंने जान-बूझकर कोई गलत निर्णय न किया हो। महत्त्व भावना का है। अगर भावना शुद्ध है, और कर्त्तव्य परायणता के अनुसार काम किया जा रहा है तो इनमें से कोई अपराध का पात्र नहीं है। अब लीजिए, ऐसे व्यक्ति का मामला जो हम पर हमला करता व डाका मारता है। जेल के अधिकारियों के पास तो न्यायाधीश की आज्ञा है, इस डाकू-चोर के पास किस की आज्ञा है? वह कैसे जानता है कि हमने प्रभु का अपराध किया है जिसका दंड वह हमें दे रहा है? क्या वह प्रभु का कोई एजेन्ट व वेतन भोगी कर्मचारी है? वस्तुतः, वह तो अपनी स्वतंत्रता का प्रयोग कर रहा है। उसकी इच्छा है, कोई हमला करे व न करे। उसे कोई बाध्य करने वाला नहीं है। वेद का कथन है कि प्रत्येक व्यक्ति कर्म करने में स्वतंत्र है। यह कर्म करने की स्वतंत्रता ही उसे अपने पाप में फंसाती है। जिस पर हमला किया गया उसे तो अपने कर्म का फल मिल जाएगा। यही प्रश्न एक बार पं० राम चन्द्र देहलवी जी से किया गया था। उन्होंने एक उदाहरण देकर इस प्रकार समझाया था :—

एक महिला को अपना चौका लेपने के लिए गीले गोबर की जरूरत थी। वह आस-पास की गलियों में घूम-फिर कर गोबर तलाश कर रही थी। उसे गोबर मिला नहीं। उसके पड़ोसी का बच्चा गली में खेलता हुआ शरारत कर रहा था। इस महिला ने उसे डांटा। वह गुस्से में अपने घर पहुँचा। उसके घर में गाय थी। इस गौ ने ताजा गोबर किया था। लड़के ने क्रोध में आकर वह गोबर उस महिला को परेशान करने के लिए उसके घर फेंक दिया। यह महिला गोबर के लिए ही चिन्तित थी। अब गोबर स्वयं आ जाने से उसकी मेहनत सफल हो गयी। पर क्या उस शरारती बच्चे ने किसी की आज्ञा से वहां गोबर फेंका था? उसने तो, क्रोध में आकर, एक स्वतंत्र काम किया जो कि उसका अपना ही पृथक् काम है। इसके दंड का वह स्वयं उत्तरदायी है। पर, ऐसा करने से उस महिला के परिश्रम का फल वह बच्चा भुगतवा गया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस प्रकार कर्म चक्र दोनों ओर चलता है।

स्वतंत्र कर्म कर्त्ता अपना भोग बनाता जाता है और जिसके प्रति वह कर्म किया जाए, वह अपने कर्म का फल भोगता जाता है। इस सम्बन्ध में उर्दू के कवि के यह शब्द उपयुक्त हैं :—

जो कुछ कि पहुँचे तुझको, खुद करदा है तेरा।
जौरे फलक है क्या, गुनाहे जमाना है क्या ?

अगर यह गुत्थी समझ में आ जाए तो भौतिक दुःख हमें संतप्त न कर सकें। गाँधी जी लिखते हैं "मैं तो वीर उसे मानता हूँ जो किसी द्वारा भड़काये जाने पर भी न भड़के।" फारसी के शायर के शब्दों में :—

न मर्द आं अस्त बनजदीक खिरदमन्द।
कि बापील दमादा पेकार जोयद॥
वले मर्द आँ अस्त अज रुइए ताकीद।
कि चूं खशमायदश बातिल न गोयद॥

अर्थात्, बुद्धिमान् उसे वीर नहीं कहते जो मस्त हाथी से लड़ाई करता है। अपितु, वीर वह है जो क्रोध आने पर भी मुख से अनुचित शब्द नहीं निकालता। यह काम वही व्यक्ति कर सकता है जो कर्म-फल के सिद्धान्त को अच्छी प्रकार समझता और उस पर विश्वास करता हो। हमें दुःख देने में हमारे अपने कर्म फल के अतिरिक्त अन्य किसी का दायित्व नहीं है।

❀❀

४

आधिदैविक दुःख

अब तीसरे प्रकार के दुःख, अर्थात्, आधिदैविक पर विचार करेंगे। यह दुःख वे हैं जो दैवीय सृष्टि से प्राप्त हों, अर्थात्, मनुष्य की शक्ति से बाहर हों, जैसे, भूचाल, बाढ़, महामारी, वर्षा का कम या अधिक होना, अकाल इत्यादि। इस दुःख के सम्बन्ध में भी, मूल रूप में, हमें यह समझने की जरूरत है कि ऐसे संकट भी किसी न्याय और नियम के अनुसार ही आते हैं। प्रभु के घर में अन्धेर नहीं है। कई लोग इस सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं कि जब कभी ऐसा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

संकट आता है, तब बहुत से लोग मर जाते हैं और कुछ बच भी जाते हैं। क्या पहले प्रकार के सब पापी थे, और जो बच गये, उन्होंने क्या कोई पाप नहीं किया ? यह केवल समझने की भूल है। कुछ लोग समझते हैं कि प्रभु के दफ्तर में भी हमारे जैसे दफ्तरों के क्लर्क होते होंगे और वे इतना सूक्ष्म हिसाब कहां रख सकते हैं ? क्वेटा में जब भूचाल आया तब किसी घर में सब मर गये, किसी में एक ही बचा और किसी में एक ही मरा। ऐसी शंका करते हुए हम भूल जाते हैं कि प्रभु सर्वज्ञ हैं और हम स्वयं अल्पज्ञ होते हुए उसकी सर्वज्ञता की थाह नहीं पा सकते। प्रभु को किसी नायब, सहायक व क्लर्क की आवश्यकता नहीं। जिसके कर्म फल के भोग का समय आता है, उसे भुगताने के लिए अपने आप ही कारण पैदा हो जाते हैं। पर "आप ही आप" का यह मतलब नहीं कि इसके पीछे कोई व्यवस्था नहीं, पर वस्तुतः, ठीक नियंत्रण के अनुसार सब कार्य होते हैं। प्रभु सबसे महान् नियन्ता भी है। जिसने बचना हो उसके लिए कारण बन जाते हैं। एक कवि के शब्दों में :—

जाको राखै सांइयां, मार सकै न कोय।
बाल न बाँका कर सकै, जो जग बैरी होय ॥

प्रभु की इस व्यवस्था की समझ किसी घटना के हो जाने के बाद ही आती है। एक बार एक पत्रिका में यह घटना छपी थी। आकाश में मेघ छाये और बिजली चमकने लगी। कुछ लोग सड़क पर जा रहे थे। बिजली के डर से सड़क के पास एक खाली कमरे में घुस गये। उनके घुसते ही बिजली टूट कर कमरे के सामने चमकी, पर वापस हो गयी। दूसरी बार भी ऐसा हुआ। इन में से एक आदमी के मन में विचार आया कि यहाँ से निकल जाना चाहिये। बिजली बार-बार चमक रही है। वह भागकर बाहर निकल गया। तीसरी बार बिजली इसी कमरे पर सीधी आकर गिरी और अन्दर वाले सब आदमी उसके शिकार हो गये। वह अकेला ही बच सका। हमें प्रभु की वह व्यवस्था नजर नहीं आती जो इस एक आदमी के बचाने में काम कर रही थी। फलतः, हम इस लीला को समझने में ही असमर्थ हैं, अल्पज्ञ होने से। वस्तुतः, मूल रूप में, कोई भी घटना, चाहे किसी भी ताप की वजह से हो, हमारे अपने ही कर्मों का भोग है। लेकिन हमारी कुछ आदत ऐसी बन गई है कि कृष्ण भगवान को भी यह कहना पड़ा :—

"यह अभ्यास प्रायः देखने में आता है कि मनुष्य विपत्ति में फंसने पर अपने भाग्य व भगवान् की शिकायत करता है न कि अपने किये हुए कर्मों की।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस रहस्य को न समझने से ही हम विविध दुःखों से पीड़ित रहते हैं। स्पष्ट है कि हम में ईश्वर विश्वास की न्यूनता है। उसके न्याय-नियम पर भरोसा नहीं, विश्वास नहीं, अन्यथा कोई दुख हमें सता नहीं सकता। इस का दूसरा नाम 'यौगिक जीवन' का अभाव है;। आस्तिकों के लिए तो अबू-उल हसन सूफी से पूछे गये निम्न प्रश्न-उत्तर शिक्षाप्रद हैं :—

Q. Who are they who put their trust in God ?

Ans. They are the men who in all times bow, accept the will of God as indeed the best for them.

प्रश्न—प्रभु पर विश्वास करने वाले कौन होते हैं ?

उत्तर मिला, ऐसे मनुष्य वे होते हैं जो हर हालत में प्रभु की इच्छा को (अपने कर्म भोग को) अपने लिए सर्वोच्च समझते हैं।

वस्तुतः, आस्तिकता की ही कमी है। नास्तिकता केवल उनमें ही नहीं जो प्रभु को खुल्लम खुल्ला नहीं मानते परन्तु आस्तिकों की हालत उनसे भी अधिक शोचनीय है। संसार में कितने ही पाप ऐसे हैं, जो सामूहिक होते हैं, देश, जाति व सम्प्रदाय की ओर से। ऐसे पापों का दंड भी सामूहिक रूप से मिलता है, तीनों तापों के रूप में, आध्यात्मिक, आधिभौतिक आधिदैविक।

आयुर्वेद में स्वास्थ्य के सम्बन्ध में महर्षि चरक कहते हैं :

"भोजन ग्रहण करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति और इच्छा, पाचनशक्ति का ठीक होना, मलमूत्र का ठीक विसर्जन, अपान वायु का बिना कष्ट के बाहर जाना, शरीर का हल्का और फुर्तीला रहना, इन्द्रियों का प्रसन्नतापूर्वक अपने कर्त्तव्य का पालन, नींद का आनन्दपूर्वक आना, ठीक समय पर जाग जाना मन में शान्ति का अनुभव होना, पराक्रम और स्वास्थ्य का होना, मुखमंडल तेजस्वी—यही दीर्घ आयु और आरोग्य के लक्षण हैं।"

इस युग में कोई भाग्यशाली पुरुष ही ऐसा होगा जो महर्षि चरक की इस कसौटी पर पूरा उतर सके। ऐसा क्यों ? केवल इसलिए कि मनुष्य तीन तापों के प्रभाव से बचना तो चाहता है पर प्रभु से विमुख होकर। गुरु नानक देव की इस शिक्षा को भूलकर—

सर्वरोग को औषध नाम

आज के संसार में नाम के प्रति ही लापरवाही है और यही सब दुखों का हेतु है। गोंसाई तुलसी दास ने इसी दृष्टि से कहा है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

राम नाम को अंक है और सब साधन हैं शून।
अंक गये कछु हाथ नहीं, अंक रहे दश गून ।।

प्रभु का नाम अंक है और बाकी जितने साधन हैं, शून्य के बराबर है। अगर १ अंक के साथ शून्य लगाते चले जाएं, तो शून्यों का मूल्य दश गुणा होता जाता है, एक शून्य से १०, दो शून्य से १०० और तीन से १,०००। इस प्रकार दस गुना बढ़ोतरी होती जाती है। यदि १ के अंक को हटा लें तो फिर कितने भी साधन रूप शून्य इकट्ठे हों उन सब का मूल्य शून्य ही है। बस, यही रहस्य की बात है। लोग शून्य इकठ्ठा करने पर ही लगे हुए हैं, परिणाम शून्य ही रहता है, १ के अंक को भूल गये हैं। हमारी वही अवस्था है कि रत्नों की खान में बैठे हुए भी कंगाल हैं। वेद में एक मंत्र आया है—

अपां मध्ये तस्थिवान्सं तृष्णाऽविदत् जरितारम् ।
मृडा सुक्षत्र मृडय ।। ऋग् ७।८९।४

हे प्रभु ! तेरा स्तोता पानी में बैठे हुए भी प्यासा है। उसकी इस दयनीय अवस्था पर कृपा कर, उसे सुखी कर।

हार कर प्रभु की शरण में जाना पड़ता है। पर इतना भी तो कोई करता नहीं कि अपने को उसके समर्पण कर दे। श्री अरविन्द घोष को जब राजद्रोही होने के कारण कलकत्ता में पकड़कर जेल ले जा रहे थे, तब उन्होंने स्वयं यह शब्द कहे :—

"When I was arrested and hurried to the Lal Bazar hawalat, I was shaken in faith for a while, for I could not look into the heart of His Intention."

"जब मुझे लाल बाजार की हवालात ले जा रहे थे तो मेरा विश्वास थोड़ी देर के लिए डांवाडोल हो गया था क्योंकि मैं प्रभु की लीला को तब तक नहीं भांप सकता था।" श्री अरविन्द आगे लिखते हैं कि जब "मुझे समझ आ गयी तो फिर मैं कहा करता था "He knows better" प्रभु ही हम से अधिक उत्तम जानते हैं। अन्ततः, तीनों तापों का इलाज यही निकला :—

बस अपनी रजा को, उसकी रजा पर छोड़ दे।
रास्ता खुल जायगा, कितना ही वह पुरपेच हो।।

❀❀

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

५

योग का स्वरूप

पिछले अध्यायों में मैंने यह बताया कि रोग क्या है ? अब हम योग के सम्बन्ध में चर्चा करेंगे।

"योग" शब्द का अर्थ महान् है। पर दुर्भाग्य यह हैं कि जब इस की चर्चा होती है, लोग समझने लगते हैं कि यह केवल योगियों के लिए है, बड़ी गूढ़ विद्या है, आम लोग इसका पालन नहीं कर सकते हैं। वस्तुतः, सत्य यह नहीं है। कुछ स्वार्थी लोगों ने योग के साथ चमत्कार को जोड़कर सामान्य लोगों को इससे दूर कर दिया है। सोचना यह है कि वे योगी जो साधना के मार्ग पर चलते हैं कहां से आते हैं ? क्या वे मनुष्य नहीं होते, सामान्य पुरुष की तरह माता के गर्भ से जन्म नहीं लेते, बाल्य काल, युवावस्था और वृद्धावस्था क्या उनमें नहीं आती ? उत्तर मिलेगा कि उनमें सामान्य पुरुषों से कोई विशेषता नहीं होती। स्पष्ट है, कोई भी सामान्य व्यक्ति प्रयत्न करने पर योगी हो सकता है और संसार के व्यवहार करता हुआ भी इस मार्ग पर चल सकता है। उदाहरण के लिए, भगवान् कृष्ण को योगीराज कहा जाता है। क्या वह घर छोड़कर जंगल में भाग गये थे ? इसके विपरीत राज्य कार्य करते हुए उन्होंने अर्जुन को युद्ध की प्रेरणा दी और स्वयं उसके सारथी बने। गृहस्थी होते हुए भी श्री कृष्ण को योगी राज की उपाधि मिली। अभिप्राय यह कि योग का शब्द महान् होते हुए भी कोई भयप्रद वस्तु नहीं है, अपितु मनुष्य मात्र के लिए—जिसमें नारियाँ भी शामिल हैं—जीवन में लाने का एक मार्ग है। विभिन्न महापुरुषों ने इसे विभिन्न ढंग से कहा है। शास्त्रों में भी कहा गया है :—

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।

सत्य एक ही है, ज्ञानी पुरुषों ने इसे विभिन्न ढंग से कहा है। श्री कृष्ण गीता में कहते हैं "योगः कर्मसु कौशलम्" कर्म में कुशल होना ही योग है। यह कुशलता क्या है, इसका वर्णन गीता के अध्याय ६ श्लोक १७ में किया गया है :—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

युक्ताहारा विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु ।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।।

जो योग का साधक है उसका आहार विहार, कर्मों की चेष्टाएं, सोना जागना—सब कुछ समुचित होना चाहिए। इस प्रकार योग के मार्ग पर चलने से दुःखों का नाश होता है। इस श्लोक के "युक्त" शब्द का अर्थ मैंने समुचित किया है। यह शब्द अर्थपूर्ण है। इसे समझ लेने से ही योग का रहस्य स्पष्ट हो जाएगा। साथ ही इस श्लोक के 'आहार' शब्द पर ही पहले विचार करें। इसकी व्याख्या भी श्री कृष्ण ने गीता के अध्याय ६, श्लोक १६ में इस प्रकार की है—

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्न शीलस्य जागृतो न चैवार्जुन ।।

हे अर्जुन ! यह योग न तो बहुत खाने वाले और न बिल्कुल न खाने वाले, न बहुत सोने वाले और न ही अत्यन्त जागने वाले को सिद्ध होता है। इसे शेख सादी ने यूं लिखा है—

न चन्दां बगौर कर्ज दहान बरामद ।
न चन्दां कि अज जफ जानत बरामद ।।

न इतना खा कि तेरे मुंह से बाहर आने लगे और न इतना कम खा कि कमज़ोरी से तेरी जान निकलने लगे। विहार के सम्बन्ध में श्री कृष्ण ने गीता के अध्याय ६, श्लोक ३२ में व्याख्या करते हुए कहा है—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ।।

हे अर्जुन ! जो योगी अपने सदृश सब भूतों को समझता और सुख दुःख को भी सम भाव से देखता है, वही परम श्रेष्ठ माना जाता है। इस श्लोक में "आत्मौपम्य" शब्द विशेष रूप से विचारणीय है, अर्थात्, सब भूतों में अपनापन देखना। जैसे, हमारे शरीर में सिर, हाथ, पेट, पाँव सभी हैं, मानो, एक शरीर में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों का अस्तित्व है। यदि शरीर के किसी एक अंग को भी कष्ट हो तो सारा शरीर दुख ग्रस्त हो जाता है। मतलब यह, प्रत्येक अंग में दुःख अनुभव करने वाली शक्ति का पूर्ण रूप से अपनापन है, किसी अंग में दुख अथवा सुख को न्यून व अधिक अनुभव नहीं किया जाता। इसी प्रकार प्राणि मात्र में समदृष्टि रखना "आत्मौपम्य" कहलाता है। शेख सादी के शब्दों में, जिसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है :

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"प्रत्येक मनुष्य एक दूसरे का अंग है क्योंकि उसकी उत्पत्ति एक ही प्रकार से हुई है। जिस तरह शरीर का कोई अंग रोगी हो तो दूसरे अंगों को भी चैन नहीं आता, जैसे, चोट पाँव पर लगे, जबान सी सी करने लगती है, इसी तरह दूसरों को दुखी देख कर अगर मानव लापरवाह रहता है, तो वह मनुष्य कहलाने का ही अधिकारी नहीं है।" एक उर्दू कवि के शब्दों में :—

भूलकर न करना, किसी से सलूक ऐसा।
गर तुमसे कोई करता, तुम्हें नागवार होता॥

अगर प्रत्येक व्यक्ति व्यवहार की इस कसौटी पर अपने जीवन को परखे तो बड़ी सुगमता से वह योग की सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

श्री कृष्ण योग के लिए तीसरी शर्त्त युक्त विचार बताते हैं। गीता के अध्याय ६ को समाप्त करते हुए ४६ वें श्लोक में भगवान् कहते हैं :—

योगीनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥

सम्पूर्ण योगियों में भी जो श्रद्धावान् है और अन्तरात्मा से प्रभु का निरन्तर स्मरण करता है वह योगी परम श्रेष्ठ माना जाता है। कर्मों में उसी की चेष्टा योगमय हो सकती है जो प्रभु में श्रद्धा रखता हो, उसे सर्वव्यापक समझता हो, और हर रंग में उसे ही देखता हो। प्रभु भजन का यह मतलब नहीं कि हाथ में माला लेकर किसी गुफा में ईश्वर का नाम रटता रहे। इस प्रकार रटना भी चाहिए कुछ समय के लिए। यही जाप है और यह जरूरी है। पर निरन्तर जपना यही है कि प्रभु की देख रेख में अपना जीवन व्यतीत किया जाए। इसीलिए वेद कहता है—

दृते दृंह मा ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम्।
ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम्॥ यजुः, ३३।१६

प्रभु! आप दृढ़ हैं, मुझे भी ऐसा दृढ़ कीजिए कि मैं अपना जीवन आप के निरीक्षण में ही व्यतीत करूं।" इसी का नाम "युक्तचेष्टस्यकर्मसु" है। ऐसा जीवन यदि बन जाए तो सारी उलझनें सुलझ जाएं। श्रीकृष्ण ने सोने और जागने को भी योग का अंग बताया है। आजकल के जीवन में अगर इस अंग पर विचार किया जाय तो न नींद योग युक्त है और न जागना ही। रात को सोने का कोई समय निश्चित नहीं। रात को सिनेमा देखने वाले, ताश, चौपड़-शतरंज खेलने वाले, ब्रिज आदि पर दाव लगाने वाले और विषय में लम्पट पुरुष ठीक समय पर सोने के महत्त्व को भला क्या जानें, फिर ऐसे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लोग ठीक समय पर जागने के मूल्य को ही नहीं समझ सकते। इसी सम्बन्ध में गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है:—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥ २। ६९

योगी जब जागता है, तब इस विद्या से अनभिज्ञ पुरुष सोता है और जब अन्य प्राणि जागते हैं, तब योगी संसार के तत्व को देखता है।

इसलिए योगमार्ग वह है जिसमें सोना, जागना, आहार, विहार, विचार इत्यादि सब व्यवस्थित और एक लक्ष्य सिद्धि के लिए हों। शरीर, मन और बुद्धि, तीनों का स्वस्थ होना योग साधन के लिए अनिवार्य है। चूंकि आज कल यह तीनों बिगड़े हुए हैं, इसलिए सामान्य लोगों को योग मार्ग कठिन प्रतीत होता है।

बखुल अच्छा है न बेजां, खर्च अच्छा है अजल।
दरम्यानी चाल चल, राहत का मुनज्जर देखले॥

❀❀

६

योग के सम्बन्ध में भ्रान्तियां

गीता के छठे अध्याय में योग के सम्बन्ध में विशेष रूप से कहा गया है, अधिक जानने के लिए पाठक वहां देख सकते हैं। अब मैं योगी श्री योगेन्द्र जी के विचार योग के सम्बन्ध में लिखना चाहता हूँ। कहते हैं—

> Yoga is the most ancient, cultural heritage of India. Yoga occupied in cultural history of India from time immemorial an unparalled position.....as the one by practicals ystem. Its sublimal psychic calculation, physical, mental, moral and spiritual culture and processes finally resulting into positive and lasting happiness and peace.

अर्थात् योग भारतीय संस्कृति, की बहुत पुरानी विरासत है। योग ने भारत की संस्कृति के इतिहास में बहुत दीर्घकाल से एक अद्वितीय और विशिष्ट सचाई की अभिव्यक्ति की है। सिर्फ योग ही एक ऐसी क्रियात्मक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पद्धति है जिससे शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक सदाचार की प्राप्ति और आत्मिक उन्नति हो सकती है। आत्मिक पवित्रता प्रदान करने वाली यह विद्या शाश्वत सुख और शान्ति की पराकाष्ठा तक पहुँचाने वाली है।" भावार्थ यह कि योग की विभूतियाँ केवल शरीर की कुछ क्रिया।ओं तक ही सीमित नहीं हैं अपितु जीवन के सम्पूर्ण अंगों को पार करने की दिशा में उत्कृष्ट साधन हैं। नेहरू जी ने एक बार योगासन की क्रियाओं को देख कर अभ्यास करने वालों से कहा था कि "इससे आप लोगों के शरीर में लचक पैदा होती है पर यह योग कार्य पूर्ण तब होगा जब मन और बुद्धि में भी लचकीलापन आएगा।" इसलिए मन और बुद्धि में भी लचक लाने की कोशिश साथ-साथ होनी चाहिए। योग को पेचीदा बनाने से कोई लाभ नहीं जिसे केवल एक-दो आदमी ही कर सकें। यह तो सामान्य जनता के लिए सुलभ होना चाहिए ताकि अधिक से अधिक लोग इससे लाभ उठा सकें।

योग की विशेषता इस बात में है कि वह हमें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ऊँचा उठाने वाला है। पर श्री योगेन्द्र योगी लिखते हैं कि कुछ ऐसी भ्रान्तियां पैदा हो गयी हैं जिनसे लोग योग से दूर हट रहे हैं। उनके शब्दों में यह भूलें इस प्रकार हैं—

> In consequence various shades of misunderstndings seem to have prevailed and still continue to prevail regarding yoga, not in only foreign lands but most unfortunately even in India, the place of its birth, the ignorant and the misinformed have come to believe that it is some form of white and black magic, obscure, sorcery, trichery and physical and mental mortification through which in some unaccountable manner, miraculous feats are performed. These misconc. eptionsthus have freightened many.

अर्थात्, योग के सम्बन्ध में कई भ्रान्तियाँ देर से फैली हुई हैं और अब भी फैल रही हैं। न केवल विदेशों में पर, दुर्भाग्य से, भारत में भी जो योग की जन्म भूमि है—यही हालत है। अनभिज्ञ और अशुद्ध तरीकों से जानकारी प्राप्त किये लोग यह मानने लगे हैं कि योग तो कोई श्वेत या कृष्ण जादू है, अथवा, कोई छिपा हुआ इन्द्रजाल है, चालाकी है या शरीर और मन को वृथा तपाना है, जिसके द्वारा पता न लगने वाले तरीकों से कुछ आश्चर्य जनक कर्त्तव्य किये जा सकें। इस प्रकार की विचारधारा ने बहुत लोगों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

को योग से डरा दिया है। यही योगेन्द्र योगी आगे लिखते हैं—

"Added for this, much harm has also been done, by the circulation of such ill-founded opinions, as suggest, that the practice of Yoga is extremely dangerous, that the same is intended for only a few who have renounced the world and that, it is unsuited to all others, except the Hindu mind. The lay man, both in India and elsewhere, therefore, remain indifferent to all its virtues, to appreciate Yoga it is necessory first to be rid of these inhibitory prejudices."

अर्थात्, इसके अतिरिक्त ऐसे भ्रान्त प्रचार से योगी की और अधिक हानि हुई है जैसे कि योग बहुत भयंकर कला है, और यह केवल उन लोगों के लिए जिन्होंने संसार को त्याग दिया है, अर्थात् संन्यासी हो गये हैं, और कि यह केवल हिन्दुओं के लिए है इसलिए भारत और विदेशों की आम जनता योग के गुणों को जानने से उदासीन रही। योग का विशुद्ध रूप जानने के लिए यह आवश्यक है कि सबसे पहले इस अशुद्ध, भ्रान्त और निर्मूल विचारधारा से छुटकारा पाया जाए।"

इस सम्बन्ध में मैं पिछले अध्याय में भी काफी लिख चुका हूँ। पर, जैसा श्री योगेन्द्र जी ने कहा है, ऐसी भ्रान्ति फैली हुई है जिससे आम जनता योग से वंचित हो रही है। जब तक यह मूल विचार ही दृढ़ न हो, तब तक योग में प्रवृत्ति नहीं हो सकती। जनता के भले के लिए मैं यह घोषणा करना चाहता हूँ कि जिस योग से लोग इतने उदासीन रहते हैं, वही हमारे सम्पूर्ण दुःखों की परम औषधि है। इस पर भी मजे की बात यह है कि इसके अभ्यास के लिए एक कौड़ी भी खर्च नहीं करनी पड़ती प्रत्येक धनी व निर्धन इसे कर सकता है। तुलसी जी के शब्दों में—

मणी मानक मंहगे किए, सहंगे फल तृण नाज।
तुलसी तेहै ते जानिये, राम गरीब निवाज॥

जितनी अनावश्यक वस्तुएँ हैं परमात्मा ने महंगी कर दी हैं जैसे, मणी और मोती, और जितनी आम उपयोग की वस्तुएँ हैं, जैसे फल, तृण अनाज, वे सस्ते कर दिये हैं। तुलसी दास जी तो फल, तृण और अनाज के सस्तेपन कहने तक रह गये पर इनसे भी जरूरी जो चीजें हैं वायु, जल और सूर्य, ये तो फल, तृणा अर्थात्, सब्जी और अनाज से भी सस्ते हैं। तुलसी जी कहते हैं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कि इसी से पता चलता है कि प्रभु दीन बन्धु (गरीब निवाज) हैं। उसने यह संसार केवल धनाढ्यों के लिए नहीं बनाया पर मैं इसी बात को यूँ कहा करता हूँ :—

प्रभु की जो भी न्यामत भारी है,
वह मिलती बेकीमत सारी है।

विचित्र बात है कि इस बिना मूल्य प्राप्त होने वाली सम्पत्ति की ओर लोगों का ध्यान ही नहीं है। योगासन कक्षाओं में लोग बहुत कम आते हैं। इसी लिए तुलसी दास कहते हैं—

प्रभु का नाम अमोल है, दामों बिना बिकाय।
तुलसी पै अचरज है, कोई गाहक नहीं आय॥

❀❀

७

निष्काम कर्म ही योग है

योग के सम्बन्ध में स्वामी शिवानन्द जी के विचार संक्षेप से और सुगम रूप में इस अध्याय में लिखने की चेष्टा करूंगा। स्वामी जी कहते हैं—

Selfless service is the highest yoga.

निष्काम सेवा ही सबसे ऊंचे दर्जे का योग है।

प्रत्येक महापुरुष की अपनी अपनी विचार धारा होती है। परन्तु कोई भी विचार धारा किसी दूसरे की विचार धारा का खंडन व उसमें परिवर्तन नहीं करती। किसी एक को भी ठीक ढंग से अपना लेने से हम अपनी जीवन साधना को पूरा कर सकते हैं। निष्काम सेवा कहने को तो दो शब्द हैं पर कितने महान्, गांधी जी ने गीता का अनुवाद करते हुए भूमिका में लिखा कि—
"निष्काम कर्म को मैं गीता रूपी ताले को खोलने की कुंजी कहता हूं"
इसका अर्थ है, गीता का सम्पूर्ण रहस्य इन दो शब्दों में छिपा हुआ है। निष्काम शब्द का तत्व समझना ही आज की दुनियाँ में कठिन हो रहा है। प्रश्न है कि निष्काम कर्म क्या है ? क्या संसार में ऐसा भी कोई काम है

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

eGangotri Funding by Arya Samaj Foun

जिसके पीछे फल की भावना न हो। अधिक से अधिक परोपकार वृत्ति की कामना से मनुष्य अच्छे कर्मों में प्रवृत्त होता है जिसे श्री शिवानन्द जी ने "The highest achievement" (सर्वोच्च सफलता) कहा है। इसका अभिप्राय यह है कि अच्छे कर्म करने के पीछे भी कोई स्वार्थ की भावना तो छिपी रहती है। फिर, निष्काम कर्म कौन-सा हुआ ? क्या बिना सोचे समझे कर्म करने का नाम "निष्काम" कर्म है। श्री कृष्ण जी के शब्दों में :—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

तुझे कर्म करने तक का ही अधिकार है, फल प्राप्ति का सर्वथा नहीं। तब क्या फल व परिणाम को बिना विचारे ही कर्म करने चाहिएं ? इस उलझन को सुलझाने की बड़ी सख्त जरूरत है। पर, यह बात भी है कि, प्रायः, लोग प्रश्न करने तक ही अपनी बुद्धिमत्ता समझते हैं, अथवा यह परीक्षा करने के लिए कि जिससे हम प्रश्न कर रहे हैं, वह उसका उत्तर देने की योग्यता रखता है व नहीं ? इसके अतिक्ति कुछ करने धरने की इच्छा प्रश्न कर्त्ता में, प्रायः नहीं देखी जाती। यहीं कारण है कि यह उलझन सारी आयु उलझन ही बनी रहती है, फिर भी संसार में कोई काम नहीं—भला या बुरा—जिसका कोई न कोई परिणाम व फल न हो। इसलिए, किसी भी कर्म को करने से पहले अपनी बुद्धि के प्रयोग की आवश्यकता है। जहाँ तक बुद्धि काम करे वहाँ तक खूब सोच-समझ कर अपने कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निश्चय कर लेना चाहिए। जब अपना कर्त्तव्य कर्म समझ लिया, फिर उस पर डट जाना ही आवश्यक है। पंचतंत्र के निम्न श्लोक में इस रहस्य को खोला गया है—

अकृत्यं नैव कर्त्तव्यं प्राण त्यागऽप्युपस्थिते ।
कृत्यमेव न त्याज्य मेष धर्मः सनातनः ।।

न करने योग्य कर्म कभी नहीं करना चाहिए, चाहे प्राण भी त्यागने पड़ें और करने योग्य कर्म कभी नहीं त्यागने चाहिएं चाहे प्राण भी जाएं—यही सच्चा सनातन धर्म है।

अब कितने लोग संसार में ऐसे मिलेंगे जो कर्त्तव्य मालूम हो जाने पर उस पर डट जाते हैं। पर डट जाने से ही तो मंजिल तय नहीं हो जाती। कर्त्तव्य कर्म तो हमने किया पर फल जैसा हम चाहते थे, वैसा न मिलने से हम चिन्ताग्रस्त हो गये। इसका तात्पर्य यह कि हम सौदा करने वाले व्यापारी बन गये, निष्काम कर्म करने वाले नहीं। हम तो वह कर्त्तव्य कर्म भी इस भावना से कर रहे हैं कि हमारा अमुक उद्देश्य सिद्ध हो जाए, यद्यपि फल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमारे हाथ में नहीं होता। इस भाव को गाँधीजी ने अपनी आत्मकथा में बड़े सुन्दर ढंग से इस प्रकार कहा है—

God does not permit man to carry out his plans i. e., a man proposes and God disposes.

परमात्मा सदा मनुष्य को उसके संकल्पों में सफलता नहीं देता, अपितु कई बार मनुष्य सोचता कुछ है और ईश्वरेच्छा कुछ भिन्न ही होती है। गीता में, इसीलिए, कहा गया है कि हम तो केवल कर्म करने को ही अपने लिए निश्चित कर सकते हैं, इससे आगे हमारे कुछ वस का नहीं। फलतः, निष्काम कर्म का उचित लक्षण यह हुआ कि कर्त्तव्य अकर्त्तव्य को विचार कर करना और फिर परिणाम प्रभु पर छोड़ देना—जो हमारी शक्ति से बाहर है—यही निष्काम कर्म है। अब इस कसौटी पर निष्काम सेवा को परखें।

सेवा भी तो एक कर्म है जो सकाम व निष्काम दोनों प्रकार की हो सकती है। सकाम तो केवल व्यापार है और इसमें स्वार्थ त्याग न होने से केवल दुख प्राप्ति होती है। एक उर्दू कवि के शब्दों में—

भलाई का बदला भला कर दिया,
किया कर्ज ही तू ने सर से अदा।
और, जो पैसा सेवा में करा कर दिया,
तो बख़्शिश नहीं, यह तो सौदा किया।

निष्काम सेवा की सुन्दरता को समझने के लिए सबसे पहले यह जानना होगा कि सेवा करना हमारा कर्त्तव्य है और सेवा का बदला सदा अच्छा होता है। फल निश्चित करके सेवा करना मुझे भी सीमित कर देगा। जैसे, चार आने किसी दुकानदार को दिये और चार आने का सौदा ले लिया। अब इस बार आने देने में हमने कोई एहसान नहीं किया। पर, फल का भाव निश्चित न करके अगर सेवा इस दृष्टि से भी की कि ऐसा करना मेरा धर्म है, बस, इससे आगे मेरा कोई लक्ष्य नहीं है तो यह सेवा निष्काम ही होगी। अब सोचना यह है कि क्या ऐसी सेवा का कोई फल नहीं ? नहीं, फल है और वह भी निःसीम, जिसका कोई मूल्य नहीं आंका जा सकता। किसी ने ठीक ही कहा है—

फर्ज है इन्सान पर हमदर्दि-ए नौ बशर,
चाहिए यह नूर हर इन्सान के दिल में जलवागर,
है यही वो जज्बा-ए पाकीजा जो इन्सान को,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

फौकियत देता है हर शै पर अगर सीने में हो,
इस अमानत में न इक लमहा ख्यानत चाहिए।
वक्फ कर दे उम्र को इन्सान की खिदमत के लिए,
जुर्म है इखलाक़ के कानून में तनपरवरी,
दर्द से खाली हो जिसका दिल नहीं वो आदमी।

एक अंग्रेज विद्वान् के शब्दों में—

"Best of all the progress is to serve mankind"

"सर्वोत्तम पूजा प्राणि मात्र की सेवा है।"

यही है इबादत, यही दीनi इमां।
कि काम आये दुनियाँ में, इन्सान के इन्साँ॥

स्वामी शिवानन्द जी इसे ही उच्च स्तर का योग मानते हैं। योग ही एक ऐसी जीवन कला है जो जीवन को प्रत्येक दृष्टि से पवित्र रखने का काम करती है। जो व्यक्ति अपना जीवन निष्काम सेवा में लगाना चाहता है, या इस में लगा रहता है, उस के जीवन में साँसारिक छल कपट की गुँजाइश नहीं रहती, उसका जीवन निष्पाप हो जाता है। सेवा का तो कोई माप तौल है नहीं, जिसे केवल समृद्ध ही कर सकता हो अथवा बलवान् ही कर सकता हो। अपितु, यह ऐसा सरल सहज मार्ग है, योग का, जिसे प्रत्येक स्त्री, पुरुष, राजा, रंक, अमीर, गरीब, बिना धर्म, सम्प्रदाय व समाज, देश और जाति के भेद भाव के करने का अधिकार रखता है, पर, इस में चित्त की उदारता की इतनी अधिक आवश्यकता है, जिसे भर्तृहरि के शब्दों में :—

अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम्।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

उदारचित्त के पुरुषों के लिए सारा विश्व एक कुटुम्ब का रूप होता है, वह अपने और पराये के चक्र से निकल जाते हैं क्योंकि यह मेरा है व दूसरे का है—यह विचार तो छोटे चित्त वालों का होता है। इस लिए, जो योग की पेचीदगियों में नहीं पड़ना चाहते, उनके लिए स्वामी शिवानन्द जी ने सहज मार्ग दर्शा दिया जिसे अपनाकर प्रति व्यक्ति योगी बन सकता है। अर्थात् यदि वह प्रेम प्रेम के लिए करना सीख जाए किसी स्वार्थ के लिए नहीं।

गर्ज जिसकी उल्फत में, पिनहां नहीं।
समझ लो फरिश्ता है, इन्साँ नहीं॥

❀❀

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

८

महर्षि पातंजल का योग

अब महर्षि पातंजल के बताये योग के सम्बन्ध में विचार करते हैं। योग-दर्शन में महर्षि कहते हैं "योगश्चित्त वृत्ति निरोधः" अर्थात्, चित्त की वृत्तियों को वश में करना ही योग है, इन्हें बाहर भागने से रोकना। वृत्ति कहते हैं, विचारों की लहरों को। यह लहरें निम्न पांच अवस्थाओं में पैदा होती हैं—

(१) **मूढ़ अवस्था**—तमो गुण से पूर्ण चित्त। इस दशा में मनुष्य अन्धकार और अज्ञान में भटकता रहता है। (२) **क्षिप्त अवस्था**—रजो गुण से पूर्ण चंचल चित्त। अज्ञान और अन्धकार में पूर्णतः फँसा हुआ न होकर, दोनों के बीच की दशा में होता है, जैसे, सूर्य निकलने से एक घंटा पहले की स्थिति होती है, न अन्धकार और न प्रकाश। (३) **विक्षिप्त अवस्था**—सतो गुण की एक रेखा, रजो गुण और तमो गुण से कुछ ऊंचा उठा हुआ चित्त, जिसमें पुण्य पाप की पहचान होती है। (४) **एकाग्र अवस्था**—इसमें सतो गुण की अधिकता, रजो गुण का किंचित् प्रभाव और तमो गुण का अभाव होता है। चित्त सब वाह्य विषयों से हटकर अन्तर्मुखी होने लगता है। **निरुद्ध अवस्था**—संयमित दशा। इसमें चित्त सर्वथा चंचलता रहित हो जाता है, गति शून्य, जैसे वायु रहित स्थान पर दीपक की ज्योति होती है। यही योगी जनों की अवस्था होती है। इनमें से निरुद्ध अवस्था का नाम तो योग है ही, विक्षिप्त और एकाग्र अवस्थाएँ भी योग के समीप ले जाने वाली हैं। मूढ और क्षिप्त अवस्थाओं में योग की साधना नहीं हो सकती। इसलिए साधक को पहले इन पाँच अवस्थाओं में सावधान और सचेत रहने की आवश्यकता है। पहली दोनों अवस्थाओं से चित्त को ऊपर उठाना है। इसके बाद ही चित्त की वृत्तियों को निरुद्ध किया जा सकता है। चित्त की वृत्तियाँ पाँच है—
(१) प्रमाण (२) विपर्यय (३) विकल्प (४) निद्रा और (५) स्मृति। इनमें से प्रत्येक पर विचार करेंगे।

(१) **प्रमाण**—इसके तीन भेद हैं, (क) **प्रत्यक्ष**—पांचों ज्ञानेन्द्रियों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

से प्राप्त ज्ञान प्रत्यक्ष है। (ख) **अनुमान**—कार्य को देख कर कारण को जान लेना, जैसे पुत्र को देख कर पिता का अनुमान। (ग) **अगम**—शब्द प्रमाण, किसी ने मार्ग बता दिया तो उस पर चलकर अपने लक्ष्य तक पहुँच जाना। आप्त पुरुषों के वचनों पर विश्वास, अगम प्रमाण है।

(२) **विपर्यय**—मिथ्याज्ञान, जैसे, जड़ को चेतन और चेतन को जड़ समझना। इसके पाँच भेद हैं (क) **अविद्या**—जो चीज जैसी है उसे वैसा न समझना। इसके चार रूप हैं, (१) अनित्य को नित्य समझना, (२) अपवित्र को पवित्र समझना, (३) दुःखद को सुखद समझना, (४) जड़ को चेतन समझना। (ख) **अस्मिता**—अहंकार (egoism)। (ग) **राग**—मोह के वश में लिप्त रहना। (घ) **द्वेष**—घृणा और हिंसा की भावनाएँ। (ङ) **अभिनिवेश**—मृत्यु के तत्त्व को न समझ कर इससे भयभीत रहना। आज के संसार में इस वृत्ति का राज्य है, मिथ्याज्ञान के आधीन होकर जीवन की सड़क पर जनता सरपट भागी जा रही है। कलकत्ता जाने वाली गाड़ी पर बैठ कर यह समझ रहे हैं कि हम अमृतसर जा रहे हैं। आज के मानव में प्रबल रूप से चल रहे तनाव का कारण यही है। यह ठीक है कि अधिक भोजन से शरीर में मोटापन आ जाता है पर मिथ्याज्ञान यह है कि इससे बल और नीरोगता की आशा करना। इस मिथ्याज्ञान में शरीर की शुद्धि पर ध्यान नहीं दिया जाता। पर अधिक भोजन को प्रमुखता दी जाती है। यही शरीर के सम्बन्ध में विपरीत ज्ञान है। इसका परिणाम यह है कि शारीरिक दृष्टि से कोई भाग्य शाली पुरुष ही पूर्ण स्वस्थ होगा। यदि यही बात समझ में आ जाए कि अधिक भोजन करने की अपेक्षा शरीर की शुद्धि और स्वास्थ्य अधिक महत्त्वपूर्ण है तो शरीर के सम्बन्ध में विपर्यय वृत्ति का निरोध हो जायगा। यही हालत मन को शान्त करने के सम्बन्ध में भी है। चिन्ता रहित होने से ही मन में शान्ति आती है। पर हमारा जीवन ऐसा है कि प्रतिदिन मन में चिन्ताओं का डेरा ही लगा रहता हैं। हम भोग में लिप्त होकर मन को शान्त करना चाहते हैं। भर्तृहरि के शब्दों में—

भोगाः न भुक्ताः वयमेव भुक्ताः।
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

भोगों का अन्त नहीं हुआ, भोगों ने हमें भोग लिया। तृष्णा बूढ़ी नहीं हुई, हम ही बूढे हो गये। फिर भी, हम तृष्णा को तृप्त करने में लगे रहते हैं पर योग का मार्ग नहीं अपनाते। सुख मिलना था सेवा और तप से, यही

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

योग का रास्ता था। दूसरों को सुख पहुँचाकर हम सुख के अधिकारी बनते। वेद में कहा है "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः" तू यज्ञ में बचे हुए का उपभोग कर। पर, विपर्यय की वृत्ति का यह परिणाम है कि हम यज्ञ को "अव्वल खेश, बादहू दरवेश", पहले अपनी पेट पूर्ति, फिर दूसरों की सेवा—यही समझ बैठे हैं। बस, इतना ही हेर फेर है कि हम सुख और शान्ति के भेद को नहीं समझ पाते। साधन दुःख संग्रह के करते हैं पर फल शान्ति का चाहते हैं। यही महा क्लेश है। यह भी भ्रम है कि अधिक पुस्तकें पढ़ने से ज्ञान प्राप्त होगा। पुस्तकों से विद्या की प्राप्ति तो हो सकती है पर ज्ञान तो ध्यान, तप और त्याग से ही प्राप्त होगा। एक सन्त से प्रश्न किया गया—

महापुरुषों और सन्तों की परम्पराओं के उत्तराधिकारी कौन हैं?

इसका उत्तर सन्त ने दिया—

"वे उत्तराधिकारी नहीं बन सकते जिन्होंने बहुत सारी पुस्तकें रट रखी हैं, अपितु वे लोग जिनका जीवन तप और त्याग की सम्पत्ति से भरपूर है। वही महापुरुषों और सन्तों के उचित उत्तराधिकारी हैं।"

❀❀

९

तीसरी वृत्ति विकल्प

विपर्यय के बाद अब तीसरी वृत्ति विकल्प पर विचार करते हैं। इसका शब्दार्थ है, सन्देह, भ्रान्ति, अर्थात् हेर फेर, बिना सिर पैर की बातें। जब मन इसके चक्र में फँस जाता है, तो कहीं का नहीं रहता, कोई भी कार्य ठीक रूप से नहीं हो पाता। गल्त करता हुआ भी अपने काम को ठीक समझता है। इस वृत्ति के आधीन होकर आज के मनुष्य ने धर्म को भी भिन्न-भिन्न तरीकों का सहारा लेकर अपने को भ्रम में डाल रखा है। धर्म का इस तरह विभाजन कर दिया गया है—

(१) **राजनीतिक धर्म**—यह समझा जाता है कि राजनीति में वही प्रवीण हो सकता है जो दो अर्थ प्रकट करने वाली वाणी बोलने में निपुण हो,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अथवा जिस के शब्दों की व्याख्याएँ विभिन्न प्रकार से की जा सकें, सुनने या पढ़ने वाले को सन्देह के चक्र में डाल दे। इस सिद्धान्त की पुष्टि महाभारत में श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन के प्रति की गयी सहायता की घटनाओं से की जाती हैं। दूसरों को मूर्ख बनाना ही इस धर्म का लक्षण समझा जाता है। इसके विपरीत गांधी जी कहते हैं "जिस धर्म को व्यवहार में उतारा न जा सके, वह धर्म नहीं किन्तु अधर्म है।" आजकल ऐसे अधर्म को ही राजनीतिक धर्म समझा जाता है, अर्थात् मन में कुछ और वाणी में कुछ। इसी का यह परिणाम है कि प्रत्येक नया दिन संसार के विनाश का संदेश लेकर आता है। इस रोग का इलाज, स्वामी शिवानन्द जी के शब्दों में—

> The world based upon righteousness alone can realise the ideal of universal welfare and lasting peace, that the political leaders profess to be striving at.'

अर्थात्, सच्चाई के सीधे रास्ते पर चल कर ही सार्वभौम कल्याण और शान्ति स्थापित हो सकती है, आज का राजनीतिक नेता इसी दिशा में प्रयत्न करने का दावा करता है।

यह कभी नहीं हो सकता कि गल्त रास्ते पर चल कर कोई अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सके, अथवा सीधे रास्ते पर चल कर कोई भटकता हो।

रास्ती मूजबे राजाए खुदा अस्त।
कस न दीदम कि गुमशुद अज राहे रास्त॥

अर्थात्, "सत्य ही ईश्वर का रूप है। सच्चे रास्ते पर चलते हुए किसी व्यक्ति को भूला हुआ नहीं देखा गया।" फिर भी लोग राजनीतिक धर्म को सच्चे और वास्तविक धर्म के नाम से पुकारते हैं। देश में उत्थान के लिए इसे ही लाभ-दायक समझते हैं। इसके फलस्वरूप, जीवन में वास्तविकता नहीं आती।

(२) वह धर्म जो मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा इत्यादि तक ही सीमित है, धर्म नहीं कहा जा सकता। पाठक पूछ सकते हैं कि यह पृथक् धर्म कौन सा है? अपराधी को अपराध स्वीकार कराने के लिए धर्म स्थान में खड़े होकर शपथ उठाने के लिए कहा जाता है कि वह कह दे कि "मैंने अपराध नहीं किया, तब, तुम्हें छोड़ दिया जाएगा।" इसका स्पष्ट अभिप्राय यही है कि धर्म इन्हीं ईंट पत्थरों के भवनों तक ही सीमित है, बाहर नहीं, और वह प्रभु भी इन धर्म मन्दिरों के भीतर ही अपराध का दंड देगा, बाहर किये अपराधों का नहीं। क्या विचित्र विचार है? मैं तो इसे बे सिर पैर की बात कहता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हूँ। धर्मस्थान में खड़ा जब कोई व्यक्ति असत्य बात कह रहा हो तो लोग यही कहते हैं "भाई ! इस मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा में तो खड़े होकर ऐसी बात न कहो।" इसका मतलब हुआ, बाहर जाकर कहना अपराध नहीं है। एक उर्दू कवि के शब्दों में—

जाहिद शराब पीने दे मस्जिद में बैठ कर।
या वो जगह बता कि जहाँ पर खुदा न हो॥

(३) **कचहरी का धर्म**—इसकी आजकल बहुत चर्चा है। जब कोई गवाह अदालत में पेश होता है तो उससे पहले यह कहलाया जाता है कि "कसम उठाओ, जो कुछ कहोगे, धर्म से सच कहोगे।" गवाह रटे हुए शब्दों की तरह कह देता है "धर्म से सच ही कहूँगा" लेकिन कुछ क्षणों के बाद ही, बिना किसी हिचकिचाहाट के, साफ झूठ बोलना शुरू कर देता है। जब कोई पूछे तो उत्तर यही मिलता है "यह तो कचहरी का धर्म है।" यह सब हेर फेर विकल्प वृत्ति ने डाल रखे हैं। व्यक्ति सत्य को शब्दों के जाल में छिपाना चाहता है।

(४) **व्यापार का धर्म**—यह प्रायः कहा जाता है कि आजकल व्यापार झूठ के बिना चल नहीं सकता। पर किसी दूकान पर जाओ, वहां यह लिखे वाक्य टंगे दिखायी देते हैं "ईमानदारी ही सर्वोत्तम नीति है।" (Honesty is the best policy)। कहीं लिखा है "कम तोलना नहीं, झूठ बोलना नहीं।" कहीं लिखा है सच्ची दूकान और एक दाम," इत्यादि। फिर भी, बोल चाल में जिसे असम्भव कहा जाता है, उसके ही एकदम प्रतिकूल केवल दिखावे के लिए ऐसे भ्रम पूर्ण वाक्य टाँगे जाते हैं। यदि लोगों को यह विश्वास हो जाए कि अमुक दूकानदार झूठ का व्यापार करता है, तो उसके समीप कोई ग्राहक फटकेगा भी नहीं। अजब तमाशा है !

झूठ बोले हैं सदा, और काम कमीनों के करें।
इस पर भी है यह ख्वाहिश, कि कायम मेरा ईमां रहे॥

(५) **व्यवहार का धर्म**—इसका सम्बन्ध परिवार के लोगों, सम्बन्धियों और मिलने जुलने वालों से है। इसे आजकल की भाषा में "Formality" या लोकाचार कहा जाता है। इस धर्म की आड़ में जितना जाल फैला हुआ है वह बहुत भयंकर है। जब कोई अतिथि सपरिवार घर में आता है, तब घर के लोग दिल में तो कुढ़ते हैं कि आवभगत में दो-तीन रुपये की डिग्री हो गयी पर ऊपर से यही कहते हैं "आइए, बड़ी कृपा की दर्शन दिये,... ..." "ईद का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चांद चढ़ गया·····" इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। कलपते-कुढ़ते उनकी सेवा में खूब जोर लगाया जाता है। पर, उनके घर से बाहर निकलते ही उनकी निन्दा शुरू हो जाती है। इस प्रकार की ढोंग भरी आवभगत के बदले यदि घड़े के ठंडे पानी से ही सेवा की जाए तो न घरवालों को कोई कष्ट और न अतिथि को बार बार आने का प्रलोभन रहे। पर क्या किया जाए, यह लोकाचार का धर्म भूत बनकर आज के समाज को खा रहा है। नामकरण, मुंडन, विवाह इत्यादि संस्कारों में लोकाचार का यह दौर चलता है। लोग रोते-पीटते भी जा रहे हैं, शिकायत भी करते हैं, कि "मर गये," पर छोड़ते फिर भी नहीं। चिल्लाते हैं कि "कोई सुधारक इनका अन्त नहीं करता" पर खुद करते भी जाते हैं। नाक की लाज तो रखनी ही है, चाहे दिल सहे व न सहे। इस वृत्ति के अन्य भी कई भेद हैं।

विकल्प की इस प्रवृत्ति के निरोध की परम आवश्यकता है, अन्यथा—

तरसम न रसी बकाबा, ऐराबी को
राह के तू मे रवी, बतुर्किस्तान अस्त।

अर्थात्, हे मनुष्य !! मैं डरता हूँ, तू काबे नहीं पहुँचेगा, जिस मार्ग पर तू चल रहा है वह तुर्किस्तान जाता है।

❀❀

१०

निद्रा की वृत्ति

अब चौथी वृत्ति निद्रा पर विचार करेंगे। इसका अभिप्राय है, जब समस्त इन्द्रियाँ विश्राम करें पर प्राण काम करें। इसमें तमोगुण प्रधान होता है। मन इस हालत में कुछ न कुछ करता ही रहता है। इसमें अभिव्यक्ति की शक्ति नहीं होती।

निद्रा तीन प्रकार की है (१) शारीरिक (२) मानसिक और (३) बौद्धिक। केवल शारीरिक निद्रा को ही, प्रायः, निद्रा समझा जाता है, शेष

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दोनों के प्रति लोग लापरवाह हैं। पर शारीरिक निद्रा के सम्बन्ध में भी ठीक ज्ञान की कमी है।

शारीरिक निद्रा की चार अवस्थाएं हैं—(१) नींद न आना (२) नींद कम आना (३) नींद ठीक तरह आना और (४) नींद अधिक आना। पहली और दूसरी अवस्था बताती है कि शरीर रोगी है। तीसरी हालत शरीर की नीरोगता को प्रकट करती है और चौथी शरीर के आलस्य ग्रस्त होने की सूचक है। यह चौथी अवस्था भी एक भयानक रोग है।

इस वृत्ति का निरोध क्या है? यही कि निद्रा अपने वश में हो। इसमें अधिक होने का तो कोई मतलब ही नहीं। आलस्य की हालत से तो ऊपर उठना ही है। पर निद्रा की कमी भी सताने वाली न हो। गीता में अर्जुन ने कृष्णा को कई बार "गुडाकेश" के नाम से सम्बोधित किया है। रामायण में श्री राम को भी इस नाम से स्मरण किया गया है। "गुडाक" कहते हैं निद्रा को, और ईश का अर्थ है स्वामी, अर्थात्, निद्रा का स्वामी। श्री राम के सम्बन्ध में लिखा हुआ है कि जब विश्वामित्र ऋषि राम-लक्ष्मण को दशरथ से यज्ञ की रक्षा के लिए मांगकर ले गये, उस समय यज्ञ दिन-रात चलता था। राक्षस रात को यज्ञ में विघ्न डालते थे। दिन रात पहरा देने की आवश्यकता थी। दोनों भाई मिलकर दिन रात को पहरा देते ही थे, रात को लक्ष्मण सो जाते, पर निद्रा पर नियंत्रण रखने से राम जागते ही रहते थे। कई रात तक जागते रहने से ही राक्षसों के अत्याचारों का अन्त हो सका। इसी कारण श्री राम को भी "गुडाकेश" कहते हैं। निद्रा मानव देह के लिए आवश्यक है। यह तो नहीं हो सकता कि कोई सारी आयु जाग सके पर इतना नियंत्रण तो आवश्यक है कि निद्रा मात्रा में हो, किसी रोग के कारण नहीं, पर सदा अपने काबू में हो। वश में करने का दूसरा रूप यह है कि निद्रा का विचार करते ही जब सिर सिरहाने पर रखा तो कुछ क्षण में ही नींद आ जाए। जब उठने का निश्चय किया तो, अलार्म की घड़ी इत्यादि के बिना, ठीक समय पर, जाग खुल जाए। शरीर की दृष्टि से निद्रा पर यही नियंत्रण है। नैपोलियन के बारे में कहा जाता है कि वह युद्ध में घोड़े पर ही कुछ क्षणों के लिए सोकर निद्रा को पूरा कर लेता था। नेहरू जी के सम्बन्ध में भी कहा जाता है कि वह रात को १२-१ बजे तक काम करके प्रातः ठीक ४ बजे उठ जाते थे। जो भी व्यक्ति अपने कार्य के दायित्व को समझता है, उसे नींद सता नहीं सकती, निद्रा उसके अधीन ही हो जाती है। रामायण में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कुम्भकर्ण की निद्रा की अवधि छः महीने वा इससे अधिक समय तक की कही गयी है जो ढोल बजाने से भी नहीं खुलती थी। मैं इस निद्रा का सम्बन्ध शरीर से इतना नहीं समझता जितना मन और बुद्धि की निद्रा के साथ। कुम्भकर्ण तो आलस्य की एक मूर्ति ही होगा और सामान्य पुरुषों से ज्यादा सोता होगा। पर, वस्तुतः, कुम्भकर्ण मानसिक और बौद्धिक निद्रा का शिकार था, जिसे ज्ञान व उपदेश के ढोल भी जगा न सकते थे।

दूसरे ढंग की निद्रा मानसिक है जो आज के मानव के जीवन पर ठीक लागू होती है। वस्तुतः, ये लोग ही कुम्भकर्ण के उत्तराधिकारी हैं। रावण के साथ प्रति वर्ष कुम्भकर्ण को जलाते हुए भी आज का मानव उसी का अनुकरण कर रहा है। कितने ढोल प्रतिदिन बजते रहते हैं, यह मन्दिरों और धर्म स्थानों वा सत्संगों में जाकर देखें, पर उपदेशकों के गले फाड़-फाड़कर बोलने का कोई प्रभाव नहीं होता। कबीर ने ठीक कहा है :—

कहता हूं कहे जात हूं, कहूँ बजा कर ढोल।
साँसा खाली जात हैं, जो तीन लोक का मोल॥

यही कुम्भकर्ण की नींद है। शारीरिक निद्रा की तुलना में यह मानसिक निद्रा अधिक बुरी है। क्योंकि खुली हुई आँखों के साथ आज का मानव सो रहा है। ज्ञान-उपदेशों की भरमार होते हुए भी उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। एक कवि के शब्दों में :—

नजर वालों को भी दुश्वार है अहले नजर होना।
खुली हैं जिनकी आंखें हमने उनको देखा॥

तीसरी प्रकार की नींद बुद्धि की है। इस निद्रा ने मानव की जितनी क्षति की है, उतनी शायद पहली दो ने नहीं की है। यह निद्रा क्या है ? अन्ध विश्वास ही यह निद्रा है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जो सबसे बड़ा उपकार किया, वह जनता को बुद्धि की जागृति देना था। प्रसुप्त बुद्धियों को ऋषि ने जगाया। यात्रा, हजामत इत्यादि के बारे में अनेक वहम थे। स्वामी जी ने इस सम्बन्ध में बुद्धि का प्रयोग सिखाया। बुद्धि की कसौटी पर जो बात खरी न उतरे उसे त्याग देना—यही ऋषि ने बताया।

भावार्थ यह है कि हर काम में "क्यों" का प्रयोग करके अज्ञान की नींद को तोड़ना है। हमारे पुरखा ऐसा करते थे, इसलिए हम भी ऐसा करें—यह अपनी बुद्धि पर ताला लगा देना है। यही बुद्धि की निद्रा है।

❀❀

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

११

पाँचवीं वृत्ति स्मृति

स्मृति का शब्दार्थ है, याददाश्त। इसके दो भेद हैं। (१) **भावित**—निद्रा की स्मृति। निद्रा में जागृत की बातें स्मरण होती हैं पर हमें यह अनुभव नहीं होता कि हम स्मरण कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो सब कुछ ठीक हो रहा है। (२) **अभावित**—इस अवस्था में जो कुछ हम स्मरण करते हैं, हम जानते हैं कि वह अब हो नहीं रहा पर भूत काल की किसी घटना का स्मरण कर रहे हैं।

पहली प्रकार की स्मृति तो भूलभूलैयों का खेल है। इस पर नियंत्रण पाना दूसरी प्रकार की स्मृति से कहीं अधिक कठिन है। इसका सम्बन्ध मन के विचारों के साथ है। जागृत में हम जो कुछ करते हैं, उन्हीं का हेर फेर स्वप्नों में होता है। कई बार देखी व सुनी-सुनायी बातें भी साक्षात् रूप धारण करके सामने आती हैं। कई बार, हिंसा पशु, पक्षी व चोर, डाकू के भय से, स्वप्न में भी, पसीना आने लगता है। कभी कभी, चीख व रोना भी आ जाता है। जागने तक परेशानी की हालत रहती है। कई बार, चिरकाल पहले, मरे हुए माता पिता, व बुजुर्ग व अन्य प्रियजन की शक्लें स्वप्न में दिखाई देती हैं। यह भूल जाते हैं कि स्वप्न में जिससे बातें कर रहे हैं, वह तो मर चुका है। कई अच्छे विचार वाले लोगों को स्वप्न में गुरु के दर्शन होते हैं। संक्षेपतः, जागृत काल में जैसा-जैसा मन इन्द्रियों द्वारा क्रिया व चिन्तन करता है, वैसे वैसे चित्र स्वप्न में हमारे सामने आते हैं। इस स्मृति का क्षेत्र बहुत दूर तक होता है। कई बार ऐसे भी स्वप्न आते हैं जिनका कोई सिर पैर ही नहीं होता और ऐसे दृश्य सामने आते हैं जिन्हें हमने कभी देखा सुना नहीं। यद्यपि ऐसे स्वप्न बहुत कम होते हैं पर असम्भव नहीं। इसका स्पष्टीकरण यह है कि ऐसे स्वप्नों का सम्बन्ध हमारे पिछले किसी जन्म के साथ होता है। हमारे सिद्धान्त के अनुसार, जीवन एक जन्म के साथ ही

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समाप्त नहीं हो जाता, अपितु, जब तक जीव मुक्तावस्था को प्राप्त नहीं होता, यह जन्म मृत्यु का चक्र निरन्तर चलता रहता है। मृत्यु भी, वस्तुतः, जीवन के एक दूसरे रूप का नाम ही तो है, जैसे बाल्य काल के बाद, यौवन, वृद्धावस्था, फिर मृत्यु और फिर मृत्यु के बाद जन्म और फिर बाल्य काल। एक कवि के शब्दों में :—

मेरी जिन्दगी मुसल्सल एक सफ़र है।
जो नजदीक पहुँचे तो मंजिल बढ़ा दी॥

इस प्रकार की स्मृति पर नियंत्रण करना एक बड़ी समस्या है। भूत काल की बातें याद आये बिना तो रह नहीं सकतीं पर इनकी स्मृति को निर्बल किया जा सकता है, स्वाध्याय, प्रभु नाम स्मरण और ईश्वर की समीपता प्राप्त करने से। स्वप्न में जब कोई प्रतिकूल संस्कार जागेंगे, तब स्वाध्याय, और प्रभु स्मरण से यह संस्कार मन्द और निर्बल हो जाएँगे। स्वप्न में भी पाप में प्रवृत्त होने से मनुष्य बच जाएगा। स्वप्न में आये दुःख व कष्ट का सामना करने का बल मिल जाएगा। स्वप्न की परेशानी भी तंग न कर सकेगी। उत्तम और शुद्ध विचारों के संग्रह से, दुःखद स्वप्नों से मुक्ति मिल जाएगी। इस ढंग की स्मृति को वश में करना कठिन अवश्य है पर साहस के सम्मुख कुछ भी असम्भव नहीं रहता।

अब अभावित की अवस्था पर विचार करें। इस स्थिति में जो कुछ भी स्मरण करते हैं, वह सीमित है। पिछले जन्म की बात स्वप्न में तो कुछ याद हो सकती है पर जागृत काल में नहीं। कुछ असाधारण व्यक्तियों को छोड़ कर ही पिछले जन्म की घटनाओं का स्मरण संभव नहीं है। गीता में श्री कृष्ण अर्जुन को अध्याय ४।५ में कहते हैं :—

बहूनी मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप॥

हे अर्जुन! मेरे और तेरे जन्म अनेक हो चुके हैं पर उन्हें तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ।

सामान्य व्यक्ति को पहला जन्म स्मरण न होने में भी प्रभु की कृपा और दया है। इसकी व्याख्या मैं पहले कर चुका हूँ। इस जन्म की भी तो सब बातें हमें याद नहीं रहतीं। कई बार तो एक-दो दिन पहले का भोजन भी याद नहीं रहता। इसका सम्बन्ध तो स्मृति शक्ति की निर्बलता के साथ है। कई छात्रों को एक बार पढ़ कर भूलता नहीं और कई बेचारे बार-बार रट कर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भी याद नहीं कर पाते। ऐसी निर्बलता का उपाय तो प्रार्थना ही है। इसके लिए मैं एक नुस्खा भी बताया करता हूँ। रात को अन्न का भोजन त्याग करके, गिरी बादाम ६, सौंफ ६ माशे, किशमिश ½ छटाँक,—सब को कूट, और मिलाकर आध सेर गौ के दूध के साथ खाने से स्मृति शक्ति बढ़ जाती है और नेत्र-ज्योति को भी लाभ पहुँचता है। पर अभावित स्मृति का एक अन्य रूप भी है। हम प्रतिदिन सुनते हैं कि ईश्वर सर्व व्यापक है, वेद भी यही कहता है, हम अपने को वेद का अनुयायी मानते हैं। पर किसी भी पाप कर्म (मानसिक, वाचिक, कायिक) करने से निवृत्त नहीं होते हैं, भले ही वह पाप छोटा ही क्यों न हो। उस समय हमें प्रभु की सर्व व्यापकता भूल जाती है। स्मृति का यह रूप सर्वाधिक भयंकर है और इस पर विशेष नियंत्रण की आवश्यकता है। प्रलोभन के सामने आते ही एक कवि के शब्दों में :—

शराबे हुस्न का सागर कोई जब पेश करता है।
मेरी तौबा के टुकड़े ढूंढने से भी नहीं मिलते॥

स्मृति का जीवन पर कैसे गहरा असर होता है और विनाश की ओर मनुष्य कैसे बढ़ता है, गीता के अ० २, श्लोक ६२,६३ में यह सुन्दर ढंग से बताया गया है :—

ध्यायतो विषयान् पुंसः, संगस्तेषूपजायते।
संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधात् भवति संमोहा संमोहाद् स्मृति विभ्रमः।
स्मृति भ्रंशात् बुद्धि नाशः, बुद्धि नाशात् प्रणश्यति॥

विषयों का चिन्तन करने से उनमें आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से कामना, कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध पैदा होता है, क्रोध से अविवेक और इससे स्मृति शक्ति भ्रान्त हो जाती है, स्मृति के भ्रान्त होने से बुद्धि, ज्ञान शक्ति का नाश और इससे सर्वनाश हो जाता है। स्पष्ट है, स्मृति को बिगाड़ने वाला क्रोध है, क्रोध का जन्म विषयों के चिन्तन से होता है। इसलिए स्मृति को काबू करने के लिए जड़ को काटने की जरूरत है। नींव ठीक न होने से सारी दीवार टेढ़ी हो जाएगी। विषयों का चिन्तन करने वाली स्मृति सदा भ्रान्त ही रहेगी, उस में क्रोध का आवेश ही रहेगा।

न गुस्से में इन्सां रहे दूरबीन।
कि कहते हैं कि गुस्से की आँखें नहीं॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

क्रोध में मनुष्य अपने आदरणीय और सम्माननीय व्यक्तियों को भी भूल जाता है, ध्यान नहीं करता कि वह किस से बात कर रहा है और अनाप-शनाप बोलकर, स्मृति के ठीक होने पर, पछताता है। पर आजकल लोग जीवन-चक्र के प्रवाह में प्रभु को भूल जाते हैं :—

खुदा को भूल गये लोग फ़िक्रे रोजी में।
रिजक का ख्याल है, रिज़ाक का ख्याल नहीं॥

❀❀

१२

योग के आठ अंग

पाँच यम

पिछले अध्यायों में हमने पाँचों चित्त-वृत्तियों पर, विस्तार से, प्रकाश डाला है। महर्षि पातंजल कहते हैं कि इन वृत्तियों के निरोध का नाम ही योग है। प्रश्न है, कि इनका निरोध कैसे हो ? महर्षि योग दर्शन में इसका उपाय बताते हैं—**"अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः"**। अभ्यास के लिए ऋषि ने योग के आठ अंग बताये हैं। इन्हें अष्टांग योग कहते हैं, अर्थात्, (१) यम (२) नियम (३) आसन (४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार (६) धारणा (७) ध्यान और (८) समाधि। इस अष्टांग योग से चित्त वृत्ति का निरोध होता है और ज्यों-ज्यों चित्त वृत्ति का निरोध होता है, इन अंगों के पालन करने में सुविधा होती है, जिसका अन्तिम लक्ष्य समाधि तक पहुँचना है। अब हम, क्रमशः, इन आठ अंगों की व्याख्या करते हैं।

(१) **यम**—इसका सम्बन्ध हमारे सामाजिक और समष्टिगत जीवन के साथ है। "यम" शब्द का अर्थ है रोकना, अर्थात्, कुछ रोकें अपने लिये, आत्म संयम करना। किसी दूसरे द्वारा लगायी गयी रोक बन्धन का कारण होती है पर अपने द्वारा अपने पर लगायी गयी रोक रक्षा का साधन होती है। जैसे, कमरे में बैठे किसी व्यक्ति को कोई दरवाजे के बाहर साँकल लगा दे,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तो वह बन्धन ही है और अगर इसी कमरे के द्वार को वही व्यक्ति अन्दर से बन्द करके बैठ जाए, तो वह साँकल लगा द्वार अपनी रक्षा का काम करता है। कारण, यह बंधन उस व्यक्ति ने स्वयं लगाया है, उस पर बाहर से ठोसा नहीं गया। दूसरे के द्वारा ठोंसी गयी रोक में यह दोष होता है कि मनुष्य उससे मुक्ति चाहता है और वह रोक दुःख का कारण ही हो जाती है। स्वयं लगायी गयी रोक में कुछ कष्ट भी हो, तब भी वह कष्ट न होकर आनन्द प्राप्ति का कारण बन जाती है। महर्षि पातंजल ने यम के पाँच उपाँग बताये हैं (१) अहिंसा (२) सत्य (३) अस्तेय (४) ब्रह्मचर्य (५) अपरिग्रह। इन पाँचों में प्रत्येक अपने-अपने स्थान पर महत्त्व रखता है।

(१) **अहिंसा**—हिंसा का अभिप्राय है, मन, वचन, और कर्म से किसी को दुःख देना व मारना। हिंसा के साथ "अ" उपसर्ग लगा देने से "हिंसा" "अहिंसा" का रूप धारण कर लेती है और इसका अर्थ भी एकदम विपरीत हो जाता है। मन, वचन और कर्म से किसी को दुःख न देना, हृदय में इसका भाव भी न लाना, अहिंसा है। इसका पालन सहज नहीं है। यही कारण है कि आज के मानव के दिमाग में इस अहिंसा का तत्त्व बैठता ही नहीं है। इसी भूल के कारण, लोग, प्रायः, इसे नपुंसकों और निर्बलों का हथियार कहते हैं। निर्बलता के कारण की गयी अहिंसा नहीं कहला सकती। मेरे एक पत्र के उत्तर में गांधी जी ने अहिंसा की व्याख्या इस प्रकार की थी :—

"पत्र मिला। मेरे भाई! अहिंसात्म होना बड़ी कठिन तपस्या का फल है। पर जब अहिंसा की सिद्धि हो जाती है तब अहिंसात्मक पुरुष की वाणी और नेत्र जो काम कर सकते हैं, वह बन्दूक तलवार की शक्ति से अधिक है। जब तक अहिंसात्मक बुद्धि नहीं बन पाती तब तक ऐसे मौके पर (जो इन लड़कियों को गुंडों से बचाने के लिए कालेज के लड़कों ने किया—गुंडों को मारा-पीटा था) हिंसा से काम न लेना निर्बलता मानी जाती।"

सिद्ध हुआ, अहिंसा नपुंसकों का शस्त्र नहीं है। योग दर्शन में तो यहाँ तक लिखा है "जो मनुष्य अहिंसा की चरम सीमा प्राप्त कर लेता है, उसके चारों ओर के वातावरण में हिंसा के भाव ही समाप्त हो जाते हैं।" इस सूत्र की व्याख्या करते हुए गाँधी जी ने लिखा था "अगर अहिंसा कहीं आपको असफल दृष्टिगोचर हो तो यह न समझा जाए कि अहिंसा के सिद्धान्त में कहीं दोष है, अपितु अहिंसक की तपस्या में ही अभी कमी है।" ऐसा सुनते हैं कि स्वामी रामतीर्थ जब जंगल में रहते थे, तब सिंह आदि हिंसक पशु उनके आश्रम

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में ऐसे बैठते थे, जैसे गृहस्थी के द्वार के बाहर कुत्ते इत्यादि बैठते हैं। स्वामी जी का जीवन द्वेष रहित था। यह भी प्रसिद्ध है कि छोटे बच्चे—जो राग द्वेष से रहित निर्मल मन के होते है—साँपों से खेलते रहते हैं, और साँप उन्हें कभी डसता नहीं है। इसका एक मात्र कारण मन में अहिंसा का भाव होना है।

स्वामी दयानन्द के जीवन में आता है कि एक बार जब वे गंगा में स्नान कर रहे थे, तो किसी ने कहा कि "कोई भयंकर मगरमच्छ ऊपर से पानी में आ रहा है। आप नदी से बाहर निकल आयें।" स्वामी जी ने कहा—"जब मेरे मन में उसे दुःख देने की भावना नहीं है तो वह मुझे क्यों दुःख देगा ?" स्वामी जी गंगा जल में ही खड़े रहे और वह जल जन्तु पास ही से निकल गया।

ऐसी घटनाएँ सिद्ध करती हैं कि मनुष्य के मन में यदि विकार न हो तो हिंसक पशु भी हमें दुःख नहीं दे सकते। साधना की आवश्यकता है। अहिंसा का पालन हमारे मन का स्वाभाविक अंग बन जाए। एक उर्दू कवि के शब्दों में :—

जो किसी से अदावत न दगा करते हैं।
वही आराम से दुनिया में रहा करते हैं॥
जिनका शीश-ए-दिल साफ कदूरत से हुआ।
और के दिल को भी मिलने से जिला करते हैं॥
कौल-ओ-फेल-ओ-ख्यालात है उनके यकसां।
पाक बातन जो दुनियाँ में हुआ करते हैं॥

❀❀

१३

यम का दूसरा अंग, सत्य

गांधी जी ने एक जगह लिखा है कि "अगर मुझे यम और नियम के १० व्रतों पर चलने के लिए कहा जाए कि कोई एक व्रत चुन लो तो मैं सत्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

को ही चुनूंगा," क्योंकि, वह लिखते हैं—मैं सत्य को ही परमेश्वर समझता हूँ।" मैं इसकी व्याख्या यूँ करता हूँ कि एक पूर्ण सत्यवादी और प्रभु के मध्य कोई पर्दा मौजूद नहीं रहता। जो प्रभु भक्त हैं, उनकी यह उत्कट इच्छा होती है कि प्रभु और उनके मध्य कोई रुकावट न रहे। पर वर्षों तक प्रयत्न करने के बावजूद, यह पर्दा हटने में नहीं आता। इसका एकमात्र कारण सत्य को पूर्ण रूप से धारण न कर सकना है। यह दिखाने के लिए कि दूसरे मुझे सत्यवादी समझें, ऐसा ढोंग तो बहुत लोग कर सकते हैं और कुछ लोग उन्हें ऐसा समझते भी हैं। पर वे स्वयं अपने आपको ऐसा समझते हैं कि नहीं कि जैसा लोग उन्हें समझते हैं—यही वस्तुतः रहस्य की बात है। एक अंग्रेज विद्वान् के शब्दों में :—

Every body knows where shoe pinches him.

प्रत्येक व्यक्ति स्वयं ही जानता है कि उसकी जूती उसे कहाँ काट रही है। दूर से देखने वाला उस जूती की शक्ल और खूबसूरती देखकर, उसकी अच्छाई-बुराई का अनुमान लगा सकता है। जब अन्दर झांकने की कोशिश की जाए और अपने आपको सत्य के तराजू पर तोला जाए तो फिर, कबीर के शब्दों में :—

बुरा जो ढूंढन मैं चला, बुरा न दीखा कोय।
जो घट खोजूं आपना, तो मुझसा बुरा न कोय॥

पर, जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ कि दोष यही है कि बस, सच्चा कहलाने के लिए ही सच्चाई का सेवन किया जाता है वस्तुतः सच्चा होने के लिए नहीं। इसी को मैं अपने आपके साथ धोखा देना समझता हूँ। महर्षि पातंजल योग दर्शन में लिखते हैं—"जो सत्य की पराकाष्ठा को प्राप्त कर लेते हैं, उनके सम्मुख कोई झूठ बोलने का साहस नहीं कर सकता। जो कुछ वे कहते हैं, वह हो जाता है।"

मानव जीवन की इमारत को बनाने के लिए महर्षि पातंजल ने नींव में यम और नियम रखे हैं। यम और नियमों का आधार अहिंसा और सत्य को माना है। जो लोग इस आधार की उपेक्षा करके भवन-निर्माण करना चाहते हैं, उन लोगों की वही हालत होती है जो पहली और दूसरी मंजिल छोड़, कूदकर तीसरी मंजिल पर पहुँचना चाहते हैं। ऐसा व्यक्ति अपने घुटने और टखने तोड़ ही लेगा। स्वामी शिवानन्द जी के शब्दों में :—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"All of a sudden you cannot jump to meditation and Samadhi. You will fall down and break your legs."

अर्थात्, आप एकदम छलाँग लगा कर ध्यान और समाधि तक नहीं पहुँच सकते। ऐसा करने की कोशिश करेंगे तो गिर जाएंगे और टाँगें टूट जाएंगी।

इस मंजिल की ओर बढ़ने के लिए क्या साधन होने चाहिएं, स्वामी शिवानन्द जी के शब्दों में—

"Purify your heart first. It cannot be done in a day or in a week or in a month. You wil have to struggle for a long time. Be patient and persevering."

"सबसे पहले अपने मन को पवित्र करो। यह काम एक दिन, एक सप्ताह अथवा एक मास में होने वाला नहीं है। इसके लिए दीर्घकाल तक परिश्रम करना होगा। इसलिए धैर्य और दृढ़ विश्वास के साथ डट जाओ।" मन कैसे पवित्र होता है? मनु ने लिखा है कि जल से शरीर के अंग, और सत्य से मन की शुद्धि होती है। जब तक हमारे जीवन में झूठ का लेश मात्र भी है, तब तक मन में उतनी सीमा तक विकार रहेगा और हम अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकेंगे। साँसारिक प्रलोभन मनुष्य को सत्य पर अडिग नहीं रहने देते। इसीलिए निरन्तर प्रयत्न की आवश्यकता है। यह सिद्धि दिनों व महीनों में होने वाली नहीं है। इस मार्ग के पथिक के लिए अत्यन्त धैर्य और दृढ़ विश्वास की आवश्यकता है। जब सफलता हो जाती है, तो स्वामी रामतीर्थ के शब्दों में :—

"The whole nature is bound to co-operate with and serve one who stands by truth, nothing but truth."

"समस्त प्रकृति उसके प्रति सहयोग और सेवा के लिए सदा तैयार रहती है, जो सत्य और केवल मात्र सत्य के आश्रय खड़ा होता है।" यह तो प्रभु का अटल नियम है।

स्वामी रामतीर्थ ने "केवल सत्य ही" यह शब्द जोड़कर यह चेतावनी दी है कि अल्प सत्य का प्रयोग करके पूर्ण परिणाम प्राप्त करने के अभिलाषियों की यही हालत होती है :—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एरन की चोरी करें, दें सूई का दान।
ऊंचा चढ़-चढ़ देखते, कि आवें पुष्प विमान॥

आज के संसार में जो भयंकर युद्ध का वातावरण फैला हुआ है, उसके मूल में सत्य का एकदम अभाव ही है। इसीलिए, आज विश्व एक ज्वालामुखी के मुँह पर खड़ा है, पता नहीं कब फट जाए ? आज का राजनीतिज्ञ अपने वक्तव्य की विशेषता इसी में समझता है कि उसकी कई व्याख्याएँ हो सकें, और वह, वस्तुतः, क्या चाहता है, यह कोई भी समझ न सके। यही सफलता राजनीतिज्ञ की निशानी समझी जाती है। कबीर के शब्दों में :—

चलती को गाड़ी कहें, बने दूध को खोया।
रंगी को नारंगी कहें, देख कबीरा रोया॥

यही कारण है कि आज का मानव संतप्त है। सत्य के मार्ग को लम्बा समझ कर झूठ के छोटे रास्ते का अवलम्बन प्रत्येक व्यक्ति करना चाहता है। एक अंग्रेज विद्वान् के शब्दों में :—

"Better though difficult the right way to go, than wrong though easy where end is woe."

सत्य का मार्ग चाहे कठिन भी हो, उत्तम है अपेक्षा असत्य के मार्ग से—भले ही वह सुगम हो—क्योंकि उसका अन्त क्लेश ही है।

❀❀

१४

तीसरा अंग, अस्तेय

(१) चार प्रकार के व्यक्ति

स्तेय कहते हैं, चोरी करने को और अस्तेय कहते हैं चोरी न करने को। आम बोल चाल में चोरी करना कहते हैं, किसी की चीज बिना पूछे उठा लेना, सेंध लगाकर किसी का माल-मत्ता उड़ा लेना। पर योग विद्या में स्तेय का ऐसा अर्थ करना अधूरा है। इसका क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। विद्वान् कई ढंग

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

से चोरी की व्याख्या करते हैं। चोरी के प्रकार निम्न हैं :

(१) धन की चोरी (२) अन्न की चोरी (३) समय की चोरी (४) ज्ञान की चोरी (५) काम की चोरी (६) न्याय की चोरी (७) सामाजिक कुरीतियों में फंसकर वास्तविक रूप को छिपाना (८) चुगलखोरी (९) शक्ति होते हुए भी दान न देना (१०) वाणी और (११) मन—इन दोनों का विभिन्न रूप और ढंग से अनुचित प्रयोग यह सब चोरी ही हैं।

(१) धन की चोरी—इस सम्बन्ध में किसी की तिजोरी तोड़ कर व सेंध लगाकर धन हड़पने को तो प्रत्येक चोरी समझता है पर जो सामने बैठ कर ही चोरी करते हैं, उन्हें कोई चोर नहीं कहता, जैसे कम तोलने, और मापने वाला और जो ग्राहक को अपनी ठगी के हुनर का पता ही न लगने दे,—इत्यादि को कौन चोर कह सकता है ? दूध में पानी, शुद्ध घी में डालडा, अन्य खाने-पीने की चीजों में जो मिलावट करने वाले हैं,—क्या ये सब चोरी नहीं कर रहे ? लेकिन इस प्रकार की चोरी करते-करते जब उनके पास धन इकट्ठा हो जाता है, तो इनका मान सामान्य परिचितों के क्षेत्र में बढ़ जाता है। इसी का नाम है, चोरी को प्रोत्साहन देना। इससे दूसरों को भी चोरी का व्यवहार करने की प्रेरणा मिलती है। इस प्रकार के चार व्यक्ति कहे जा सकते हैं :—

(१) अनुचित उपायों से कमा कर अनुचित ढंग से खर्च करने वाले (२) अनुचित ढंग से कमा कर भले कामों में खर्च करने वाले (३) नेक ढंग से कमाकर अशुद्ध तरीके से खर्च करने वाले—ये तीनों वर्ग समाज के चोर हैं पर अनुपात की दृष्टि से न्यून अधिक हैं। चोरी के दोष से बचा हुआ चौथे प्रकार का व्यक्ति है (४) जो अच्छे ढंग से कमा कर अच्छे तरीके से खर्च करता है।

आज के संसार में चौथे ढंग के पुरुष बहुत कम मिलते हैं। दूसरे और तीसरे ढंग के, सम्भवतः, कुछ फीसदी मिल जाएँ पर अधिकता पहली श्रेणी के व्यक्तियों की है। इन लोगों का कमाना और खर्च करना—दोनों ही अनुचित प्रकार के हैं। इसका एकमात्र कारण लोभ की वृत्ति की प्रधानता है। लोभ बड़ा पेटू है। इसका पेट सहज ही नहीं भरने में आता। तृष्णा से ज्यों-ज्यों इसे भरने की चेष्टा की जाती है, इसके पाँव फैलते जाते हैं। किसी ने ठीक ही कहा है :—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हिरसों को छोड़ें न दौलत का फेर ।
कहां आग ईंधन से होती है सैर ।।
हबसे सैर तुझको करें किस तरह ।
कि छलनी में पानी भरे किस तरह ।।

(२) दूसरे वर्ग के जो व्यक्ति हैं, वे पहले प्रकार के लोगों से, निश्चय ही, कहीं अच्छे हैं। पर इनका आधार अशुद्ध है। अच्छे प्रकार से खर्च करने की कोशिश दिखावा कही जा सकती है।

न दान उस धनी का किस काम आये ।
जो बोले तो झूठ, और मन्दिर बनाये ।।
समझ बूझ जाहिल को कम चाहे ।
फ़कत उसको जाहो-हशम चाहे ।।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि बुरे ढंग से खर्च करने में जिस चोरी का अपराधी उसे बनना था, उससे वह बच गया। यह भी कौन से कम लाभ की बात है ? पर आधार अनुचित होने से जो इमारत खड़ी होगी, उसमें कमजोरी हमेशा रहेगी :—

ग़श्ते अव्वल गर रखे मेमार कच्चे ।
ता सर पा जाइए दीवार कच्चे ।।

दूसरी श्रेणी के जो व्यक्ति हैं, उन्होंने बुनियाद ठीक रख दी, पर ऊपर की मंजिल टेढ़ी हो गयी तो भी इमारत खतरे से खाली न रहेगी। भगवान् ने बिना चोरी किये धन प्रदान किया और उसके प्रयोग में भूल हो गयी, जैसे, अभिमान आ गया, तो वही हाथी वाली बात हुई कि स्नान करके ऊपर मिट्टी डाल ली, खीर तो बड़े चाव से पकाई पर ऊपर खांड के बदले राख डाल दी। इस स्थिति में तो मनुष्य को संभलकर चलना चाहिए :—

कहीं लग के ठोकर न जाए उछल ।
भरा है जो प्याला तो हमवार चल ।।

ऐसे व्यक्ति रस्मो-रिवाज के चक्कर में फंस कर धन को अशुद्ध तरीकों से बरबाद कर डालते हैं। उन्हें यह मालूम नहीं होता कि वे किसके अधिकार को हड़प कर रहे हैं अथवा चोरी के शिकार हो रहे हैं।

तीसरी श्रेणी के लोग वह हैं जो अपनी नाक को लम्बा करने की चिन्ता में लगे रहते हैं। इन्हें किसी के दुःख दर्द से क्या, कोई मरे या जीए ? इन लोगों ने तो अपने आपको घर की चार दीवारी में ही बन्द कर रखा है। पर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai,

आश्चर्य यह है कि ये लोग निर्धन और सहायता के पात्र के लिए कुछ भी देने को तैयार नहीं होते। इन्हें तो अपने अमीर दोस्तों और रिश्तेदारों का ही घर भरना होता है।

भरे हो को भरती है दुनियां मदाम।
समुन्दर को चाहते हैं दरिया तमाम॥

चाहिए तो यह था कि ऐसे अवसरों पर स्वयं यज्ञ शेष खाने की कोशिश की जाती, जहां कमी थी वहां दिया जाता। बढ़िया खाने पर खर्च करने के बदले गरीबों की दुआएं प्राप्त की जातीं, जैसा :—

दुआएं गरीबों की लेकर जियो।
गरीबों का भी जाने सेहत पीयो॥

लेकिन, जिसके पास धन का जोर है, वही अनुचित रीति-रिवाजों को खत्म नहीं करने देता। क्या ऐसे व्यक्ति समाज के चोर नहीं ? मैं तो समझता हूँ, बुरी और फिजूल रस्मों से बचना और दूसरों को बचाना, चोरी से बचना और बचाने वाली बात है।

बुरी रस्म से बचकर चल मेरी जाँ।
न गर इसमें गो बाप का हो कवाँ॥
बुरी रस्म का तो जो पाबन्द है।
तरक्की का रास्ता तेरा बन्द है॥
घड़ी की खुशी को अंसासा लुटायें।
चिल्म के लिए झोंपड़ी को जलायें॥

ऐसे बुरे रिवाजों को बढ़ाने वाले यह नहीं जानते कि वे समाज के कितने भारी अपराधी हैं, वे कितना पाप कर रहे हैं, क्योंकि उन्हें सिवाय अपने स्वार्थ के किसी दूसरे से मतलब नहीं, सिर्फ अपनी क्षणिक वाही-वाही कराने के लिए बहुत सारे गरीबों का कचूमर निकाल देते हैं। चारों ओर सुधार की मांग तो की जा रही है पर जिस घर में कोई रिवाज चला आ रहा हो, उसमें सुधार कोई करना नहीं चाहता, कारण, नाक लम्बी रखने की इच्छा, चाहे वाणी से कहे न कहे, हरेक के दिल में छिपी रहती है। आजकल विवाह के सम्बन्ध में ठाका और शगुन के रिवाज ऐसे ही हैं। मैं ऐसा खेल करने वालों को समाज का चोर व अपराधी कहता हूँ। चोर से बड़ा डाकू है। बहुत सी जात-बिरादरियों में इसका भी प्रयोग किया जाता है। इस में लड़की वाले से पहले ही एक निश्चित भारी रकम तय कर ली जाती है :—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सामने बैठ कर जो जी को चुराये कोई।
ऐसो चोरी का पता खाक लगाये कोई ।।

पहले लोग कहा करते थे कि लड़की बेचने वाला महा पापी है, पर अब खुले बाजार लड़कियों की कीमत वसूल करना पाप नहीं समझा जाता। मगर यह सब अमीरों के चोंचले हैं। सरकार पाबन्दी लगाती है कि ५० से अधिक किसी सहभोज में शामिल न हों, पर धनी लोग इस कानून से बचने के लिये भी चोरी के साधनों का सहारा ले रहे हैं। बनावटी खेल बना कर सरकार को धोखा दिया जाता है। फिर भी लोग चाहते हैं कि समाज सुखी रहे।

झूठ बोले हैं सदा और काम कमीनों के करें।
इस पर भी ख्वाहिश कि कायम मेरा ईमां रहे ।।

मैं चाहता हूँ, इस प्रकार के रस्मो रिवाज को बन्द करके समाज सुधार का काम जोर शोर से किया जाए। जिन ब्याहो पर हजारों रुपया खर्च होता है उन्हें कुछ टकों में ही कर देने की कोशिश होनी चाहिए। इससे लोग समाज के चोर और अपराधी होने से बच सकेंगे।

❀❀

१५

अस्तेय (२)
अन्न और समय की चोरी

अब अस्तेय के सम्बन्ध में दूसरे प्रकार की चोरियों के बारे में विचार करेंगे। दूसरे दर्जे पर आती है अन्न की चोरी। आम तौर पर यही कहा जाता है कि यदि किसी ने अन्न का एक मन व एक बोरी चुरा ली, तो वह अन्न का चोर हो गया। ऐसी चोरी से भी, निःसन्देह, बचने की जरूरत है। आजकल अन्न का अभाव जो दिखाई देता है, क्या इसका कारण केवल अनाज की कमी है ? सर्वथा नहीं। वस्तुतः, इसकी जिम्मेदारी उस भावना की है जिसे आज की भाषा में "काला बाजार" व "चोर बाजारी" कहा जाता है। पहले दंड से बचने के लिए छिपने वाले व्यक्ति को "भूमिगत" (अंडर ग्राउण्ड) अथवा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भगोड़ा कहा जाता था, अब यही शब्द अनाज के बारे में प्रयुक्त होता है कि अनाज "भूमिगत" (अंडर ग्राउण्ड) हो गया है। अगर कन्ट्रोल रेट से आप ज्यादा देने को तैयार हों तो अनाज तुरन्त मिल जाता है। यह कहां से आता है? चोरों के घर से ही। पर यह लोग अपने आपको चोर तो नहीं कहलाते!!

इसके अतिरिक्त अन्न के सम्बन्ध में इस से अधिक सूक्ष्म और पहले के समान ही भयंकर चोरी है, उसे बहुत कम लोग जानते हैं। यह है अपनी आवश्यकता से अधिक खाना। गांधी जी ने लिखा है कि "जो व्यक्ति अपनी जरूरत से एक ग्रास भी ज्यादा खाता है वह दूसरे के अधिकार को छीनता है और समाज की चोरी करता है।" एक वे लोग हैं जो रात को पेट पर पत्थर बांधकर सोते हैं और दूसरे वे हैं जो पाचन शक्ति को बढ़ाने के लिए चूर्ण खाते रहते हैं। कवि के शब्दों में :—

फिरे दिन को मुफलिस कि रोजी कमाये।
तवंगर फिरे ताकि रोटी पचाये॥

अमीर दिन भर पेट को भरने की फिक्र में रहते हैं। यदि कुछ समझ से काम लें तो ये लोग डाक्टरों की गुलामी से बच जाएं, जैसे कहा भी है :—

न भरते रहो पेट को बार-बार।
कि बहुत ख्वार होता है, बसियार ख्वार॥
वह पेटू जो खा-खा के बीमार हो।
कहो उससे फाके को तैयार हो॥

डाक्टरों की जितनी दूकानें हैं सब ही ऐसे अमीरों की मेहरबानी से चल रही हैं जो जरूरत से ज्यादा खाते हैं। दूसरे शब्दों में, अन्य व्यक्तियों का अधिकार छीनते हैं। अगर वे संयम से खायें तो वे एक दो अभावग्रस्तों की भूख दूर कर सकते हैं और उनका आशीर्वाद प्राप्त कर सकते हैं। किसी अभाव ग्रस्त की आवश्यकता पूरी करने से बढ़कर अपने कल्याण के लिए अन्य कोई उत्तम साधन नहीं है :—

मोहताज तू जहाँ में, होगा न उम्र भर।
हाजत किसी की तू भी, रवा कर जो कर सके॥

केवल इसी भावना के अभाव से आज देश में अनाज की कमी है। यदि प्रत्येक देश वासी यह प्रण कर ले कि सप्ताह में एक समय का भोजन छोड़ देंगे तो जिस देश की आबादी ५० करोड़ है, उसमें एक समय के इस उपवास से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पर्याप्त अन्न की बचत हो सकती है। एक मास में यह चार दिन का उपवास बचत को बहुत अधिक बढ़ा देगा। लेकिन, स्वार्थवश, आज इतना करना भी कठिन प्रतीत होता है। स्वार्थी को केवल अपने पेट की चिन्ता रहती है :—

अगर शब को फाके रहें सौ फकीर।
कहीं जाके तब सेर हो, एक अमीर॥

इस से अगली है समय की चोरी। धन और अन्न की चोरी की रूप रेखा को कुछ लोग समझ सकते हैं पर समय की चोरी की ओर किसी का ध्यान नहीं है। वस्तुतः, योग का अभिप्राय तो तब पूरा होगा जब प्रत्येक प्रकार की चोरी से हम बचेंगे।

समय का चोर वह है जो अपने जीवन में समय पालन का ध्यान नहीं रखता है। सरकारी अफसर अदालतों में बड़ी संख्या में लोगों को बुलाकर घंटों बैठाये रहते हैं पर कभी अफसर देर में आता है, कभी वह गप शप में लगा रहता है। दफ्तरों में भी गप शप लगाकर व काम से जी चुराकर समय का नाश किया जाता है। यह सब समय की चोरी और राष्ट्र के धन का अपव्यय है। उसके सिर पर क्या बीतती है जिसका सारा दिन इस प्रकार खराब हो जाता है और पेशी फिर भी नहीं होती। लेकिन उन्हें इसलिए पता नहीं लगता क्यों कि वे अफसर हैं। हर दफ्तर में यही हाल है। वेतन सरकार व मालिक से लिया जाता है पर समय का प्रयोग अपने व्यक्तिगत कामों अथवा गप शप में नष्ट कर दिया जाता है।

जिन्हें अपने जीवन में अस्तेय का पालन करना होता है उनका जीवन महात्मा हंसराज की तरह होता है। कहा जाता है कि एक दिन कालेज बन्द होने के बाद एक कार्ड पर पैंसिल से लिख रहे थे। एक प्राध्यापक ने पूछा कि श्रीमान्‌जी ! आप कालेज के समय के बाद भी क्यों बैठे हैं और फिर कलम दवात होते हुए भी पैंसिल से लिख रहे हैं। महात्मा हंसराज जी ने उत्तर दिया "भाई, जब मैंने अपना सारा जीवन कालेज को दे दिया है तो जब तक कालेज खुला है, वह समय तो कालेज का है, मेरा नहीं। इस लिये मैं अपने ही समय में लिखने का अधिकार रखता हूँ अन्यथा कालेज के समय की चोरी का अपराधी बनूंगा। पैंसिल से इसलिए लिख रहा हूँ कि यह कलम दवात

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कालेज की है, मेरी नहीं है यह पैंसिल ही मेरी अपनी है। मेरा अधिकार अपनी पैंसिल पर ही है।"

यह है वास्तविक रूप "अस्तेय" का। महर्षि पतंजलि का यही अभिप्राय है। क्या ऐसे अस्तेय व्रतधारी के समीप संसार का कोई रोग आ सकता है ?

❀❀

१६

अस्तेय (३)
विद्या की चोरी

इस विषय पर इतने विस्तार से लिखने की कोशिश इस लिए की जा रही है ताकि पाठक "अस्तेय" को योग का गौण अंग न समझें। अपने दोषों को देखने के लिए वृत्ति को ऐसा बनाना है जैसा गांधी जी ने अपनी जीवन कथा को समाप्त करते हुए कहा है :—

"हमेशा से मेरा विश्वास यह रहा है कि मनुष्य ठीक परिणाम पर तभी पहुंच सकता है जब वह अपने दोषों को ऐसे शीशे से देखे जिससे छोटी चीजें मोटी नजर आतीं और दूसरों की भूलों को उस शीशे से देखे जिससे मोटी चीजें बारीक नजर आती हैं। जो अपना जीवन सत्यमय बनाना चाहता है उसके लिए तो इस मार्ग का अवलम्बन और अनुकरण अत्यन्त आवश्यक है।"

गांधी जी ने जीवन की पड़ताल के लिए अपने उपर्युक्त वाक्य में बड़ा सुनहरी नियम बताया है पर आज का मानव इस शीशे का प्रयोग उलटा ही कर रहा है। इससे दूसरों की चोरी तो नजर आती है पर अपनी का पता ही नहीं लगता। विद्या का अर्थ है :—

स आदत, सियादत, इबादत है, इल्म।
हकूमत है, दौलत है, ताकत है, इल्म॥

विद्या का अर्थ है नेकी, पवित्रता और प्रभु भक्ति। शासन, ऐश्वर्य और शक्ति—विद्या है। जो इन गुणों से अपने को पूरित कर लेता है, वही अस्तेय का पुजारी है। पर इन गुणों को प्राप्त करके केवल अपने जीवन अथवा अपने संक्षिप्त परिवार के लिए सीमित कर लेना समाज की चोरी है। संसार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में विद्या ही एक धन है जिसे जितना बाँटने की कोशिश की जाय, उतना ही बढ़ता है।

सरस्वती के भंडार की बड़ी अनुपम बात।
ज्यों ज्यों खर्चे त्यों त्यों बढ़े, बिन खर्चे घट जात॥

जो विद्या को अपने हृदय में ही छिपा कर रखते हैं और बाँटने व दूसरों को देने की चेष्टा नहीं करते वे सर्व साधारण के लाभ का ध्यान नहीं रखते। किसी हकीम या वैद्य के पास किसी रोग का अचूक नुस्खा है। वह इस ढंग से सोचता है कि अगर इसका रहस्य दूसरों को बता दूं तो मेरी दूकानदारी में कमी आ जाएगी, जब कि वैद्य, हकीम, डाक्टर का पेशा दूकानदारी का नहीं किन्तु सृष्टि के प्राणिमात्र की सेवा और भलाई का है। इसका परिणाम यह होता है कि यह गुण व विद्या उस व्यक्ति की मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जाती हैं। यह अवस्था केवल अपने स्वार्थ में अंधे रहने के कारण ही पैदा होती है। इस प्रकार विद्या को छिपाने व बाँधने वाले समाज के चोर हैं।

जो सीखो किसी से, सिखाते चलो।
दीये से दीये को, जलाते चलो॥

इस विद्या के—जिसे पवित्र कहा गया है—हेर फेर से गल्त को सही और सही को गल्त सिद्ध किया जा रहा तथा झूठ को सच साबित करने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगाया जा रहा है। वकील के पास मुवक्किल जाता है और अपना सही बयान वकील के सामने रख देता है। फीस मुकर्रिर हो जाती है। अब कोशिश यह है कि मुवक्किल यद्यपि झूठा है, उसे कैसे बचाया जाए? मतलब यह कि सचाई को तोड़ने-मोड़ने की कोशिश होती है। विद्या का बल लगाया जाता है। कानून की किताबें वही हैं। अब वकील साहब के पास मुद्दालह आ गया। तब, यही वकील किताबों को और ढंग से देख रहा है, मुद्दई आ जाए तो किसी दूसरी नजर से। एक ही कानून की भिन्न-भिन्न व्याख्याएं करने की कोशिश की जाती है। अन्दर से आवाज आ रही है कि हम झूठ को सच बनाने जा रहे हैं और अपनी विद्या का सारा जोर इसी दिशा में लगा रहे हैं। इसका नतीजा मुवक्किल और वकील साहब—दोनों में से किसी के लिए सुखकारक नहीं होगा। पर लोग तो परिणाम की उपेक्षा करके तात्कालिक हार-जीत व कमाई पर ही दृष्टि रखते हैं। कौन नहीं जानता कि हम गल्त कर रहे हैं :—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दिल से आती है सदा क्या, नेक है और बद है क्या ?
कौन समझाए उन्हें जो जानकर नादान हैं ॥

गाँधी जी के जीवन में लिखा है कि अफ्रीका में रहते हुए उनके पास एक प्रमुख मुस्लिम व्यापारी आया जो म्यूनिसिपल टैक्स की चोरी के सम्बन्ध में गिरफ्तार हो गया था। वह गाँधी जी के पास पहुँचा और बोला कि "लाखों के गबन का मुकद्दमा मेरे विरुद्ध है, मुझे बचाइए।" गाँधी जी ने पूछा "क्या आपने यह चोरी की है ?" उसने कहा "चोर तो जरूर हूँ पर मैं कबूल नहीं करना चाहता, क्योंकि इससे मेरी प्रतिष्ठा को धक्का लगेगा, जुर्माना होगा, धन की भी हानि होगी। कैद हुआ तो शारीरिक कष्ट होगा।"

गाँधी जी ने कहा "भाई ! अगर मुकद्दमा मुझे देना है तो मैं कह दूँगा कि मेरे मुवक्किल ने चोरी की है और जितनी रकम की चोरी की है, उसका चेक देने को मुवक्किल तैयार है। न्याय की दृष्टि से जो दण्ड उसके लिए उचित है, वह भी भुगतने को तैयार है क्यों कि एक चोरी को छिपाने के लिए अन्य कई चोरियां करनी पड़ती हैं।" गाँधी जी ने आगे कहा "अगर यह शर्त मंजूर हो तो मेरे पास आओ, अन्यथा, किसी दूसरे वकील की तलाश करो।" फलतः, मुवक्किल ने अपना मुकद्दमा गाँधी जी को ही सौंप दिया। उन्होंने अपने सिद्धान्त के अनुसार सत्य कह दिया। धन तो जितने की चोरी थी, उतना देना पड़ा पर राजीनामे से मामला तय हो गया और कोई दंड नहीं मिला। गाँधी जी कहते हैं कि "ऐसा करने से उस व्यापारी का आन्तरिक शोधन हो गया।" इसलिए विद्या में गहरी शक्ति है। अगर इसे सीधे रास्ते पर लगाएं तो जीवन की काया पलट जाती है। आज तो इस विद्या के जोर से हत्यारे भी छूट रहे हैं।

विद्या के सम्बन्ध में एक अन्य प्रकार की चोरी है। इसे कहते हैं, नकल करना। दूसरे की पुस्तक से नोट व शब्द लेकर, उसके लेखक के नाम के बिना, उनका प्रयोग करना भी चोरी है। इस चोरी के शिकार बड़े-बड़े लेखक और विद्वान् होते हैं। स्कूलों में तो छात्र को जहाँ मौका मिल जाए, अपने पास व आगे बैठे की नकल करने से पीछे नहीं हटेंगे। ऐसे भी मामले होते हैं जब विद्यार्थी हाथ, कपड़ों व किसी अन्य ढंग से लिख कर परीक्षा में आकर बैठते हैं, जिससे निरीक्षक को पता न लग सके, पर इसे चोरी नहीं समझा जाता। हाँ, इन्हीं छात्रों में से किसी की कोई कलम इत्यादि चुरा ले तो उसे चोर जरूर कहेंगे। गाँधी जी के जीवन में एक घटना आती है। जब वे अंग्रेजी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

की पहली कक्षा में पढ़ते थे, तो इन्सपैक्टर आफ स्कूल्ज़ ने अंग्रेजी के कुछ कठिन शब्द लिखाये, इन में एक शब्द था "Cattle" (कैटेल)। गाँधी जी ने उसे "Kattle" अंग्रेजी के "के" अक्षर से लिखा। वहाँ निरीक्षण करते हुए स्कूल मास्टर ने देखा कि गाँधी जी के हिज्जे गल्त हैं। उसने पाँव की एक ठोकर मारकर गाँधी जी को कहा "आगे के लड़के की ओर देखकर ठीक कर लो।" गाँधी जी अपनी जीवन कथा में लिखते हैं कि "मैंने आगे बैठे हुए लड़के के पर्चे को देख तो लिया और अपनी गल्ती भी समझ ली पर मैंने अपनी गल्ती को ठीक नहीं किया क्यों कि मैं इसे चोरी का काम समझता था। इसके बाद मास्टर जी ने मुझे झाड़ा, मगर मुझे कोई पछतावा न था क्यों कि मैं चोरी के अपराध से बच गया था।" ठीक ही है:—"होनहार बिरवान के होत चिकने-चिकने पात।" यह नींव थी जिस पर गाँधी जी का जीवन ऊंचा हो उठा। ऐसा ही चरित्र बनाने की जरूरत है।

नजर वालों को भी दुश्वार है, अहले नजर होना।
खुली हैं जिनकी आंखें हमने उनको सोते देखा॥

१७

अस्तेय (४)
कर्त्तव्य पालन की चोरी

कर्त्तव्य पालन न करना भी चोरी में शामिल है। जो नौकर ठीक काम नहीं करता, और काम करने से कतराता है, हम उसे "कामचोर" कहते हैं। कुछ गहराई से देखें तो इसमें भी यही नियम काम कर रहा है। वह अपने कर्त्तव्य का पालन विधि पूर्वक नहीं करता। इस कसौटी पर अपने आपको कसकर देखना है। क्या हम भी, इस दृष्टि से, चोरी के अपराधी तो नहीं बन रहे? कर्त्तव्य कर्म क्या है—यह पता लगना भी आज की हालत में बड़ा कठिन है। इस झगड़े में न पड़कर "जो जिसे अच्छा लगे"—इस मार्ग पर चल कर ही हम कर्त्तव्य परायण हो सकते हैं। स्वामी दयानन्द ने धर्म की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

व्याख्या करते हुए लिखा है कि "धर्म, जो कर्त्तव्य पालन का दूसरा नाम है, अर्थात्, धर्म वही है जो अपनी आत्मा को प्रिय लगे।" इसी को अपना सिद्धान्त बना लें और जो बात जिसे जंच जाए, उसी के आधार पर अपने जीवन को चलाना ही कर्त्तव्य का पालन है। गीता, अध्याय १६, श्लोक १ में दैवी सम्पत्ति का वर्णन करते हुए श्री कृष्ण कहते हैं कि ज्ञान योग में स्थित होना, अर्थात् ज्ञान के अनुसार कर्म करना,—इतना करना मनुष्य सीख जाए तो अधिक जानने की इच्छा ही न रहे। शेख सादी ने कहा है :—

गर आंहा किमे दानमे करदेम।
निको सीरतो पारसा बूदेम ॥

अगर हम वही कुछ कर पाते जितना हम जानते थे, तो हम बड़े नेक और पवित्र हो जाते।

आज का मानव केवल जानने के लिए भाग-दौड़ कर रहा है। इसी कोशिश में है कि कहीं से ऐसा अचूक नुस्खा मिल जाय, जिसे जान लेने से मेरे सारे रोगों का नाश हो जाए। जिस किसी के पास भी जाता है, वहाँ से यही आदेश मिलता है कि कर्त्तव्य परायण होना पड़ेगा, तभी उद्धार होगा। पर, मनुष्य कर्त्तव्य पालन की अपेक्षा इधर-उधर भटकता है और अपने जीवन के अमूल्य समय का नाश करता है। एक भारी सभा में बोलते हुए एक प्रमुख महात्मा ने इतना ही कहा "Go and rectify yourself" "जाओ, और अपना संशोधन करो।" इन शब्दों के साथ वह मंच से नीचे उतर गये। पर श्रोताओं के कान लच्छेदार भाषण सुनने के लिए उतावले हो रहे थे। इसलिए अधिकांश श्रोता यही कहते सुने गये "इतना बड़ा इकट्ठ किया, एक इतनी छोटी बात के लिए।" पर ध्यान से विचार करने पर तो इस छोटे से वाक्य में एक गूढ़ रहस्य छिपा हुआ है। इसके बाद किसी दूसरे उपदेश की जरूरत नहीं रहती। कत्तव्य परायणता आसान काम नहीं। पहाड़ की चोटी पर सीधी चढ़ाई के सदृश है। सामान्य व्यक्ति इस पथ का यात्री नहीं होता। बार-बार सुनने की इच्छा करता है क्योंकि सुन लेना सहज है। महर्षि पातंजल के बताये मार्ग पर चलने के जो इच्छुक हैं, वे इस सूक्ष्म रहस्य को जाने बिना अस्तेय का पालन भली प्रकार न कर सकेंगे।

समय का पालन न करना भी एक प्रकार की चोरी है। इससे मनुष्य का चरित्र निर्बल होता है। इधर लोगों का कम ध्यान है। राष्ट्र के चरित्र-निर्माण में यह एक बड़ी बाधा है। दूसरों को सीधा करने में हर कोई लगा हुआ है

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पर "अंधेनैव नीयमानाः यथान्धाः", अन्धा अन्धे को क्या रास्ता दिखलाएगा, मनुष्य को प्रति क्षण सावधानता के साथ अपने जीवन के कदमों का ध्यान रखना चाहिए, कहीं वे विपरीत मार्ग पर तो नहीं जा रहे। मानव की मानवता तो कर्त्तव्य परायणता में ही है :—

करोड़ों में "सफी" बेशक, वही इन्सान होते हैं ।
जो अपनी जिन्दगी में, शाने इन्सानो न खोते हैं ।।

जो अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता, भर्त्तृहरि के शब्दों में :—

"ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ।"

वे पृथ्वी पर बोझ बनकर मनुष्य के रूप में पशु का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। कर्त्तव्य पालन करने वालों के लिए यही संसार स्वर्ग है। हाली के शब्दों में :—

हिन्दु से लड़ें न, गिब्बर से बैर करें ।
शर से बचें और, शर के एवज खैर करें ।।
जो कहते हैं, यह कि है जहन्नुम दुनिया ।
वे आयें और इस, बहिश्त की सैर करें ।।

कर्त्तव्य पालन क्या है ? अपने जीवन को क्रियात्मक बनाना, जो कुछ सुना, उस पर मनन करना दिल को अच्छा नहीं लगा तो छोड़ दिया, और, अगर दिल को अच्छा लग गया, और फिर भी उसे पकड़ने की कोशिश न की, तो ऐसा व्यक्ति कर्त्तव्य-च्युत हो जाता है। वस्तुतः, बात यही है कि हमारी पकड़ कमजोर है। अगर चिमटे की पकड़ कमजोर हो तो एक कोयला भी नहीं उठाया जा सकता, इसी प्रकार जिनकी पकड़ कमजोर है, वे कर्त्तव्य-परायण जीवन नहीं बना सकते।

याँ के सुफेदो-स्याह में हमको, दखल जो है सो इतना है ।
रात को रो-रो सुबह किया, या दिन को जूं-तूं शाम किया ।।

मैं तो कहता हूँ कि वह बात कहना जिस का स्वयं आचरण न किया हो, वह अपने आप में एक चोरी है, अपनी पहली चोरी में एक और को जोड़ देना है। ख्वाजा दिल मुहम्मद ने कहा है :—

तूं लफजों को, कामों के सांचे में ढाल ।
नसीहत से बेहतर है, अच्छी मिसाल ।।

अंग्रेजी के शब्दों में "Example is better than precept" अर्थात्,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कथनी से करनी भली है।" कर्त्तव्य परायण व्यक्ति ही ऐसा कर सकते हैं। यह ठीक है कि जीवन के मार्ग का निश्चय करने से पहले खूब सोच विचार लिया जाए। जब एक निश्चय कर लिया, तब अपने संकल्प के प्रति निष्ठा रखने की आवश्यकता है। इसका पालन किसी पर एहसान नहीं है। यही समझें कि मैं केवल वही कुछ कर रहा हूँ जो मुझे करना चाहिए था। इसी को कर्त्तव्य परायणता कहते हैं। इस मार्ग में आने वाले कष्टों को प्रसन्नता से सहना और अपने पैरों को न डगमगाना, यही कर्त्तव्य परायणता है।

वफादार अपनी, वफा को निभाये।
मुसीबत पड़े तो भी लगज़िश न खाये॥
करें असल वाले, न हरगिज खता।
जो कम अस्ल हैं, उन से कम हो वफा॥

❀❀

१८

अस्तेय (५)
न्याय की चोरी

शायद कुछ पाठक अस्तेय के इतने लम्बे विवरण से ऊब जाएँ पर यह नहीं भूलना चाहिए कि हर व्यक्ति की जूती हरेक के पांव को एक ही जगह से नहीं काटती, किसी के पांव को किसी हिस्से से और किसी दूसरे को किसी अन्य हिस्से से। इसी प्रकार चोरी का रोग भी बहुत सूक्ष्म है। अलग-अलग व्यक्ति को अलग-अलग ढंग से चेतावनी मिलती है। इसीलिए इस विषय को इतने विस्तार से लिखा जा रहा है। न्याय की चोरी का अभिप्राय यही है कि अदालतों में रिश्वत के जोर पर न्याय के विरुद्ध जो फैसले होते हैं, वही न्याय की चोरी है। इसके अतिरिक्त हमने अपने दैनिक व्यवहार को भी देखना है। बिना मुन्सिफ व मैजिस्ट्रेट बने हर व्यक्ति अपने जीवन में एक न्यायाधीश का भाग अदा करता है अगर वह अन्याय से काम ले तो जैसे रिश्वत लेने वाले पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाया जाता है, उसी प्रकार ऐसे समस्त व्यवहारों में अन्याय करने वालों को वैसा ही अपराधी क्यों नहीं समझा जाता? हरेक व्यक्ति के अन्दर अदालत का कटघरा मौजूद है :—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ख्यालात की हो जहाँ दारोगीर ।
अदालत का कमरा है गोया जमीर ।।

कितने लोग ऐसे हैं जो अदालत के इस कमरे का ध्यान रखते हैं ? न्याय तो एक ऐसा व्यवहार है जो प्रति व्यक्ति के सामने प्रतिक्षण कसौटी के रूप में विद्यमान है। सामान्य व्यक्ति यह सोचने की भी परवाह नहीं करता कि वह दिन में कितनी वार न्याय की हत्या करता है। न्याय की हत्या ही तो न्याय की चोरी है। वेद में एक मंत्र आता है जिस का अभिप्राय यह है कि "हे मनुष्य ! तू निर्दोष गौ को मत मार।" इसकी व्याख्या की गयी है कि गो का अर्थ दूध देने वाले पशु का है भूमि का भी है :—इन्हें मारना भी महा-पाप है, पर, वेद के इस मंत्र में जिस बात पर जोर दिया गया है कि अन्तः करण रूपी निर्दोष गौ को कभी नहीं मारना। यह बड़ा भयंकर अन्याय है। इस अन्तःकरण रूपी गौ को मारने से मनुष्य ईश्वर की समीपता प्राप्त नहीं कर सकता है। चाहिए तो यही था कि :—

हकूमत हो हक की फिरासत वजीर ।
सदाकत गवाह और मुन्सिफ़ वजीर ।।

लेकिन हो क्या रहा है :—

स्वर्ण चांदी के बाटों से यहां मानवता तोली जाती है ।
सत्य न्याय का गला घोंटने को सुतली खोली जाती है ।।

यह रिश्वत है क्या ? न्याय का क्रय-विक्रय, दूसरे के अधिकार को हज्म करने के तरीके, वह अधिकार जनता का हो या सरकार का। सरकार के साथ अन्याय करता हुआ व्यक्ति यह नहीं समझता कि वह अपने साथ ही अन्याय कर रहा है। यह वही बात है कि कुत्ता जब हड्डी को चबाता है, तो उसके मुँह से खून निकलता है। उसके मजे को वह समझता है कि हड्डी से आ रहा है। इसी चक्र की तरह मनुष्य अपने जीवन के दिन पूरे करने की चिन्ता में रहता है क्योंकि वह इसे ही जीवन का उद्देश्य समझता है। पर जीवन का उद्देश्य इससे कहीं ऊंचा है। इसलिए संभलने की आवश्यकता है। एक सन्त के शब्दों में :—

यही है शर्फ इन्सानी को इन्सां बा-मुरव्वत हो ।
सखी हो, रहमे दिल हो, खुश चलन हो, नेक सीरत हो ।।
न होवे मुनहरफ हरगिज तरीके-रास्त बाजी से ।
कोई दर पेश मुश्कल हो, कोई खौफो-अजीयत हो ।।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यही मजहब, यही मिल्लत, यही है दीन और ईमाँ ।
मुयस्सर हर कसो-नाकिस को जिससे ऐन राहत हो ।।

मजे की बात यह है कि रिश्वत लेने वालों को ही अपराधी माना जाता है, देने वालों को नहीं । चन्द हालात में रिश्वत इस लिए दी जाती है कि अहलकार काम में देर न लगाए । ऐसे हालात में देने वाला व्यक्ति हमेशा दूसरे का अधिकार हड़प करने अथवा थोड़ा देकर अधिक लाभ की भावना से रिश्वत देता है । समाज भी रिश्वत लेने वालों को बुरा समझता है और कोसता है पर रिश्वत देने वाले को नहीं :—

किया जिसने रिश्वत से हाकिम को राम ।
लिया उसने चांदी के जूते से काम ।।

गाँधी जी अपनी जीवन कथा में एक जगह लिखते हैं कि "मैं यह तो नहीं कह सकता कि मैंने जीवन भर कोई भूल नहीं की है, पर, एक बात जो मैं दावे से कह सकता हूं, वह यह है कि, मैंने अपनी स्मृति में कभी वह काम नहीं किया जिसे मेरी आत्मा ने करने से मुझे रोका हो ।" यह है, वस्तुतः, न्याय की चोरी करने से बचना :—

नेकनामी तो वही लेकर बशर जाता है ।
आके दुनियां में कोई काम जो कर जाता है ।।

गाँधी जी ने एक अन्य स्थल पर लिखा है "कह देना आसान है पर करना कठिन है ।" जरा अपनी छाती पर हाथ रख कर सोचने की ज़रूरत है कि हम कहाँ तक चोरी के अपराधी होते हैं । अन्दर झाँकने की आवश्यकता है । रात को सोते समय यदि प्रत्येक व्यक्ति दिन भर के किये हुए कामों पर सरसरी नजर डाले और देखे कि आज कहाँ-कहाँ न्याय से दूर चला गया तो अपना जीवन ही घृणित दिखायी देने लगे :—

समझ सबको भाई अगर तू है नेक ।
बनी नौ इन्सां का कुणबा है एक ।।

इसी तराजू पर जीवन को प्रतिदिन तोलकर देखिए । न्याय की चोरी के कारण ही कुटुम्ब में झगड़े और फिसाद होते तथा सगे भाई व पिता-पुत्र अलग-अलग हो जाते हैं । हम पढ़ते हैं कि राम और भरत अयोध्या के राज्य को फुटबाल समझ कर ठोकरें लगाते थे । कितना ऊंचा आदर्श हमारे सामने है । आज तो एक चप्पा-चप्पा जमीन व चार कौड़ियों के लिए, खाने पीने में विशेषता प्राप्त करने के लिए, भाई-भाई का दुश्मन हो रहा है । आप

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जिसका पक्ष सुनें वही अपने को सच्चा और दूसरे को झूठा कहेगा। यह क्यों ? न्याय के सामने कोई ठहरने को तैयार नहीं है। इसी लिए आज की दुनिया दुखी है।

न्याय प्रिय अपने शत्रु के साथ भी अन्याय नहीं करते। शहनशाह के शब्दों में :—

जो किसी से अदावत न दगा करते हैं।
वही आराम से दुनियां में रहा करते हैं॥
कौल और फेल-ओ-ख्यालात हैं उनके यकसां।
पाक दामन जो दुनियां में हुआ करते हैं॥

न्याय की चोरी न हो—इस सम्बन्ध में एक सिद्धान्त यह है :—

न हो उस तरफ तूं न हो इस तरफ।
उधर झुक कि इन्साफ हो जिस तरफ॥

❀❀

१९

अस्तेय (६)
झूठे और घातक रीति-रिवाज

मिथ्या आडम्बर और शान दिखाने के लिए वह काम करने पड़ते हैं जिनके लिये भीतर से मन न चाहता हो। अन्दर की आवाज जिस रस्मो रिवाज को अपनाने से रोक रही हो, झूठी लोकलाज के लिए उस पर डटे रहना। इसे ही "लोकाचार" कहा जाता है। आज का समाज इसके चंगुल में बुरी तरह फँसा हुआ है। इसके कारण अनेक अनर्थ हो रहे हैं। इस सूक्ष्म चोरी को अपराध समझा ही नहीं जाता। गलत मार्ग पर चलकर भी मन को यूं समझाया जाता है कि "क्या करें, दूसरों को राजी भी तो रखना है ?" यह जानकर हम ठीक काम नहीं कर रहे, अन्तरात्मा की अवहेलना कर, आँखें मूंद, इन घातक रिवाजों की गुलामी की जाती है। इससे रोग का नाश तो नहीं होगा क्योंकि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अपने साथ ही धोखा किया जा रहा है :—

मन में राखें और कछु, वाणी पर कछु और।
कर्मों से कछु और करें, तीनों झूठे ठौर ।।

इसी से दुख की उत्पत्ति होगी और विनाश होगा। स्वामी रामतीर्थ कहते हैं :—

"इन्सान को तमाम तकलीफें और दुख इसलिए महसूस होते हैं क्योंकि वह अपने आपके लिए सच्चा हुए बगैर दूसरों को खुश करना चाहता है। यह दुःख से छुटकारे का इलाज नहीं है, बल्कि अपने साथ धोखा न करके ही इन्सान खुद खुश रह सकता है और दूसरों के लिए रोशनी का मीनार बन सकता है।"

इस सत्य को समझने वाला किसी भी ऐसी रस्म का पाबन्द नहीं हो सकता जिसे वह फिजूल समझता हो। केवल कुछ लोगों की वाह-वाह हासिल करने के लिए जो किसी रीति रिवाज की पाबन्दी करते हैं और अन्दर ही अन्दर कुढ़ते रहते हैं, वे अपनी नजर से आप ही गिर जाते हैं। अगर लोगों की नजर में झूठी इज्जत भी मिल जाए तो वह भी सुख का कारण नहीं बन सकती। एक कवि के शब्दों में :—

जो घोड़े से फिसले संभाले जमीं।
नजर से जो फिसले न संभले कहीं ।।

घोड़े से गिरने वाला तो फिर संभल जाएगा पर नजर से गिरने वाले के लिए कोई स्थान नहीं। जो अपने प्रति सच्चा नहीं है, अर्थात्, जिसका कर्म अपने विचार के अनुसार नहीं है, अपनी दृष्टि में उसका सम्मान कहाँ हो सकता है? नकली इज्जत के पीछे दुनियाँ वह कुछ कर रही है जो नहीं करना चाहती। झूठी नाक की शान रखने के लिए कर्जा लेकर ब्याह किये जाते हैं और जब तकादे वाले माँगने आते हैं, तब पछताते हैं।

भूल कर भी हो न पाबन्द रसूमाते कदीम।
हो गये मुफ़लस कई इसमें तवंगर देख ले ।।

लोकाचार के अनुगामी के पास अगर कोई व्यक्ति किसी काम के लिए आता है, तो लोकाचार का रोगी उसका काम कर नहीं सकता, व करना नहीं चाहता, तब साफ कहने के बदले टालमटोल करने की कोशिश करता व कई झूठे बहाना बनाना तथा हेर फेर की बातें करता है। "अस्तेय" के पुजारी के लिए यह सब तरीके गल्त हैं। कवि के शब्दों में :—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मुनासिब है करना नहीं भी कहीं।
कि सत्तर बला टाल दे इक नहीं॥

श्री अरविन्द घोष दुखों से छुटकारा पाने के लिये जो परामर्श देते हैं, वह यह है :—

"अपनी निर्बलताओं और गल्त चालों को अनुभव करके इनसे पीछे हटना ही मोक्ष, अर्थात् दुःखों से छुटकारा प्राप्त करने का मार्ग है।" श्री अरविन्द इसका ढंग बताते हैं :—

"विचार और वचन में सचाई का होना आवश्यक है। जितना अधिक आप यह समझें कि गल्त चालें मेरे अपने जीवन का भाग नहीं हैं, अपितु बाहर से थोपी जा रही हैं, आपको इन गल्त चालों को रद्द करने और इन से इन्कार करने में उतनी ही ज्यादा आसानी होगी।"

लोकाचार से बचने का क्या सुन्दर उपाय है :—एक महापुरुष ने अपने विचार को इस प्रकार प्रकट किया है। "अगर सारी दुनियाँ अन्धी होती तो इन्सान को अपने शरीर के बनाव शृंगार करने, अच्छे,-अच्छे, बढ़िया कपड़े पहनने, नैकटाई वगैरह लगाने की कोई जरूरत नहीं थी, क्योंकि जो कुछ मनुष्य करता है, वह दूसरों की आँखों को खुश करने के लिए करता है। दूसरों की वाह-वाह प्राप्त करने की यह इच्छा ही दुःख का कारण है।" लोकाचार में सुधार करना यद्यपि एक बड़ी कठिन समस्या है और इसके लिये इस्पात के हृदय की जरूरत है पर असम्भव तो नहीं है। श्री अरविन्द घोष इस सम्बन्ध में कहते हैं :—

"प्रतिकूल अवस्थाएँ और सुधार के प्रति दूसरों की आशा के विरुद्ध व्यवहार भी अगर किये जाएँ, तो उसे पूर्ण शान्ति और हृदय में स्थिरता रखते हुए, उन्हें स्वीकार करना चाहिए। यही चीजें सुधारक के समत्व और योग की परीक्षा हैं।" इस परीक्षा में पास होने वाला ही लोकाचार के पाप से बच सकता है।

❀❀

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

२०

अस्तेय (७) चुगलखोरी

यह भी अस्तेय में शामिल है। यह सूक्ष्म चोरी है। किसी का दोष व न्यूनता कहनी हो तो उसके मुँह पर न कह कर उसकी अनुपस्थिति में अथवा उससे छुपकर कहना। यह चुगलखोरी की निशानी है। छिद्रान्वेषण गल्त विचार धारा है। एक कवि ने इसे मक्खी से उपमा दी है :—

न तुम ऐब जोई के फैलाओ पर।
न मक्खी की सूरत गिरो घाव पर॥

जो योग की पद्धति से रोग-नाश करना चाहते हैं उनके लिए जरूरी है कि वह अपने दोषों को देखें और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करें। अपना दोष एक विच्छु है जो हर समय डंक मारता रहता है :—

अगर ऐब अपना हो, उसे दूर कर।
न चादर में विच्छू को मस्तूर कर॥

यदि दूसरे का दोष देखें भी तो उससे भी यही शिक्षा लेने की जरूरत है कि अपनी पड़ताल की जाए, कि कहीं मेरे अन्दर तो यह दोष नहीं है। अगर है तो जैसे उसके अन्दर वह दोष मुझे अच्छा नहीं लग रहा, मेरे अन्दर भी दूसरों को अच्छा नहीं लग रहा होगा। इसलिए वह दोषदर्शन हमारे लिए भले का कारण बन गया क्योंकि उसने हमारा ध्यान हमारे दोष की ओर दिला दिया। इसका हमें पहले कभी ध्यान भी न आया होगा। जैसे, एक आदमी को जगह जगह थूकने की आदत है पर उसे यह अपना दोष नहीं मालूम होता। उसके सामने किसी ने ऐसी जगह थूक दिया जो उसे बुरा लगा। उस समय उसका ध्यान तत्काल अपनी भूल की ओर जाना चाहिये जिससे अपना सुधार हो। सौभाग्यशील है वह पुरुष जो इस दृष्टिकोण से काम लेता है। शेख सादी से किसी ने पूछा "आपने शिष्टाचार किससे सीखा है?" शेख ने जवाब दिया कि "असभ्य पुरुषों से।" प्रश्न हुआ "वह कैसे?" शेख सादी ने कहा "जो असभ्य व्यक्ति करते हैं, उन जैसा करने से मैं बच कर रहता हूँ।" कितना सुन्दर ढंग है, अपने जीवन को ऊँचा करने का। इससे नीचे का स्तर है, उन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लोगों का जो दूसरे के दोष देखकर अपने दोष की ओर तो नहीं देखते पर दूसरे के दोष को प्रकट करना व ठीक करना चाहते हैं। उसका सही तरीका यही है जो सज्जन पुरुषों का ढंग है। उसके सामने जिसमें कोई दोष है, अपने जीवन से ऐसा उदाहरण पेश किया जाए जिससे उसका दोष दूर हो जाए। कुछ कहने सुनने की जरूरत ही न हो। गाँधी जी के जीवन की एक घटना से इसकी बड़ी अच्छी पुष्टि होती है काँग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में टट्टियों की कमी और प्रतिनिधियों की अधिकता के कारण भंगियों ने बार बार सफाई करने से इन्कार कर दिया। मामला गाँधी जी तक पहुँचा। उन्होंने भंगियों व स्वयं सेवकों को उपदेश देने व राष्ट्र सेवा के नाम पर अपील करने के बदले स्वयं टट्टियों की सफाई प्रारम्भ कर दी। इसे देख स्वयं सेवकों को भी उत्साह मिला और भंगियों ने भी अपना दोष समझा। गाँधी जी के साथ सब ने झाड़ू पकड़ जब टट्टियों की सफाई शुरू कर दी तो समस्या का तत्काल हल हो गया। अगर गाँधी जी स्वयं न करते और केवल वाणी से कहते ही रहते व भंगियों को बुरा-भला कहते तो इस समस्या का हल कभी न होता।

तूं लफ़्ज़ों को कामों के साँचे में ढाल।
नसीहत से बेहतर है अच्छी मिसाल॥

गाँधी जी के जीवन की एक और घटना है। एक अखिल भारतीय ख्याति के सज्जन गाँधी जी से मिलने गये। उस मुलाकात का हाल लिखते हुये यह सज्जन कहते हैं कि "मैं गाँधी जी से बातें कर रहा था कि मुझे खाँसी आ गयी। मैंने एक ओर मुँह करके वहीं थूक दिया। गाँधी जी ने मुझे तो कुछ नहीं कहा। बातें करते रहे। जब मैं बाहर निकल आया तो थोड़ी दूर जाकर मुझे एक बात और पूछने की जरूरत पड़ी। वापस आने पर देखा कि गांधी जी एक हाथ में पानी का लोटा और दूसरे में झाड़ू लेकर मेरे थूकने के स्थान को साफ कर रहे थे।" वह सज्जन लिखते हैं "कि मैं भारी शर्म में डूब गया। पर अब क्या हो सकता था? मैंने हाथ जोड़ कर अपनी भूल के लिये माफी माँगी और अपने मन में प्रतिज्ञा की कि भविष्य में कभी ऐसी चेष्टा न करूँगा"। इस प्रकार उसका जीवन ही शुद्ध हो गया। गाँधी जी ने इस व्यक्ति को किसी प्रकार हीन प्रकट करने की कोशिश नहीं की और न ही मुख से उसे कुछ कहा, इस छोटी घटना से उस व्यक्ति का जीवन ही पलट गया।

इससे नीचे स्तर का तरीका यह है कि किसी में दोष दिखाई देने पर उसके साथ वह व्यवहार करना चाहिए जो माता अपनी सन्तान के साथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करती है। माता अपनी सन्तान के दोष का प्रचार नहीं करती अपितु सन्तान को समझा बुझाकर पवित्र करना चाहती है। अर्थात, जिसमें दोष नजर आवें उसी को समझाने की जरूरत है, वह भी बड़ी नम्रता के साथ। इसमें सिवाय उसके सुधार के, अन्य कोई भावना न हो और अपने आपको केवल समझाने तक ही सीमित रखना, उसके परिणाम के साथ अपने को बाँधना नहीं। जैसे, किसी को सिगरेट व शराब न पीने के लिए समझाया। उसने कहा 'अच्छा जी' फिर उसे पीता देखा, अब अगर समझाने वाला स्वयं क्रोध के आवेश में आ जाए और कहे कि यह बड़ा घटिया आदमी है, प्रण लेकर थूक की तरह चाट लेता है, इत्यादि कड़े शब्दों का प्रयोग करे, तो क्या लाभ हुआ ? दूसरे का सुधार करने के लिए भी अपने अन्दर सहनशक्ति की आवश्यकता है। फलतः, दोष को उस व्यक्ति के मुँह पर ही कह देना अच्छा है, अपेक्षा, इसके कि व्यक्ति चोरी का अपराधी होकर उसकी पीठ पीछे दूसरों से चुगली करता फिरे।

चुग़लख़ोर जल्लाद से भी बुरा।
कि जल्लाद छुप कर नहीं मारता ॥

चुगलखोर में यह भी दोष है कि वह हमेशा बढ़ा चढ़ाकर बात कहेगा। व्यर्थ में एक अन्य अपराध का भागी बनेगा। उसकी इस नीच चेष्टा से जिसके दोष कहे जा रहे हैं, उसे कोई लाभ नहीं पहुँचेगा। इसलिए योग के साधक को इस सूक्ष्म प्रकार की चोरी से भी बचकर रहना चाहिए। कवि के शब्दों में :—

हो बेअक्ल को ऐब कोशी से काम।
खिरदमन्द ले चश्म पोशी से काम ॥

❀❀

२१

अस्तेय (८)
अ-दान की भावना

शक्ति होते हुए भी दान न करना अथवा अ-दान की भावना। वेदों में कई

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मन्त्र आये हैं जिनमें प्रार्थना की गयी है कि "प्रभु, हमें अ-दान भाव से बचाए।" मैंने शक्ति का शब्द इसलिए जोड़ दिया है कि जितना किसी के पास हो, उसके अनुसार अपने से जो बन सके, दूसरों की भलाई में देना उचित है। धन पर हमारा कोई अधिकार नहीं है। ईशोपनिषद् के पहले मंत्र में "तेन त्यक्तेन भुँजीथा:"—यज्ञ शेष के भोग का ही, विधान है। शक्ति से अधिक देना भी नियम का उल्लंघन करता है। मान लीजिए, एक व्यक्ति ऋण ग्रस्त है, ऋण तो वापस नहीं करता पर दान देता फिरता है, वह अदान भाव की बुराई से बच नहीं सकता। यह तो वही बात है कि घर का दीपक बुझा रहे और मन्दिर का दीया जलता रहे :—

सखावत नहीं कर्जदारों को फर्ज।
यह है फर्ज पहले हो बेबाक कर्ज।।

दूसरे प्रकार के भी लोग हैं। दान देने के लिए अनुचित और गल्त ढंग से कमाकार देना चाहते हैं। यह भगवान् को रिश्वत देकर अपने अपराधों से बचने की एक असफल चेष्टा है। दान देने वाले को सबसे पहले अपने धन को पवित्र बनाने की जरूरत है। वह कितना भी थोड़ा हो और उसमें से थोड़ा ही दान दिया जा सके, तो वह सुनहरी दान है। पर केवल अपने लिए अथवा अपने बाल-बच्चों तक अपनी कमाई को सीमित रखना अ-दानभाव का पाप है। हमारे पास आवश्यकता से अधिक है और हम नहीं देते, तो यह दूसरों का अधिकार है जिसे हम हड़प रहे हैं। इस प्रकार हम चोरी के अपराधी बनते हैं। प्रश्न होगा, फालतू से क्या अभिप्राय है? यहाँ मुश्किल से परिवार के आय और व्यय के दोनों सिरे मिलते हैं। हमारे पास फालतू कहाँ है? इस सम्बन्ध में मैं आपका ध्यान शहरों में आजकल प्रचलित एक रिवाज की ओर ले जाना चाहता हूँ। फेरी वाले गलियों में से एक आना फी सेर के हिसाब से सूखी रोटियाँ ले जाते हैं। एक-एक आदमी बोरी भर कर ले जाता है। लगभग हर घर से रोटियाँ उन्हें मिलती हैं। ४५ रु० मन गेहूँ खरीदते हैं। सफाई, पिसाई, मजदूरी, पकाना इत्यादि पर कई खर्च होते हैं। थोड़ा बहुत घी भी लगता है। करीब पौने तीन रु० किलो यह रोटी पड़ती है। एक आना किलो बेचते हैं। पर किसी भूखे को नहीं देते जब वह रोटी ताजा होती है। क्या यह अ-दान भाव का जीवित उदाहरण नहीं है? कौन ऐसा घर है जो अपने भोजन में से एक आध रोटी नहीं निकाल सकता? पर रुचि और भावना नहीं है। प्रत्येक वैदिक धर्मी नर नारी के लिए पाँच

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महायज्ञों का विधान है। इसमें ब्रह्म यज्ञ और देव यज्ञ के बाद जो विशेष यज्ञ हैं, पितृ यज्ञ अतिथि यज्ञ, और बलिवैश्व देव यज्ञ—इन तीनों का उद्देश्य अपने भोजन में से पहले पितर, अतिथि और पशु-पक्षी का भाग निकालकर खाना ही यज्ञशेष का भोजन है। मजा यह है कि एक आना सेर रोटियाँ बेचने वाले यह नहीं समझते कि अगर खाने वाला कोई अतिथि नहीं मिल सकता, तो पशु-पक्षियों की कमी नहीं। पर यह ध्यान किसी को नहीं कि दूसरे का अधिकार हम एक आना सेर—अर्थात्, सस्ते दामों में लुटा कर (क्यों कि माल मुफ्त, दिले बेरहम वाली बात बन जाती है) चोरी के अपराधी बन रहे हैं। इस उदाहरण को दृष्टि में रखते हुए कौन कह सकता है कि हमारे पास आवश्यकता से अधिक फालतू नहीं है। गरीब-अमीर सब दे सकते हैं पर देने की भावना नहीं है। एक विद्वान् के शब्दों में "जो शक्ति, धन, ज्ञान और बुद्धि आपको प्रभु ने दी है, इसका सर्वोच्च प्रयोग करें तो आपको शक्ति, धन, ज्ञान और बुद्धि मिलेगी।"

प्रश्न उठेगा कि उचित उपयोग क्या है? भोग भोगने के कई प्रकार हैं। (१) कंजूसी से खर्च करना (२) वृथा खर्च करना (३) अपनी और परिवार की आवश्यकताओं के अनुसार खर्च करना, और (४) दान। मैंने दान को भी भोग का एक स्वरूप बताया है। पहले दोनों धन के दुरुपयोग हैं और पिछले दोनों धन के सदुपयोग हैं :—

बुखल अच्छा है न बेजा खर्च अच्छा है अजल।
दरम्यानी चाल चल, राहत का मंजर देखले॥

अब जो पहली दोनों किस्मों में लटक गया उसकी तो दान की भावना नहीं हो सकती और जो पिछली दो को नहीं पकड़ सका, उसकी वही हालत होगी जो एक कवि के शब्दों में :—

जो न खा जाएगा, या न दे जाएगा।
वह छातो पर धर कर न ले जाएगा॥

अथवा :—

खाया जाए सो खाय ले, दिया जाए सो देय।
इससे बाकी जो बचे, सो तुम जानो खेय॥

जिसके पास देने की शक्ति हो, और वह न दे तो मैं समझता हूँ उस जैसा कोई मन्द भाग्य नहीं है। अपने हाथ से देना कितना मुश्कल है?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भरोसा किसी से न कर साथ का।
चले साथ तेरे दिया हाथ का॥

श्री अरविन्दघोष के जीवन से, जब वे क्रान्तिकारी थे, एक ऐसा उदाहरण मिलता है, जिससे मेरा अभिप्राय पुष्ट हो जाएगा। वे बड़ौदा के सरकारी कालेज में पढ़ाते थे। उन्हें जब मासिक वेतन मिलता तो ३० रु० अपनी धर्मपत्नी को खर्च के लिए दे देते, बकाया क्रान्तिकारी आन्दोलन में खर्च करते अथवा किसी निर्धन की सहायता में व्यय कर देते। कठिनता से ३० रुपये में घर का गुजर करते, धर्म पत्नी शिकायत करती रहती। तब वे किसी दूसरे निर्धन का उदाहरण देकर समझा देते कि वह भी तो थोड़ी रकम में गुजारा करता है। जब वह कर सकता है, तो हम क्यों नहीं कर सकते? इसके पीछे उनकी क्या भावना थी, यह उनके एक पत्र से पता चलता है जो उन्होंने जेल से अपनी पत्नी को लिखा :—

"मैं सोचता हूँ कि तुम भी क्या समझती होगी कि फकीर से वास्ता पड़ गया है। तुम अपनी बहिन—जो एक बड़े अफसर की पत्नी है—के ठाठ-बाट को देखकर, शायद दुःखी भी होगी। पर मैं तुम्हारी जानकारी के लिए लिख रहा हूँ कि मैं सारा वेतन तुमको इसलिए न देता था क्योंकि मैं यह जानता हूँ कि जितना हमारे खर्च के लिए चाहिए (विलासता का जीवन बिताने के लिए नहीं, बल्कि अपने पालन-पोषण के लिए) और जिसमें एक अन्य गरीब दम्पति भी गुजारा कर सकते हैं उतना ही मैं रखता था। इससे ज्यादा अपने लिए रोक कर रखना मैं समाज की चोरी समझता हूँ। अगर तुम भी मेरे साथ सहमत हो जाओ, तो तुम्हें इस ३० रुपया में वह आनन्द आएगा जिसका शाही ठाठ-बाट वाले स्वप्न भी नहीं ले सकते। अपने इस सिद्धान्त की बलि पर तुम्हें भी चढ़ा रहा हूँ। इसके लिये मुझे क्षमा करना।"

क्या सुन्दर उपदेश है!

चाहिए फौलाद का दिल इश्क के मैदान में।

यदि मनुष्य केवल अपने पेट को भरने तक ही सीमित रखे तो पशु और उसमें क्या भेद है? यूँ तो अपनी योनि में गधा भी पेट भरता है। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को सोचने की जरूरत है कि वह अपने से पूछे :—

बता खैरात क्या की, राहे मौला में दिया क्या है?
किसी बेकस की खातिर, जान पर सदमा लिया क्या है?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कभी इमदाद दी तूने, किसी बेकस बिचारे को।
सखी बनकर दिया तूने, मुफलिस के गुजारे को ।।

अगर उत्तर "हाँ" में नहीं मिलता तो ऐसे लोग अदान-भाव के भागी बन रहे हैं। योग की दृष्टि में ये चोरी के अपराधी हो रहे हैं जिससे बचे बिना रोग का नाश संभव नहीं है। कम-से-कम अपनी आमदनी का १० वाँ हिस्सा या अपने खर्च का १० वाँ हिस्सा दूसरों के लिए निकाल कर जीवन को आनन्दमय बनाया जा सकता है :—

हक ने अगर किया है, तुझे जर से सरफराज ।
मानिन्द अब्र जोदो-सखा, कर जो कर सके ।।

❀❀

२२

अस्तेय (६)
वाणी और मन की चोरी

अस्तेय के अंतिम दो प्रकार हैं (१) वाणी की चोरी और (२) मन की चोरी। वाणी और मन एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, इसलिए इन दोनों को इकट्ठा कर दिया है। शास्त्रों में कहा गया है "यन्मनसा ध्यायति तद् वाचा वदति, यद् वाचा वदति, तत् कर्मणा करोति, यत् कर्मणा करोति तदभिसंपद्यते।" "जो मन में विचार होता है, वाणी उसका उच्चारण करती है, वाणी जैसा बोलती है वैसा ही कर्म होता है और जैसा कर्म होता है, वैसे ही मनुष्य बन जाता है।" इसे मन, वचन और कर्म की लड़ी कह सकते हैं। तीनों का सही कर्त्तव्य पालन न करना ही इनके द्वारा चोरी का जीवन व्यतीत करना है। इनका कितना सीधा स्वरूप है, गाँधी जी अपने जीवन में लिखते हैं :—

"पूरे तौर पर पवित्र होने के लिये मन, वचन और कर्म को अनुचित कामनाओं से पूरे तौर से मुक्त करना होगा।"

इससे आगे गाँधी जी ने अपने सम्बन्ध में इस सिद्धान्त का उल्लेख किया

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है "मैं भली प्रकार जानता हूँ कि अभी तक मैं इन तीनों—मन, वचन और कर्म—को पूर्णरूप से पवित्र नहीं कर पाया हूँ। इसके बावजूद, इन तीनों को पवित्र करने की मेरी अनथक कोशिश रही है। इसलिये जब कोई मेरी प्रशंसा करता है कि मैं अन्दर-बाहर से एक जैसा हूँ, तो इससे मुझे कोई खुशी नहीं होती, अपितु यह प्रशंसा मुझे एक डंक-सी मारती है।"

जो अपने मन और वाणी को चोरी से बचाकर रखना चाहते हैं, वे गाँधीजी की तरह, सोचते हैं। अपने भीतर के किसी कोने में छिपी हुई कमजोरी को प्रकट करने से हिचकिचाते नहीं। उसे दूर करने के लिए निरन्तर यत्नशील रहते हैं। ज़रा आज के मानव का जीवन देखें। वह इस बात की परवाह नहीं करता कि मेरा मन और वाणी—एक स्वर में चल रहे हैं या नहीं। वह तो यह चाहता है कि लोग मुझे पवित्र कहें और यह कहें कि इस आदमी में कोई छल-कपट नहीं है :—

झूठ बोले हैं सदा और काम कमीनों के करे।
इस पर भी है ख्वाहिश कि कायम मेरा ईमाँ रहे॥

आज उसी व्यक्ति को चतुर समझा जाता है जो वाणी से ऐसी बात कहे, भले ही वह उसके विचार में सही न हो, पर सुनने वाले पर यही प्रभाव हो कि इसमें कोई बनावट नहीं है। बस, ऐसा समझा जाता है कि इतना ही काफी है, इससे काम चल जाता है। पर यह स्थिति तभी तक रहेगी, जब तक सूक्ष्म चोरी का आभास नहीं होता। बुद्धिमान् पुरुष इस रोग को समझ कर योग के मार्ग का अवलम्बन करता है। योग के मार्ग पर चलने वाले के लिए, जो पहली शर्त्त है, वह श्री अरविन्दघोष के शब्दों में इस प्रकार है :—

"योग में शान्ति और पवित्रता सबसे प्रथम और मुख्य है।" योगिराज श्री अरविन्द फिर आगे लिखते हैं कि "कैसी पवित्रता ?" सबसे पहले यह याद रखें कि "प्रशान्त मन और बुद्धि को पवित्र करके अपने अन्दर शान्ति का वातावरण बनाना योग के साधक के लिए पहली शर्त्त है।"

योग द्वारा अपने रोगों को दूर करने का जो व्यक्ति इच्छुक है, उसके लिए यह अनिवार्य है कि मन को शीशे की तरह साफ-सुथरा बनाकर अपनी वाणी को इसके साथ समस्वर कर दे। इस बात की परवाह न करे कि लोग मुझे क्या कहते हैं ? इस बात का ध्यान रखे कि मैं अपने आपको ठीक समझता हूँ कि नहीं ? दूसरे के समझने में भूल भी हो सकती है और अत्युक्ति भी। पर अपने आपको समझने में तो किसी को भूल नहीं हो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सकती। बस, भूल यहाँ ही है कि मानव इस ढंग से सोचता ही नहीं है। वह एक ही बात सुनने की प्रतीक्षा करता है कि "लोग मेरे सम्बन्ध में क्या कहते हैं ?" आम लोगों की क्या कहें, यहाँ तो आज के नेता और पथ-प्रदर्शक भी इसी चक्कर में फंसे हुए हैं। मन और वचन की समानता नहीं है। यही मन और वाणी की चोरी कही जाती है। महात्मा गाँधी जैसा सूरमा ही यश-अपयश की चिन्ता किये बिना अपने आत्मा, मन, व कर्म की प्रेरणा के अनुकूल अपनी वाणी से अपने अन्तरात्मा की ध्वनि को ऊँचे स्वर से कहने का साहस कर सकता है। जब चौरीचौरा में हिंसा के कार्य हुए और गांधी जी का अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन जोरों पर था, तब उन्होंने एकदम अपने आन्दोलन पर रोक लगा दी। देश के कई प्रमुख नेताओं ने उनका विरोध भी किया और कहा कि "देश बहुत आगे निकल रहा था। गाँधी जी ने असमय का राग छेड़ दिया और रोक लगाकर देश को पीछे धकेल दिया।" पर, गांधी जी से पूछे जाने पर, उन्होंने यही कहा कि "मैंने वही कुछ किया जो मेरी अन्तरात्मा ने कहा। ऐसी हालत में जब कि अन्तरात्मा कह रहा था कि आन्दोलन अब अपने आधार पर स्थिर नहीं रहा है, तो मैं कैसे अपने आपको इसके साथ चिपटा रख सकता था ? इसलिए मैंने जो कुछ किया, वह ठीक ही किया।"

योग का तो यही मार्ग है कि जो बात मन में हो, वही वाणी में आये। जब तक ऐसा नहीं हो पाता, तब तक चोरी का अपराध हो रहा है, किसी को दिखायी दे व न दे :—

मन में रखें और कछु, जिह्वा पर कछु और।
कर्मों से कछु और करें, तीनों झूठे ठौर॥

यह बनावटी जीवन है। योग का यह मार्ग नहीं। मन और वाणी का स्वर ताल आपस में मिला हुआ नहीं हो, तो एक महापुरुष के कथन के अनुसार—"हम सबको कुछ समय के लिए और किसी एक को हमेशा के लिए धोखा दे सकते हैं पर सबको सब समय के लिए धोखा नहीं दिया जा सकता।" आखिर पोल खुले बगैर रहती नहीं :—

बदी नीयत की छुप सकती नहीं शीरीं जबानी से॥
दिल अच्छा हो तो निभ जाए, शायद बदजबां होकर॥

अगर मन पवित्र नहीं है तो मीठा बोलने से भी आपकी वास्तविकता छिप नहीं सकेगी। अगर पवित्र मन से आवाज निकल रही है तो कड़ुआ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बोलने पर भी निभ जाएगी।

इसलिए, हर समय अपने विचारों की देखभाल करने की जरूरत है। बुरे विचार ही मन, वचन और कर्म को एकरस नहीं रहने देते। विचार यदि गन्दे हैं तो यही चेष्टा होती है कि वाणी पर न आएँ। तब जो कुछ भी वाणी पर आएगा, वह बनावटी ही होगा। दूसरे शब्दों में, चोरी होगी। इसलिए नींव को ठीक करने की जरूरत है। श्री रामकृष्ण परमहंस का कहना है "मनुष्य पाप कर्म तभी करता है, जब उसके मन में पाप का बीज मौजूद होता है। अगर मन में पाप न हो तो वाणी और कर्म से पाप का होना असम्भव है :—

ख्यालों की तुम देखाभाली करो,
दिमागी गिज़ा की जुगाली करो।
क्योंकि अगर बात सच्ची न लब से कहें,
तो अन्दर-ही-अन्दर कचौके लगें।

किसी को बेशक पता न लगे पर बुरी बात वाणी पर आने से मन को तो धक्के लगते ही हैं। इसीलिए रोग का नाश नहीं हो पाता। संक्षेपतः, अस्तेय के रूप को प्रत्येक दृष्टिकोण से पूरी तरह समझने पर ही जीवन का उद्देश्य पूरा होगा। श्रेष्ठ पुरुष व योग के यात्री का लक्षण यह है :—

हकीकत में इन्सान वही नेक है।
कि जिसकी ज़बाँ और दिल एक हैं॥

❀❀

२३

(४) ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य का अभिप्राय प्रत्येक इन्द्रिय के संयम से है।

महर्षि दयानन्द ने "सत्यार्थप्रकाश" के द्वितीय समुल्लास में ब्रह्मचर्य का स्वरूप इस प्रकार बताया है :—

"देखो, जिसके शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है, तब उसको आरोग्य,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़ के बहुत सुख की प्राप्ति होती है। इसके संरक्षण की यही रीति है कि (१) विषयों की कथा (२) विषयी लोगों का संग (३) विषयों का ध्यान (४) स्त्री का दर्शन (५) एकान्त सेवन, संभाषण और स्पर्श आदि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक् रहकर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त होवें। जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता, वह महाकुलक्षणी, दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रमादि गुणों से रहित हो नष्ट हो जाता है। जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण, वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तुमको यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा।"

फिर तीसरे समुल्लास में महर्षि दयानन्द ने छान्दोग्य उपनिषद् का प्रमाण देते हुए तीन प्रकार के ब्रह्मचारियों का वर्णन किया है—(१) **वसु**—पुरुष २५ वर्ष तक, कन्या १६ वर्ष तक, (२) **रुद्र** - पुरुष ३६ वर्ष तक, कन्या १८ वर्ष तक और (३) **आदित्य**—पुरुष ४८ वर्ष तक, कन्या २४ वर्ष तक। इसके आगे ब्रह्मचर्य समाप्त करके विवाह कर लेना चाहिए। परन्तु महर्षि कहते हैं :—

"परन्तु यह नियम विवाह करने वाले पुरुष और स्त्रियों का है और जो विवाह करना ही न चाहें, वे मरण पर्यन्त ब्रह्मचारी रह सकते हों तो भले ही रहें, परन्तु यह काम पूर्ण विद्या वाले, जितेन्द्रिय और निर्दोष स्त्री और पुरुष का है। यह बड़ा कठिन काम है कि जो काम के वेग को थाम के इन्द्रियों को अपने वश में रखना।"

ब्रह्मचर्य का संक्षिप्त अर्थ "संयमित जीवन व्यतीत" करना है। इसलिए आयु के पहले भाग में कम-से-कम २५ वर्ष का ब्रह्मचर्य रखने के पश्चात् जब गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करे, तब भी संयमित और नियंत्रित जीवन व्यतीत करना चाहिए। विषय लम्पटता व उच्छृङ्खल जीवन से सदा बचना है गृहस्थ में रहते हुए भी पति-पत्नी ऋतुकालगामी हों और केवल सन्तान उत्पादन के लिए आपस में सम्पर्क करें, मात्र कामवासना पूर्ण करने के लिए नहीं।

ब्रह्मचर्य के महत्त्व के सम्बन्ध में गांधी जी ने बहुत कुछ लिखा है और अपने जीवन में क्रियात्मक रूप में उन्होंने ढाला भी था। गांधी जी के शब्दों में ब्रह्मचर्य का स्वरूप इस प्रकार है :—

"ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल वीर्य रक्षा अथवा कामजय ही नहीं है, बल्कि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उसके लिए सभी इन्द्रियों का संयम आवश्यक है। लेकिन, लोक व्यवहार में ब्रह्मचर्य का अर्थ कामजय ही किया जाता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य को कामजय ही अधिक-से-अधिक कठिन इन्द्रियजय मालूम होता है। लेकिन, इस अर्थ को अधूरा समझना चाहिए।

"वस्तुतः, जीवन को सुखपूर्वक बिताने के लिए दूसरी इन्द्रियों का थोड़ा-बहुत भोग आवश्यक हो जाता है किन्तु काम-जय से अथवा जननेन्द्रिय के सम्पूर्ण संयम से जीवन निर्वाह अशक्य नहीं बनता, उल्टे वह अधिक अच्छा और तेजस्वी बन जाता है।

"विचारशील मनुष्य समझ सकता है कि दूसरी इन्द्रियों का पोषण किये बिना काम को बहुत पोषण नहीं मिलता और यह कि दूसरी इन्द्रियों को जीते बिना काम को जीतने की आशा रखना व्यर्थ है। आज के मनुष्य का काम-विकार एक सदा का रोग बन गया है। अतएव उसे जीतना उसके लिए अत्यन्त कठिन हो गया है।" (गाँधी विचार दोहन पृ० ९-१०)

'ब्रह्मचर्य' शब्द का अर्थ "ब्रह्म में चरना, अर्थात् गति करना, अथवा ब्रह्म को खाना है। "चर्य" शब्द "चरगतिभक्षणयोः"—इस धातु से बनता है। ब्रह्म में ही सदा अपने को अर्पित करना और ब्रह्म के गुणों को भोजन के समान भीतर ले जाना—ब्रह्मचर्य का विस्तृत अर्थ है। वैदिक साहित्य में "ब्रह्मचर्य" शब्द केवल कामवासना से युक्त रहने के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है, किन्तु "अपने जीवन को ब्रह्मार्पण बनाना और ब्रह्म के गुणों का रसास्वाद करना, इसी विशाल भावार्थ में प्रयुक्त हुआ है। ऐसा व्यक्ति, निःसन्देह, इन्द्रियजयी और काम विकार से रहित तो होगा ही पर, वस्तुतः, वह इससे भी कहीं अधिक महान् और गुणवान् होगा। यह आवश्यक नहीं कि इस जीवन मार्ग पर चलने के लिए अविवाहित ही रहा जाए। गृहस्थाश्रम में रहता हुआ भी व्यक्ति ब्रह्मार्पित और ब्रह्मरसास्वादक बन सकता है।

अथर्ववेद में एक ब्रह्मचर्यसूक्त है जिसमें ब्रह्मचर्य की बड़ी महिमा गायी गयी है। नमूने के तौर पर दो मंत्र यहाँ उपस्थित किये जाते हैं :—

(१) ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते॥

अथर्व० ११।५।१७॥

अर्थ—ब्रह्मचर्य के तप से राजा राष्ट्र की रक्षा करता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आचार्य ब्रह्मचर्य के बल से ही ब्रह्मचारी, अर्थात् शिष्य की कामना करता है।

(२) ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्॥

अथर्व० १९।५।१९

ब्रह्मचर्य के तप से ही विद्वान् मृत्यु पर विजय प्राप्त करते हैं। जीवात्मा ब्रह्मचर्य के बल से ही इन्द्रियों से सुख प्राप्त करता है।

मनुस्मृति में ब्रह्मचर्यव्रत पालन करने के लिए निम्नलिखित वस्तुओं का त्याग आवश्यक बताया गया है :—

(१) शराब (२) मांस (३) सुगन्धित पदार्थों व मालाओं का प्रयोग (४) रसना के स्वाद (५) स्त्रियों का संग और (६) विषयों की गुलामी (७) अन्य के शरीर का स्पर्श (८) खटाई के पदार्थ (९) प्राणि-हिंसा (१०) तेल की मालिश (११) आँखों में सुरमा व काजल डालना (१२) जूता पहनना (१३) और छाता लगाना, (१४) काम, क्रोध, (१५) नाच-गाना, (१६) जूआ खेलना, वृथा बोलना, नारी को स्पर्श करना, व देखना इत्यादि। मनु जी कहते हैं कि "अकेला ही सोए और कभी भी काम के वश हुआ अपने वीर्य का स्खलन न करे।"

(५) अपरिग्रह

अब पाँचवाँ अंग अपरिग्रह है। इसका मतलब है, संग्रह की प्रवृत्ति का न होना। परिग्रह का अर्थ है, साँसारिक वस्तुओं का जमा करना और अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाना। "परिग्रह" के साथ "अ" लगाने से इस प्रवृत्ति का निषेध किया गया है, अर्थात्, साँसारिक वस्तुओं का कम-से-कम संग्रह, उपयोग और अपनी आवश्यकताएँ न्यूनतम बनाना।

श्री जवाहरलाल नेहरू ने भारत के संविधान का आधार समाजवाद बताया था जिसे देश ने स्वीकार कर लिया। विश्व के अन्य कई देशों में भी "समाजवाद" का बहुत प्रचार है। "कम्युनिज्म" की आड़ में सारे विश्व को एक सदृश करने की तैयारियाँ हो रही हैं। पर, यह सारे आदर्श "अपरिग्रह" के अन्तर्गत आ जाते हैं। महर्षि पतंजलि का यह मार्ग, एक प्रकार से, सागर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

को गागर में रख देने के समान है। विश्व में आज जो दुःख और कष्ट दिखायी देते हैं, चोरी और डाके पड़ते हैं, वह केवल इस एक अंग की उपेक्षा के कारण हैं। आज का मानव इस सुनहरी सिद्धान्त को भूल गया है। अपनी आवश्यकता से अधिक अपने पास जो हो, उस पर साँप की तरह कुँडली मारकर न बैठ जाए। इसमें दूसरों का हिस्सा समझे। "अपरिग्रह" की व्याख्या करते हुए गांधी जी ने लिखा है :—

"अपनी शक्ति भर मनुष्य इकट्ठा करे पर जो कुछ इकट्ठा करे, उसका ट्रस्टी बन कर रहे। वह केवल अपने लिए न समझे, बल्कि पूरी प्रसन्नता से—किसी दबाव के बिना—अपनी जरूरत से जो बचे, उस पर दूसरों का अधिकार समझे।" अब अगर इस सिद्धान्त का मनुष्य मात्र पालन करें, तब फिर सोचिए, ईर्ष्या-द्वेष की कहां गुँजायश रहती है ? वेद में एक मंत्र है :—

शतहस्त समाहर, सहस्रहस्त संकिर।

अथर्व० ३।२४।५ ॥

तं सौ हाथ से इकट्ठा कर, किस लिए, ताकि हजार हाथों से तूं उसे बांटने वाला हो। आज लोग पहली बात को मानते हैं पर दूसरी को नहीं। यही कारण है कि रोग का नाश नहीं हो रहा। योग रोग का नाशक तो निश्चित रूप में है पर योग का मार्ग अपनाने से ही काम चलेगा। सन्त विनोबा जी ने जो अपने जीवन की बाजी लगा रखी है, उसका उद्देश्य भी यही है। लोग अपनी इच्छा से, जरूरत से अधिक धन व भूमि अभाव-ग्रस्तों को दे दें—विनोबा जी यही कहते हैं। साम्यवाद व समाजवाद का यह तरीका जो विनोबा जी ने अपनाया है, वही संसार में शान्ति और सुख ला सकता है। वह तरीका नहीं जिसे आज के कम्युनिस्ट अपना रहे हैं, जिसके अनुसार अमीरों से छीन कर गरीबों को देने की बात कही जाती है। यह तो "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली बात हुई। विनोबा जी की नीति यह है कि बिना सरकारी सहायता व कानून के जोर से, मनुष्य के मन में ऐसा परिवर्तन लाया जाए जिससे प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करे कि मेरे पास आवश्यकता से जो कुछ भी अधिक है, उस पर मेरा कुछ अधिकार नहीं है, इस पर अभावग्रस्तों का ही अधिकार है।

जिस मनुष्य के जीवन में यह सिद्धान्त क्रिया में आ जाता है, वही इसके आनन्द का अनुभव करता है। सन्त विनोबा जी की प्रेरणा से देश के कई बड़े-बड़े जमींदारों ने लाखों बीघे जमीन "ग्रामदान" में भेंट कर दी है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कार्ल मार्क्स ने भी रूस के लिए यही आदर्श रखा था :—

From each according to his capacity and to each according to his needs.

"हरेक आदमी से इतना काम लिया जाए जितनी उसकी शक्ति है और हरेक को उतना दिया जाए, जितनी उसकी जरूरत हो।" यह सिद्धान्त तो सुनहरी है पर इसकी गहराई में जाने से पता लगता है कि कार्ल मार्क्स के अनुयायी इस सिद्धान्त को उस ढंग से न चला सके, जिस ढंग से सन्त विनोवा चला रहे हैं। यह मार्ग तप और त्याग का है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इसे अपनाना जरा कठिन है, पर विश्व में सच्ची और दीर्घकालीन शान्ति की स्थापना इसके बिना असम्भव है। आज व्यक्ति ने अपनी आवश्यकताएं और इच्छाएं यहां तक बढ़ा ली हैं कि उनमें से अनावश्यक को छांटना व कम करना—एक कठिन समस्या बन गयी है। गांधी जी कहते हैं—"संसार को तलवार के जोर से जीत लेना, यद्यपि, कठिन है पर इससे भी कठिन अपनी वासनाओं को जीतना है, यह मैं समझता हूँ।"

इसी कारण अपरिग्रह का भावार्थ ठीक प्रकार समझ में नहीं आ पाता। मनुष्य सोचता है कि कमाऊं तो मैं, मेहनत तो मैं करूं, अपनी जान खपाऊं मैं, और खा जाएं दूसरे।" इस ढंग से सोचने वाला यह नहीं समझता कि जितना तूं खा सकता है बेशक खा, अपने बच्चों को भी खिला, पर वेद के कथन के अनुसार "यज्ञ शेष" ही खा :—

उसी नहर जारी का पानी भला।
जो औरों की चक्की चला कर चला॥

लेकिन तमाशा यह है कि दूसरों को देना तो एक ओर रहा, जमा करने की हवस में खुद भी ठीक ढंग से अपनी कमाई का इस्तेमाल नहीं हो रहा। यही एकमात्र इच्छा है कि लोग मुझे धनी कहें।

करें पेट से जिन्दगी भर उधार॥
कि मरने पै कहलाएं वह मालदार॥

जिसके पास जरूरत से ज्यादा है और वह दूसरों को देता नहीं, बैंकों में जमा करा देता या तिजौरियों में सजा रखता है, उसमें और एक गरीब में क्या भेद है? रोटी तो गरीब खा ही लेता है। फिर दोनों में भेद क्या रहा?

जो दोनों ही देने से लाचार हैं।
तो यकसां बखील और नादार हैं॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यह ठीक है कि ट्रस्टी बन कर रहने के लिए पृष्ठभूमि बड़ी दृढ़ होनी चाहिए। पर भगवान् की ऐसी कृपा हो जाए और समझ में बैठ जाए तो इस जन्म में ही स्वर्ग जैसा आनन्द अनुभव होने लगता है। सर गंगाराम के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि उनके तीन लड़के थे और चौथा लड़का धर्म खाते को मान रखा था। इसलिए उनके पास जो कोई भी जाता, उन्हें देने में कोई कष्ट न होता था। "अपरिग्रह" अपनाने का यही ढंग है कि अपने लड़कों का हिस्सा निकाल कर, बाकी जो बचे, वह दूसरों के लिए हो। इस आनन्द का अनुभव वही जान सकते हैं जो इस पर चलते हैं। क्या इससे उनके धन में कमी हो जाती है ? नहीं, दिन दुगुनी रात चौगनी तरक्की होती जाती है।

नहीं खैर जारी को दौलत का गम।
कि चलते कूंए का न पानी हो कम॥

ट्रस्ट्री को अमीन कहते हैं। कवि कहता है :—

न तूं आसमानों जमीनों में देख।
तूं जन्नत अमीनों के सीने में देख॥

अपरिग्रह का भाव एक कवि के शब्दों में :—

जनाब आसा करार ओ जीस्त है, दुनियाए फानो में।
जो तुझसे हो सके कर ले, भलाई जिन्दगानी में।
न दौलत साथ जाएगी, न हश्मत साथ जाएगी।
न शौकत साथ जायेगी, न जीनत साथ जाएगी।
जो पूछे जाएंगे माशर में, वह एमाल हैं तेरे।
अगर कुछ साथ जाएंगे, वह नेक एफ़ाल हैं तेरे॥

❀❀

२४

पांच नियम (१) शौच

यम के पांचों अंगों का वर्णन हो चुका। मनु महाराज ने लिखा है कि यम के साथ नियमों का पालन भी आवश्यक है। यमों का सम्बन्ध सामाजिक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जीवन से है और नियमों का व्यक्तिगत जीवन से।

पहला नियम है शौच। इसका शब्दार्थ है पवित्रता। यह दो प्रकार की है, अन्दर की और बाहर की। दोनों परस्पराश्रयी हैं। पर आज का मनुष्य एक ओर की पवित्रता की ओर ही ध्यान दे रहा है, अर्थात्, बाहर की शुद्धि। स्नान पहले है तो बाहर के लिए, साबुन तेल का प्रयोग भी बाहर के लिए है, कपड़ा, मकान, मोटर, साइकल, घड़ी—इत्यादि सब वस्तुओं की सफाई का खूब ध्यान है। यह कोई बुरी बात नहीं। शरीर व घर से सम्बद्ध प्रत्येक वस्तु साफ-सुथरी और शुद्ध होनी चाहिए। पर केवल यहाँ तक अपने जीवन के कार्यों को सीमित कर देना पर्याप्त नहीं है। संस्कृत के एक कवि के अनुसार :—

अन्तः स्नानविहीने बाह्यस्नानं किं करिष्यति।

अगर भीतर का स्नान नहीं किया तो बाहर का स्नान क्या करेगा? अगर मन को भी साबुन लगाकर साफ किया जा सकता, सुगन्धित तेल लगाकर उसे अच्छी गंध वाला किया जा सकता, तो, भला, मनुष्य कहाँ चूकने वाला था? कमोवेश सबके मन कपड़ों की तरह हर दूसरे-तीसरे दिन साफ हो जाते, और, हरेक के मन से इत्र की सुगन्ध आती! परन्तु वर्तमान अवस्था में अपने अन्दर से किसी को सुगन्ध आती मालूम नहीं होती। इसके लिए किसी में उत्सुकता भी प्रतीत नहीं होती। यह तो हो सकता है कि हम दूसरों को न पता लगने दें कि हमारे मन की अवस्था क्या है? पर हमारे अपने से तो कुछ छिपा हुआ नहीं है। हम बाहर से गेरूए कपड़े पहिन लें, सिर को मुंडवा लें, तिलक छाप लगा लें—यह सब चिह्न दूसरों को केवल भुलावे में डालने के लिए हैं। अगर हमारा ध्यान अन्दर की ओर नहीं जाता, तो इन चिह्नों से तो काम नहीं चल सकता। गाँधी जी पवित्रता के सम्बन्ध में लिखते हैं :—"आत्मशुद्धि, इसलिए, मेरे लिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में शुद्धि का संदेश देती है।" यह शुद्धि बाहर की और अन्दर की—दोनों प्रकार की हो। ऐसा करने से ही जीवन से ऐसी गन्ध आ सकती है, जो दूसरों को भी पवित्र कर दे। गांधी जी कहते हैं "पवित्रता का प्रभाव दूसरों पर पड़े बिना नहीं रह रहता। जो अपने आप को अन्दर-बाहर से पवित्र बना लेता है, उसका प्रभाव इर्द-गिर्द रहने वालों पर हर हालत में पड़ता है। इसी को मैं जीवन की सुगन्ध कहता हूँ कि अपने भीतर से सुगन्ध निकले जिसका प्रभाव दूसरों पर पड़े बिना न रह सकेगा। पर भीतर की सफाई का रास्ता जरा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कठिन है। गांधी जी के शब्दों में—

"अपने जीवन की शुद्धि का रास्ता जरा सख्त और मुश्किल है।"

एक पजाबी कवि के शब्दों में :—

चिट्टे कपड़े तेरे किस कम्म आवन, जे अन्दरों होंवे तूं काला।
अन्दरों पोचा पावन औक्खा, बाहरों बड़ा सुखाला॥

अगर बाहरी ठाठ बाट बना भी लिया, शरीर सुडौल भी बन गया, कपड़े भी श्वेत पहनने को मिल गये पर मन मैला है, बुद्धि पवित्र नहीं है तो जीवन का आनन्द नहीं आया। पंजाबी की एक कहावत का मतलब है कि "बेईमान की कब्र को चूने से सफेद कर देने से उसकी बेईमानी की कालख थोड़े ही नष्ट हो जाती है" :—

हुस्न सूरत महज बेरौनक हैं, सीरत के बदूं।
जिन गुलों में बू नहीं, वह खुशनुमा करने को हैं॥

अथवा—

सीरत नहीं है जिनमे, वह सोहबत फिजूल है।
जिस गुल मे बू नहीं, वह कागज का फूल है॥

इसलिए महर्षि पतंजलि के शौच के भाव को पूरी तरह बताना हो, तो शरीर, मन और बुद्धि,—तीनों का निर्विकार बनाना ही इसका उद्देश्य है। इसके उपाय, मनुस्मृति में महाराज मनु के शब्दों में :—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।

"जल से शरीर के अंग शुद्ध होते हैं, मन की शुद्धि सत्य से होती है, आत्मा की शुद्धि विद्या और तप से तथा ज्ञान से बुद्धि की शुद्धि होती है।" कड़ाकेदार सर्दी में वे लोग कितने भाग्यवान् होंगे जो प्रतिदिन जल से शरीर को शुद्ध करने का प्रयत्न भी करते हैं। संभवतः, बहुसंख्यक लोग भी ऐसे मिल जाएं जो शरीर का ध्यान रखते हैं। पर दूसरी बात जो मनु महराज ने कही वह महत्त्व की है। इस कसौटी पर आज के मानव को कसिए, तो कितने हैं, जो सत्य रूपी जल का प्रयोग मन और बुद्धि की शुद्धि के लिए कर रहे हैं। केवल कहने और जानने से, पर साबुन का प्रयोग न करने से, कपड़े व शरीर शुद्ध नहीं हो सकते। साधारण बुद्धि वाला व्यक्ति भी इस प्रश्न का उत्तर "न" में ही देगा। यह मोटी बात हरेक के दिमाग में आसानी से आ जाती है। तब, क्या केवल यह जान लेने से कि मन और बुद्धि (अन्तःकरण) सत्य से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शुद्ध होते हैं, पर इसका प्रयोग न करें, तो क्या मन और बुद्धि शुद्ध हो जाएंगे ? पर आज तो लोग कहते हैं कि झूठ के बिना वर्तमान व्यवहार चल ही नहीं सकता। अब इस फार्मूला से पाठक स्वयं जान लें कि योग का केवल ज्ञान प्राप्त कर लेने से रोगों का नाश नहीं हो जाएगा। केवल वाणी से बोलने से ही काम नहीं चलेगा। इसके लिए तो सीधा मार्ग पकड़ने की जरूरत है। जान लिया, कर लिया, पर समझा नहीं बस यही भूल है। समझे बिना करना शुरू कर दिया, तो परिणाम कभी सही नहीं निकलेगा, करने वाला इस सिद्धान्त में सन्देह करने लगेगा, अर्थात् "योग रोग का नाशक है भी वा नहीं।" सच यह है कि भीतर की शुद्धता पर ध्यान नहीं दिया जा रहा। परिणामस्वरूप, रोग का नाश नहीं हो रहा। फिर, जीवन में रस कहाँ से आये ? इस लिए शौच को ठीक समझने की जरूरत है। फिर, रोग का नाश हुए बिना रह नहीं सकता।

❀❀

२५

(२) सन्तोष

यह एक ऐसा धन है, जिसे यह प्राप्त हो जाए, तो उसके लिए संसार की कोई ऐसी वस्तु नहीं, जिसकी उसके पास कमी रह जाए। सर्वसम्पन्न करने वाला यदि संसार में कोई धन है तो वह सन्तोष है :—

गजधन गोधन वाजि धन चौथा है धन दाम।
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूल समान॥

सन्तोष को अपनाना भी तो जरा हिम्मत का काम है। सुभीते से यह उसी के हिस्से में आ सकता है जिसे भगवान् के न्याय नियम पर भरोसा है। ऐसा ही व्यक्ति अपने रोग का नाश करके हर हालत में प्रसन्न रह सकता है।

रंज होते हैं उन्हें जिन्हें, खुशियों से प्यार है।
यां यूं भी वाह वाह है, और वूं भी वाह वाह है॥

सन्तोष से मन में शीतलता रहती है। ईर्ष्या-द्वेष को वहाँ स्थान नहीं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मिलता। ईर्ष्या-द्वेष का ही वह मल है जो रोग का उत्पादक है। इसकी जड़ें इतनी गहरी हैं कि उनका उखाड़ना किसी वीर पुरुष का ही काम है। जब तक इनकी जड़ कटती नहीं, सन्तोष नाम की वस्तु का कोसों पता नहीं लग सकता। उसका रोग भी असाध्य बन जाता है। आज का मनुष्य रोग की जड़ काटे बिना ही रोग के परिणाम से बचना चाहता है। जिनका यह रोग दूर हो जाता है, वे तो सन्तोष के धन से मालामाल हो जाते हैं :—

कनायत है दिल की सुहानी फजा।
कनायत है सीने की ठंडी हवा॥

कनायत का अर्थ उर्दू में सन्तोष ही है। इसे कवि ने "सुहानी फजा" से उपमा दी है। जो अपने आपको दुःख और कष्ट की घड़ियों में भी शान्त चित्त देखने के अभिलाषी हैं, उन्हें अपने आपको सन्तोष के आभूषण से सजाना होगा। जो अपने मन को परिस्थितियों की गुलामी से बचाना चाहते हैं, जीवन के गर्म और ठंडे झोंकों से अपने को सुरक्षित रखना चाहते हैं, उन्हें सन्तोष को अपना मित्र बनाना होगा।

कनायत अगर कल्बे इन्सां में हो।
तो जी पुरसकूँ गम के तूफां में हो॥

नीतिकारों ने एक दूसरा रुख भी लिया है। जहाँ सन्तोष इतनी अच्छी वस्तु है, वहाँ उसे सांसारिक पदार्थों की तृष्णा तक ही सीमित कर दिया है। कहीं-कहीं सन्तोष न करने का भी आदेश दिया है। इस सीमा को समझना भी बहुत जरूरी है ताकि शंका न रहे। जैसे, विद्या की प्राप्ति में सन्तोष न करें, अच्छे कर्म करने की आकांक्षा बनी रहे। एक उर्दू कवि के शब्दों में :—

कनायत है शायां जरो माल पर।
कनायत न कर इल्मी-एमाल पर॥

सन्तोष के सम्बन्ध में एक और भ्रान्ति फैली हुई है।

राम भरोसे लेट कर, रहो खाट पर सोय।
अनहोनी होनी नहीं, होनी है सो होय॥

यह तो अकर्मण्यता और आलस्य सिखलाने का ढंग है "राम भरोसे" का जहाँ तक सम्बन्ध है वह तो निश्चय ही आवश्यक है पर यत्न रहित हो कर नहीं। पूरा यत्न करते हुए और अपनी ओर से कोई कमी न रखते हुए, फिर फल भगवान् पर छोड़ देना ही सन्तोष का सच्चा स्वरूप है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कनायत में सुस्ती से कर उतराज,
सकून और गफलत में कर इमतियाज,
जो सुस्ती ने बदला कनायत का भेस,
तो इक दिन हमारा उजाड़ेगी देस।

सुस्त आदमी को सन्तोषी कहना इस शब्द का अपमान करना है। यजुर्वेद अध्याय ४०, मंत्र २ में कहा गया है :—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविशेच्छतꣳ समाः।

अर्थात् १,००० वर्ष तक कर्म करता हुआ ही जीवन व्यतीत करने की इच्छा करे। सुस्त होकर पड़े रहने का तो कहीं विधान ही नहीं। पर तृष्णा व लालच से छुटकारा पाना जरूरी है।

प्रापणं सर्व कामानां परित्यागः विशिष्यते।

सब कामनाओं को प्राप्त करने की अपेक्षा उनसे छुटकारा पाना ही श्रेष्ठ है। तृष्णा और लोभ की अग्नि इन्हें पूरा करने की चेष्टा में इस तरह भड़कती है, जैसे अग्नि में घी डालने से। तृष्णा की शान्ति सन्तोष के बिना असम्भव है। तृष्णा को छाननी से उपमा दी गयी है। जिस प्रकार छाननी में पानी नहीं ठहर सकता, इसी तरह तृष्णा का पेट नहीं भर सकता।

हवस सैर तुझ को करे किस तरह,
कि छलनी में पानी भरे किस तरह,
जमाने की दौलत से घर अपना भर,
तो फिर भी न हो सैर तेरी नजर।

जिसके पास १०० है वह १००० बनाने को अपनी जिन्दगी का उद्देश्य समझता है, हजार वाला लाख पर नजर रखता है, लाख वाला करोड़ पर। उसके लिए एक सौ व हज़ार का कोई मूल्य नहीं, जो कि दूसरे आदमी का अन्तिम लक्ष्य है :—

बन्दे दी ख्वाहिशां कदीं होंदियां न पूरियां।
तड़पता बतेरा फिर भी रहंदियां अधूरियाँ॥

जो यत्न करते हुए भगवान् पर विश्वास रखते हैं उनके सम्बन्ध में ही गीता के अ० ९।२२ श्लोक में कृष्ण भगवान् ने अर्जुन को कहा है कि "ऐसे ईश्वर भक्तों और ईश्वर परायणों के योग और क्षेम का भार भगवान् स्वयं उठा लेते हैं।" इसमें "ईश्वर परायण" शब्द विशेष ध्यान देने योग्य हैं। यह वह मार्ग है जिस पर कोई माई का लाल ही चलता है। दूसरा मार्ग है असन्तोषी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पुरुषों का है जो लक्ष्य से दूर ले जाने वाला है। इस पर बड़ी भीड़ रहती है। इसलिए सन्तोषी पुरुष के लिए आवश्यक है कि वह "ईश्वर परायण" की लाठी का सहारा कभी न छोड़े।

भरोसे का इन्सां निकल जाएगा।
पहाड़ उसके रास्ते से टल जाएगा॥

रविश कवि के शब्दों में :—

मंजूर हुक्मे कदर-ओ, कजा कर जो कर सके।
तस्लीम जाते हक की, रज कर जो कर सके॥
गर आरजू है तुझ को सकूने दुआम की।
तो दिलसे तर्क-हिरस, ओ हवा कर जो कर सके॥

इस साधन को अपना कर ही योग द्वारा रोग का नाश कर अपना जीवन सुखी व प्रसन्न बनाया जा सकता है—

हवा और हवस का नहीं जो गुलाम।
वही है शहनशाह-ए-दार उल्सलाम॥

❀❀

२६

(३) तप

तप का अभिप्राय है, कर्त्तव्य परायणता न कि शरीर को अनावश्यक कष्ट देना, जैसा कि कुछ लोग समझते हैं। गीता के अध्याय १७ श्लोक ५—६ में कहा गया है "जो मनुष्य शास्त्र विधि रहित घोर तप करते हैं वे दम्भ और अहंकार से युक्त, कामना आसक्ति और बल के अभिमान से भी युक्त हैं।" ऐसे मनुष्य शरीर सुखाते और जीवात्मा को क्लेश देते हुए भगवान् के नियम का उल्लंघन करते हैं। प्रश्न होगा कि तप की शास्त्रोक्त विधि क्या है? इसी अध्याय के १४, १५ और १६ श्लोकों में तप को तीन भागों में बाँट दिया गया है, शारीरिक, वाचिक और मानसिक। शारीरिक तप इस प्रकार है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देव द्विज गुरुप्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।। १७।१४

देव, विद्वान्, गुरु, माता पिता, आचार्य व वृद्ध अथवा जो अपने से किसी प्रकार भी बड़े हों और ज्ञानी जनों का पूजन, अर्थात्, सेवा-सत्कार, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा का पालन—यह शरीर सम्बन्धी तप है। यह है शास्त्र विधि के अनुकूल शारीरिक तप।

शरीर से किसकी पूजा करें ? पहले कहा—देवता, अर्थात्, देने वाला। पंच महा भूतों को भी देवता कहा गया है, अग्नि, वायु, जल, पृथिवी और आकाश, इन सबसे कुछ न कुछ प्राप्त होता है। सूर्य-चन्द्र आदि भी देवता हैं, क्योंकि यह भी प्राणिमात्र को देते हैं। जिन ऋषियों ने वेद का ज्ञान परमात्मा से प्राप्त करके मानव को दिया है, वे भी देने वाले होने से देवता हैं। जिन महापुरुषों ने हमारे लिए मर्यादाएँ बनाईं, जैसे, राम, कृष्ण, स्वामी दयानन्द आदि, इनकी भी मानव को बड़ी भारी देना है। इस दृष्टि से ये सब देवता हैं। पूजा के योग्य जिन तीनों को आगे बताया गया, अर्थात् ब्राह्मण, (विद्वान्) गुरु और ज्ञानी, वह भी हमारे देवता हैं। ब्राह्मण वह हैं जो अपने यजमान के जीवन का निरीक्षण करता रहे, कहीं वह पथभ्रष्ट तो नहीं हो गया है। भटकने वालों को सद्ग्रन्थों के प्रकाश से श्रेष्ठ मार्ग दिखाता रहे। ऐसे कर्त्तव्य परायण पुरुष को ब्राह्मण कहते हैं। वह सेवा और सत्कार के योग्य है। गुरु से मतलब गद्दीधारी से कहीं है। गुरु वह है, जिससे कुछ शिक्षा मिले, जैसे, माता, पिता और आचार्य, अथवा हमसे गुणों में कोई भी बड़ा हो जिससे हम कुछ सीख सकें। दत्तात्रेय ने २४ गुरु धारण किये जिनसे उसने शिक्षा ग्रहण की। ये पशु, पक्षी, जड़, पदार्थ व मनुष्य—सब थे। जहाँ से उसे कुछ मिला, उसे ही इस ने अपना गुरु बना लिया, कोई विशेष व्यक्ति नहीं। पहली कक्षा में बच्चे को जो पढ़ाता है, वह भी गुरु है। इसी से गुरु भी देवता हैं। और सेवा-सत्कार के योग्य है। इसके आगे हैं "प्राज्ञ" अर्थात्, ज्ञानी जन, अर्थात्, वह लोग जिन्होंने अपने ज्ञान से संसार का भारी उपकार किया है, जैसे रेल, हवाई जहाज इत्यादि का आविष्कार करने वाले। प्रकृति के रहस्यों को जान कर जिन्होंने जनता को लाभ पहुँचाया। दूसरे ज्ञानी वे हैं जिन्होंने आत्मिक उन्नति के साधन बताये, जैसे पातंजल, व्यास, शंकर, विवेकानन्द, दयानन्द, अरविन्द घोष इत्यादि महा-पुरुष। यह सब भी सेवा-सत्कार के योग्य हैं।

अब सेवा करने के साधन क्या हैं ? पूजा और सेवा का अर्थ है, किसी के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

साथ यथायोग्य बर्त्ताव करना। सबसे पहले देवता है—पंचमहाभूत। इन में से पहले अग्नि और जल को लें। इनकी पूजा इन से यथायोग्य काम लेना है। इनके आगे माथा टेकना व परिक्रमा करना पूजा नहीं है, जैसे, पारसी अग्नि की पूजा करते हैं। अभिप्राय तो यह था कि ज्ञान की अग्नि सदा जलती रहे और भौतिक अग्नि में शुद्ध और पवित्र पदार्थों की आहुतियाँ डालकर वायुमंडल को, यथासम्भव, शुद्ध-पवित्र रखा जाए। यह असली मतलब तो भुला दिया गया है पर अग्नि की पूजा को ही मुख्य मान लिया गया है। अग्नि की पूजा तो उसका ठीक प्रयोग ही है, जैसे, अग्नि के द्वारा भोजन पकाना, बिजली के रूप में प्रकाश, व जनहित के अन्य कार्य, उद्योग चलाना इत्यादि। जल की पूजा उसका शरीर आदि के लिए प्रयोग जिससे शरीर साफ-सुथरा रहे। नदियों पर बांध बनाकर खाद्य-उत्पादन को बढ़ाएं, बिजली पैदा करें, पन चक्कियाँ, घर्राट, बिजली घर इत्यादि चलाएं तथा नाना प्रकार के काम लें। जल में फल-फूल, मिठाई इत्यादि का कुछ श्लोक पढ़ कर प्रवाह करना जल की पूजा नहीं है। जब रेलगाड़ी किसी नदी के पुल पर से गुजरती है तो कई लोग नदी में पैसे फेंकते हैं—यह पूजा नहीं है। इससे जल की पूजा कर अपने पापों से छुटकारा समझ लिया जाता है। इसी प्रकार सूर्य और चन्द्रमा को लें। स्नान के समय कुछ लोग पूर्व की ओर मुँह कर सूर्य पर जल चढ़ाते हैं। इसे ही सूर्य की पूजा समझते हैं। चन्द्रमा जिस दिन अमावस के बाद चढ़ता है, तो धागे तोड़-तोड़ कर उधर फेंकते हैं अथवा देवियाँ पानी मिला दूध चढ़ाती हैं। लोग अंधाधुंध इन रूढ़ियों के पीछे चल रहे हैं। सूर्य और चन्द्रमा के गुणों से लाभ उठाना ही उनकी पूजा है। वेद के अनुसार :—

स्वस्ति पन्था मनुचरेम सूर्या चन्द्रमसाविव।
पुनर्ददता घ्नता जानता संगमेमहि॥

ऋग्० ७।३५।१५

सूर्य और चन्द्रमा की तरह हम कल्याण के मार्ग पर चलें। इस कठिन मार्ग को छोड़कर जल का अर्घ्य देने के सहज मार्ग को हमने पकड़ लिया है। सही पूजा का मार्ग ही तप है। इस पर चलना कितना कठिन है, इसे कठोपनिषद् में यम ऋषि कहते हैं :—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया,
दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति ।।

अर्थः—यह तप का मार्ग अत्यन्त कठिन है। आत्मदर्शी कहते हैं कि यह छुरे की धार पर चलने के समान है। इसके लिए मनुष्य को सावधान और जागरूक रह कर कर्त्तव्य परायण होना चाहिए।

इससे आगे हैं माता पिता और आचार्य की पूजा। इसका रूप भी बिगड़ चुका है। जीवित माता पिता की सेवा तो कोई भाग्यशाली ही करता है पर मरने के बाद श्राद्ध इत्यादि पर बड़ा खर्च किया जाता है।

माता-पिता के जीते जी सेवा न कुछ भी बन पड़ी।
जब मर गये तो श्राद्ध या तर्पण किया तो क्या हुआ?
जीते मात पिता से डंडम डंडा।
मोये पितर पहुंचावे गङ्गा ।।

जीवित काल में सेवा करने में शरीर को जरा कष्ट होता है और यह मार्ग, उपनिषद् के अनुसार, कठिन ही है। इसलिए तप के महत्व को न समझ कर इसकी अवहेलना की जा रही है। परिणामस्वरूप, रोगों का नाश नहीं हो रहा है।

❀❀

२७

वाचिक तप

गीता अध्याय १७ श्लोक १५ में इस तप का वर्णन इस प्रकार है:—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियं हितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ।।

भावार्थ—चिढ़न पैदा न करने वाला, मीठा, हितकारी और यथार्थ बोलना और वेद-शास्त्रों का पढ़ना तथा भगवान् के नाम के जपने का अभ्यास—यह वाणी का तप है।

सबसे पहला तप है, चिढ़न न पैदा करने वाले शब्द बोलना। यह कहना जितना सहज है, करना उतना सहज नहीं है। यह एक ऐसा घोड़ा है जिसकी लगाम काबू में रखनी अति कठिन है। कोई शाह सवार ही होते हैं जो इसे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वश में रख पाते हैं।

वही शाह सवारों में पाता है नाम।
जो काबू में घोड़े की रखे लगाम॥

वाणी कब और क्यों काबू से बाहर हो जाती है और दूसरे को चिढ़ाने वा जोश दिलाने वाले शब्द कब बोलती है—जब हम पर ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान, क्रोध इत्यादि का हमला होता है। सहन शक्ति की न्यूनता के कारण वाणी वश में नहीं रहती। फिर, पता नहीं चलता, कि वाणी से ऐसे शब्द निकल जाते हैं, बाद में जिनके लिए पछताना पड़ता है।

न गुस्से में इन्सां रहे दूर बीन।
कि कहते हैं कि गुस्से को आँखें नहीं॥

सुनने वाले को जोश व चिढ़न तब आती है जब उसका दोष-दर्शन किया जाए, आलोचना की जाए व ताना मारा जाए, विष भरे तीर छोड़े जाएँ, जो सुनने वाले के हृदय को छलनी कर दें, अभिमान के वश होकर अहंकार के शब्द प्रयुक्त किये जाएं। इस प्रकार के और कई कारण हो सकते हैं। जो मनुष्य गीता के आधार पर वाणी का तप करने का इच्छुक है, उसे इन सब कारणों से सावधान रहने की आवश्यकता है। यह वाणी के प्रयोग का ही परिणाम है कि आप किसी दूसरे को मित्र बना लें, या शत्रु।

शीतल शब्द उचारिये, अहं आनिए नांहीं।
तेरा प्रीतम तुझ हो मे, दुश्मन भी तुझ मांहीं॥

इन दोषों से वाणी को बचाने का ढंग यही है कि बोलने में कंजूसी से काम लिया जाए। वही शब्द बोला जाए जिसके बोले बिना गुजारा न हो, व्यर्थ वाणी की शक्ति को नष्ट न किया जाए। जितना बोला जाए, उसे पहले तौल लिया जाए कि "मेरे मुँह से निकली बात सुनने वाले पर आग का काम तो नहीं करेगी।" अगर कहीं नाराजगी प्रकट करनी हो भी, तो ऐसे सुन्दर शब्दों में हो कि सुनने वाले का सुधार हो सके, न कि बिगाड़ पैदा हो। वाणी में शिष्टता होगी तो सुनने वाले को कितने कड़े शब्द भी सुनने को मिलें, जोश नहीं पैदा करेंगे। शिष्टता एक आभूषण है। एक कवि ने गरीब-अमीर, दोनों के लिए, इस प्रकार कहा है:—

गरीबों की दौलत है शाइस्तगी।
अमीरों की जीनत है शाइस्तगी॥

इससे आगे है, मीठा और हितकारी वचन बोलना। पहले निषेध रूप

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में समझाया गया कि जोश न पैदा करने वाले शब्द बोले जाएं। अब विधेयात्मक रूप से बताया गया कि मीठे और हितकारी शब्द हों। ऐसे शब्दों से, निश्चय ही, जोश पैदा हो ही नहीं सकता। समझाने का यह दूसरा ढंग है। घर में, आम बोलचाल में, देखा जाता है कि जिनकी वाणी बिगड़ी हुई हो, और इस तप से अपरिचित हों, ऐसे माता पिता अपने बच्चों को, गल्ती हो जाने पर एकदम "तेरा बेड़ा गर्क हो" "तुम मरते भी नहीं" "तुम बदकिस्मत हो" इत्यादि कड़े शब्दों का प्रयोग करते हैं। जो शिष्ट और गम्भीर व्यक्ति हैं, वे क्रोध प्रकट करते हुए भी कहते हैं "तेरा बेड़ा तेरे", "मेरे भाग्यशाली बेटे, भगवान् तुम्हें लम्बी आयु दे" "आइन्दा ऐसी शरारत न किया करो।" पाठक स्वयं अनुमान करें कि बच्चे पर कौन-सी वाणी का प्रभाव उसके हित के लिए होगा। ऐसा जानते हुए भी लोग वही कुछ करते हैं, जो नहीं करना चाहिए क्योंकि वे वाणी के तप से अपरिचित हैं।

गाँधी जी के जीवन की यह घटना है। गाँधी जी ने एक बार अपने पिता की जेब से कुछ रकम चुरा कर सिगरेट पी लिया था। घर में जब इस चोरी की चर्चा चली, तब गाँधी जी पर तो किसी को सन्देह ही न था, पर इस चर्चा को सुनने पर, वे मन ही मन बड़े शर्मिन्दा हुए। पश्चात्ताप के रूप में, अपना अपराध मान कर, एक कागज पर लिखकर अपने बीमार पिता के हाथ में वह कागज दे दिया। पिता ने पढ़कर एक भी अपशब्द गाँधी जी को नहीं कहा। पर, वे कागज पढ़ते गये और आँखों से आंसुओं की धारा बहती गयी। इसे देख गाँधी जी की आँखों से भी आँसू टप-टप कर गिरने लगे। गाँधी जी लिखते हैं कि पिता जी के आंसुओं ने मुझ पर वह प्रभाव डाला कि मेरे हृदय की कालिमा धुल गयी और मेरा सदा के लिए सुधार हो गया। यह भी एक प्रकार की वाणी थी जिसका प्रयोग गाँधी जी के पिता ने किया था। अगर वे गाँधीजी को लाख अनाप-शनाप कह देते, और कुछ दंड भी दे देते तो क्या गाँधी जी के जीवन की काया इस प्रकार पलट सकती थी? फलतः, हमें वाणी के तप का ध्यान रखते हुए घर में, बोलचाल के समय, जरा सावधान रहने की आवश्यकता है। माता पिता की वाणी का ही प्रभाव बच्चों पर पड़ेगा।

तप के सम्बन्ध में तीसरी बात है, यथार्थ वचन बोलना। इसका अभिप्राय है कि मन और इन्द्रियों ने जैसा अनुभव किया हो, ठीक वैसा ही कहने का नाम यथार्थ भाषण है। जो मन में हो, वही वाणी में प्रकट हो। हेरा फेरी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का जीवन न हो। आज तो उसी आदमी को होशियार व कामयाब समझा जाता है जो हेर फेर की बात पूरे तौर पर कर सके, जो अपने मन की बात दूसरे को पता न लगने दे।

मन में राखे और कछु, वाणी पर कछु और।
कर्मों से कछु और करें, तीनों झूठे ठौर।।

ऐसे बनावटी जीवन वाले वाणी के तप को क्या जानें? आम लोग अपनी प्रशंसा और दूसरों के दोष वर्णन में वास्तविकता से दूर जाकर यथार्थ शब्दों का प्रयोग नहीं करते। फिर, अपने आपको झूठा कहलाना भी पसन्द नहीं करते, क्योंकि किसी बात को बढ़ा-घटा कर कहने को वे झूठ समझते ही नहीं।

अगर अपनी तारीफ में बोलिए।
तो मीजाने इन्साफ में तोलिए।।

❀❀

२८

मानसिक तप

गीता अध्याय १७ श्लोक १६ में इस प्रकार लिखा है :—

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौन मात्म विनिग्रहः।
भाव संशुद्धि रित्येतत् तपो मानस मुच्यते।।

मन की प्रसन्नता, शान्त भाव, भगवान् का चिन्तन करना, मन को संयम में रखना, अन्तःकरण की पवित्रता—ये मन सम्बन्धी तप हैं। सबसे पहले है, मन की प्रसन्नता, अर्थात् मन को प्रसन्न रखना भी तप का एक अंग है। मन तभी प्रसन्न रह सकता है, जब इसका सन्तुलन न बिगड़े। सन्तुलन को बिगाड़ने के लिए संसार की ठंडी व गर्म हवाएं, हमेशा चलती ही रहती हैं। इसका मतलब है, प्रसन्नता हर क्षण कसौटी पर चढ़ती रहती है। दूसरे शब्दों में, द्वन्द्व सताते ही रहते हैं। द्वन्द्व अनगिनत हैं। हर्ष-शोक, सुख-दुःख, लाभ-हानि, राग-द्वेष, समृद्धि-निर्धनता, स्वास्थ्य-रोग इत्यादि। इनमें से कोई एक जोड़ी भी सन्तुलन को बिगाड़ने के लिए पर्याप्त है। इसलिए गीता में "द्वन्द्वातीत" होने की प्रेरणा की गयी है। इसका मतलब, एक अंग्रेज विद्वान् के शब्दों में :—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

There should be no effect of the circumstances upon the mind.

अर्थात्, मन पर बाहर की परिस्थितियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। इसके सम्बन्ध में गाँधी जी लिखते हैं :—

It is easy to be said than to be done.

यह बात कहनी जितनी सहज है करनी उतनी सहज नहीं है। करने के लिए प्रयत्न करना ही तो तप है। इस सम्बन्ध में आज का मानव सो रहा है, क्योंकि वह शरीर तक ही अपने आपको सीमित समझता है। पर जीवन के आनन्द का सम्बन्ध शरीर से कहीं अधिक मन के साथ है। इस बात को भूला हुआ मनुष्य केवल शरीर के पालन पोषण में दिन रात लगा रहता है। किसी तरह पेट की आग बुझ जाए, केवल इतना ही ध्यान है और मन द्वन्द्वों के चक्कर में फंसा हुआ है। मन और शरीर के बीच सन्तुलन स्थापित करना किसी अद्वितीय पुरुष का ही काम है।

जो फितरत ने तुझको बनाया है मर्द।
खुशी से जहाँ के उठा गर्म-सर्द॥

धन की प्राप्ति यदि पर्याप्त मात्रा में हो गयी, तो एकदम सर अकड़ गया। अगर कमाई में से होकर गरीबी का चक्र आ गया तो निराशा और चिन्ता के डेरे लग गये। ऐसे बिचारे लोग मन की प्रसन्नता के तप को क्या जानें? चाहिए तो यह था :—

अमीरो के दम से न मगरूर हो।
गरीबी के गम से न रंजूर हो॥

तृष्णा की आग ज्यों-ज्यों बढ़ेगी, मन को प्रसन्न रखने के बदले उसे बेचैन रखेगी। मन प्रसन्न रहे व चिन्तित, इससे कोई मतलब नहीं, किसी भी कीमत पर धन आना जरूरी है। यह है गल्त तरीका मन को प्रसन्न रखने का। जीवन निर्वाह के धन्धे से मन को प्रसन्न रखने का, किसी सीमा तक, सम्बन्ध तो है, जिसके लिए पंजाबी में एक कहावत है :—

पेट न पइयाँ रोटियाँ।
ते सब्भे गल्लाँ खोटियाँ॥

मगर केवल धंधा खूब चलना ही तो काफी नहीं। धन ज्यादा हो जाए, या किसी देश का राज्य भी मिल जाए, तब भी मन की प्रसन्नता के लिए यह कोई जमानत नहीं है। एक अंग्रेजी कहावत के अनुसार, जिन सिरों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पर ताज रखे जाते हैं, वे आम तौर पर, बेआराम ही रहते हैं। राज्य सिंहासन प्राप्त करना भी कोई शान्ति का साधन नहीं है। विश्व के सर्वोच्च समृद्ध व्यक्तियों में गिना जाना एक बात है और मन की प्रसन्नता प्राप्त करना, इससे सर्वथा भिन्न दूसरी बात है। यह ठीक है कि परीक्षा बड़ी कड़ी होती है और इसमें सबका पास हो जाना कभी संभव ही नहीं होता। पर गीता के अनुसार, कम से कम, मन को प्रसन्न रखना, यह हमारा ध्येय तो होना चाहिए। इस दिशा में जीवन में जो रुकावटें आएँ, उन्हें दूर करने का प्रयत्न करते चले जाएँ। यह तभी होगा जब मानव जागरूक रहेगा। जागने का मतलब है—अपने मन को सदा सन्तुलित रखना। यह शोक से भी बिगड़ता है और हर्ष से भी।

हवादस में दिल का तजज़न न भूल।
गमों से न मुरझा, खुशी से न फूल॥

जिस दिन ऐसी स्थिति आजएगी, तब मन को प्रसन्न रखने में हम सफल हो जाएँगे।

इसके बाद मन को शान्त रखना और भगवान् का चिन्तन भी मन का तप है। यह दोनों गुण एक ही हैं। मन को शान्त रखने का ढंग, भगवान् का चिन्तन है, अन्यथा मन कभी शान्त रह ही नहीं सकता। तप का प्रत्येक भाग दूसरे से सम्बद्ध है। इसीलिए, मन प्रसन्न होगा तो शान्त भी होगा, शान्त होगा तो प्रसन्नता भी प्राप्त होगी। भगवान् का चिन्तन दोनों स्थितियों के लिए अनिवार्य है। वस्तुतः, भगवान् के नाम का धन ही ऐसा है जिसे इकट्ठा करने से सांसारिक ऐश्वर्य न होते हुए भी प्रसन्नता और शान्ति रह सकती है। पर यह ऐसी बात है जो आप लोगों की समझ में आती ही नहीं। यह कोई नयी बात मैं नहीं कर रहा। कबीर के शब्दों में:—

कबीरा सब जग निर्धना, धनवन्ता नहीं कोय।
धन वन्ता सो जानिए, प्रभु नाम धन होय॥

प्रभु के नाम का धन कमाना साँसारिक धन कमाने की तुलना में कहीं ज्यादा कठिन है और मेहनत का काम है। पर चित्त की वृत्ति इधर जाती ही नहीं। इसलिए असली धन के सम्बन्ध में संसार कंगाल होता जा रहा है। कबीर ने ठीक ही कहा है :—

कबीरा निर्धन कोय नहीं, सबकी गठरी लाल।
गांठ खोलन जाने नहीं, ता विध भये कंगाल॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आज भगवान् के नाम का चिन्तन करने वाले को दकियानूसी कहा जाता है।

यारों ने रपट लिखाई जाके थाने में।
कि अकबर नाम लेता है, खुदा का इस जमाने में॥

गीता में इसके बाद बताया गया है, मन पर संयम। यह भी तप है। मन शान्त न होने से संयम कैसे आयगा? मन को संयम में करना यदि सहज होता तो कृष्ण भगवान् इसे तप क्यों कहते? और अर्जुन यह प्रश्न क्यों करता कि इसे संयम में करना, वायु को काबू करने की तरह दुष्कर है, पर असम्भव नहीं है। गीता में कहा गया है कि वैराग्य और अभ्यास से इस पर संयम हो सकता है।

उल्टी हो चाल चलते हैं, आवारगाने इश्क।
आंखों को बन्द करते हैं दीदार के लिए॥

अभ्यास करना भी सहज नहीं है। बच्चे की जब पढ़ाई शुरू होती है, तब वह बाहर खेलने की आजादी को रुकता देख घबराता है। स्कूल से भाग आता है। वही बच्चा जब एम० ए० में पहुँचता है तब किसी के कहने की जरूरत नहीं रहती कि वह पढ़े। फिर उसे अपने आप कालेज जाने में प्रसन्नता होती है। क्या हम मन को—जो सूक्ष्म तत्व है—पहले ही दिन एम० ए० की कक्षा में बैठा देना चाहते हैं? इसके लिए तो घोर तप की आवश्यकता है और धीरे-धीरे चलने की आवश्यकता है, तब कहीं लक्ष्य की प्राप्ति होगी।

जो मंजिल पै जाना हो बेइख्तलाल।
तो धीमी ही रख अपने घोड़े की चाल॥

❀❀

२९

(४) स्वाध्याय

स्वाध्याय शब्द के दो अर्थ माने जाते हैं। सु+अध्याय, अच्छी पुस्तकों अर्थात्, वेद शास्त्र आदि का अध्ययन। दूसरा स्व+अध्याय, अर्थात्,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अपने जीवन का अध्ययन। दोनों ही रोग के नाशक हैं। इसलिए दोनों पर अलग अलग विचार करना होगा। पहला, पुस्तकों का पढ़ना। जितने भी महापुरुष हुए हैं, उनके जीवन के ऊँचे लक्ष्य स्वाध्याय पर ही आधारित थे। स्वाध्याय एक ऐसा साधन है जिसकी सहायता से आप ऐसे व्यक्तियों से सम्पर्क कर सकते हैं जो आपके युग में नहीं हुए अथवा आपके युग में तो हैं पर उन तक आपकी पहुँच नहीं। स्वाध्याय केवल यहाँ तक ही सीमित नहीं है कि पुस्तकों को पढ़ लेना किन्तु अनपढ़ व्यक्ति भी स्वाध्याय कर सकते हैं, वह है सत्संग में शामिल होकर, दूसरों से सुन-सुन कर। इसी लिए स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज के १० नियमों में एक नियम रखा है "वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।" पढ़ना-पढ़ना और सुनना-सुनाना—यह दोनों स्वाध्याय की परिभाषा में शामिल हैं। स्वाध्याय की ओर प्रवृत्ति होना आवश्यक है। श्री रामकृष्ण परमहंस, हजरत मुहम्मद, गुरु नानक इत्यादि बहुत पढ़े-लिखे नहीं थे। इनमें से किसी ने किसी कालेज की डिग्री हासिल नहीं की थी। इसके बावजूद ये महापुरुष स्वाध्याय शील थे। स्वाध्याय से मनुष्य अनुभवी बनता है। घर बैठे अन्य देशों की सैर कर लेना स्वाध्याय की कृपा से ही हो सकता है। कहा है :—

घर बैठे सैर मुल्क की करना।
यह तमाशा किताब में देखा॥

एक अंग्रेज विद्वान् ने कहा है कि "आप एक मनुष्य के आचार का अनुमान उसके पुस्तकालय से कर सकते हैं।" आजकल इसका शौक बिगड़ गया है। इसकी जाँच करनी हो तो आप किसी भी रेलवे-बुक स्टाल को देख कर जान सकते हैं। अपनी यात्रा को सुगमता से काटने के लिए इन स्टालों से लोग पुस्तकें आम तौर पर खरीदते हैं। वहाँ आपको क्या मिलेगा—जासूसी उपन्यास, सिनेमा की कहानियाँ, औरतों की तस्वीरों की पुस्तकें इत्यादि। अगर कोई विदेशी भारत के स्वाध्याय के स्तर का अनुमान इन बुक स्टालों से लगाये, तो वह क्या समझेगा ? आपको कहीं गीता नहीं मिलेगी, उपनिषद् या वेदों के अनुवाद नहीं मिलेंगे, रामायण-महाभारत नहीं मिलेंगे। ऐसा क्यों है ? इसीलिए कि पढ़ने की रुचि बिगड़ी हुई है। जब इन धार्मिक पुस्तकों को कोई लेना ही नहीं चाहता, तो स्टाल वाले क्यों रखेंगे ? वे तो आम लोगों की पसन्द की चीजें ही रखेंगे। ऐसे ही आज हमारे पुस्तकालय हैं। यह भी देखा गया है कि कुछ लोगों को अच्छी पुस्तकें खरीदने और इकट्ठा करने का शौक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तो होता है पर पढ़ने का एकदम नहीं। पुस्तकालय से धार्मिक पुस्तक ले भी आएँ, तो एक-दो मास रख कर बिना पढ़े ही वापस कर देते हैं। कह देते हैं कि "साहब कब पढ़ें, फुरसत ही नहीं मिलती।" कुछ लोग अखबारों में केवल कहानी पढ़ने के शौकीन होते हैं, बाकी से कुछ मतलब ही नहीं।

आज स्वाध्याय बुद्धि के पेंच खोलने की भावना से नहीं किया जाता, जहाँ जरा कठिन प्रसंग आया, वहाँ उस विषय को ही छोड़ देते हैं। यदि आज का मानव स्वाध्याय की दिशा में अपने को चलाए तो यह एक ही कला जीवन में पलटा लाने के लिए पर्याप्त है।

अब स्वाध्याय के दूसरे अर्थ पर विचार करते हैं, अर्थात्, अपना अध्ययन करना। इस स्वाध्याय में लिखना पढ़ना या अनपढ़ होना कोई रुकावट पैदा नहीं करता। इसमें सिर्फ अपने जीवन की पुस्तक पढ़ना है। मैं किधर जा रहा हूँ, मेरा मुँह सीधा है या नहीं, कहीं मैं अपने अन्तिम लक्ष्य से विपरीत तो नहीं जा रहा हूँ—इत्यादि अपने सम्बन्ध में ऐसे प्रश्न करना ही अपने जीवन का अध्ययन करना है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामायण में मनुष्य को तीन श्रेणियों में बांटा है (१) विषयी (२) साधक और (३) सिद्ध। विषयी वे हैं जो माँस, शराब और व्यभिचार के आदी है। पर एक व्यक्ति ने इसे विचित्र ढंग से बताया है। विषयी वह है जो बाह्य पदार्थ में रुचि लगाये हुए हैं। धर्म मन्दिरों में वह जाता है पर उसे यह समझ नहीं कि वहाँ वह क्यों जाता है? अगर वह समझ ले कि पवित्र धर्म मन्दिर में वह इसलिए जाता है ताकि बुरे कर्म न करे। वहाँ जाकर भी यदि वह टेढ़ा मार्ग नहीं छोड़ता, तो इसका मतलब है कि जो कुछ कर रहा है, बिना समझे ही कर रहा है। वह बाह्य दिखावे के भ्रम में फंसा हुआ है। ऐसे ही व्यक्ति को विषयी कहा गया है। जिसका कर्म बिना ज्ञान के है, वह विषयी है, (२) साधक वह है जो समझ तो ठीक रहा है पर ठीक मार्ग पर चलने से लापरवाह है। अर्थात्, ज्ञान बिना कर्म के। यह दोनों प्रकार के जीवन अधूरेपन को दर्शाते हैं।

तीसरा प्रकार सिद्ध पुरुषों का है। इसका अभिप्राय है, ठीक समझने वाला। जो मनुष्य अपने जीवन की पड़ताल करता है, उसे भली प्रकार पता चल जाएगा कि जो व्यवहार वह अपने साथ कराया चाहता है, वह स्वयं दूसरों से नहीं करता। तब पता लगेगा कि ठीक समझने और ठीक करने में अन्तर है। बस, इस भेद व अन्तर को निकालना है। यह तभी होगा जब अपने जीवन का सुधार करने की आदत पड़ेगी। इसके लिए सबसे उत्तम

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समय है, रात को सोने से पहले अपनी जीवन की पुस्तक के पन्नों को पलट कर उनकी पड़ताल करना। दिन भर का किया हुआ इस समय अपने सामने रहता है। अगर रात को सोते समय जीवन की रोकड़ को मिला लिया जाए तो कमी बेशीका तत्काल ज्ञान होता रहेगा। फिर ठीक समझ कर, ठीक करने की कोशिश लगातार होती रही तो रोग अपने आप नष्ट होते चले जाएँगे। लक्ष्य की ओर मुंह सीधा करने वाले के पग चाहे कितने भी धीमे क्यों न हों कभी न कभी अपने लक्ष्य पर पहुँच ही जाते हैं। पर यहाँ उलटा चक्र है। दूसरों का मुंह सीधा करने की कोशिश की जाती है। यह उलटी चाल है, यह प्रवृत्ति स्व+अध्याय नहीं करने देती। दानिश कहता है :—

पहले दानिश आदमी इसलाह खुद अपनी करे ।।
और फिर बताये और लोगों को, सलाह व मशवरे ।।

जो स्वयं अंधा है वह दूसरों को क्या रास्ता दिखलाएगा? आज यह तमाशा हो रहा है कि मनुष्य उपदेश करना जानता है, मगर एक फारसी कवि के शब्दों में "उपदेशक और वक्ता जो मंच पर खूब गर्ज कर अपने जलवे दिखाते हैं, जब वे तनाही में चले जाते हैं, तो फिर वे अपने कहने के विरुद्ध दूसरे काम करते हैं।" इसलिए जरूरी है कि, अवकाश के क्षणों में अपने जीवन को टटोलकर देखने की कोशिश की जाए। कम से कम ऐसा जीवन तो न हो कि मनुष्य अपनी दृष्टि में ही गिरा हुआ मालूम हो।

नजर से जो अपनी ही गिर जाएगा।
जमाने का रुख उससे ही फिर जाएगा।।
तेरा दिल जो करता है इज्जत तेरी।
तो मुमकिन नहीं, फिर हो जिल्लत तेरी।।

यह सब स्वाध्याय की कृपा से होगा। जीवन की परीक्षा और फिर उसमें सुधार—समस्त रोगों के नाश का मार्ग है—

न माल व मनाल व महासल में है।
मेरी बादशाही मेरे दिल में है।।

स्वाध्याय का तीसरा अर्थ ओंकार जाप है। इस जाप से मनुष्य के हृदय में अतुल बल की प्राप्ति होती है और मन की चंचलता दूर होती है।

❀❀

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३०

(५) ईश्वर प्रणिधान

इसका शब्दार्थ है "प्रभु आश्रित जीवन व्यतीत करना।" आज के युग में जब कि नास्तिकता का दौर जोरों पर है, ईश्वर को विश्वास के रूप में मानने वालों की कमी नहीं। ईश्वर की पूजा अनेक ढंगों से हो रही है, पर "प्रभु आश्रित" जीवन बिताने वाला करोड़ों में से कोई एक मिलेगा। यही कारण है कि मानव चाहता हुआ भी कि उसका शरीर रोग रहित हो, मन में चिन्ताएँ न हों और बुद्धि में भय न हो—अपने अनुभव में ऐसा नहीं देख रहा। प्रभु आश्रित जीवन और शरीर-मन-बुद्धि में विकार होना—इन दोनों का आपस में मेल नहीं है। आखिर, खोज करनी पड़ेगी कि भूल कहाँ पर है? दो और दो तो हमेशा चार ही होने चाहिएं, अथवा हाईड्रोजन और आक्सिजन को मिलाकर पानी जरूर बनना चाहिए। इसलिए, प्रभु को मानने वाले और दिन-रात माला फेरने वाले, मस्जिद-मन्दिर-गुरुद्वारों में जाने वाले व अन्यत्र पूजा-पाठ करने वाले—अगर अपने शरीर में रोग और मन में चिन्ता अनुभव करते हैं, तो कहीं न कहीं भूल जरूर है। इसकी खोज ही ईश्वर प्रणिधान के वास्तविक रूप को समझना है। आजका मानव पैर से धर्म मन्दिरों में जाता है, हाथ से माला फेरता व यज्ञ-हवन में आहुति डालता है, वाणी से अपने इष्ट देवता का जाप करता है, पर मन और बुद्धि—कोई भी उसके साथ जुड़े हुए नहीं हैं।

मस्जिद में जा कर जाहिदां, सजदा करे हैं दम-ब-दम ।।
मन तो झुकता ही नहीं, गर सर झुका तो क्या हुआ ।।

मानव यह विचार नहीं करता कि मैं जाप क्यों कर रहा हूँ, माला क्यों फेर रहा हूँ? प्रतिदिन सोचता है कि ऐसा करते-करते चिरकाल हो गया, पर, पंजाबी के एक कवि के शब्दों में हालत वही रही :—

राम नाम जपदयां जिह्वा घस गई ।
अन्दर राम न घसया केह धाड़ पई ।।

जब भी कोई दुःख आक्रमण करता है—शारीरिक हो व मानसिक आधिभौतिक हो व आधिदैविक—एकदम भगवान् याद आता है। भगवान् के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नियमों का उल्लंघन करके भी उससे छुटकारा हासिल करना चाहता है। फिर भी, अपने आपको प्रभु का भक्त ही समझे चला जाता है। ध्यान से सोचने पर पता लगेगा कि दिमाग में कोई पेंच ढीला है। वस्तुतः, ऐसा व्यक्ति भगवान् को अभी तक समझ ही नहीं सका। सबसे जरूरी बात यह समझने की कोशिश करे कि भगवान् क्या है और वह है भी कि नहीं। अगर है तो जैसा मैं उसे मानता हूँ, ऐसा ही है, या कहीं भूल है। समझने के बाद पूजा-पाठ के बाहर के आचरण—माला फेरना, यज्ञ-हवन करना, सिजदा करना इत्यादि—यह तो गौण बातें हैं। आश्चर्य की बात तो यही है कि ठीक ढंग से समझे बगैर यह सब कुछ किया जा रहा है। इसके परिणाम ठीक नहीं निकलते। चोर चोरी के लिए निकलता है, तो वह भी अपने भगवान् का स्मरण करके ही बाहर आता है, अपने इष्ट देव की मनौती मानता है। सफल हो जाने पर चोरी किये हुए माल में से उस मनौती को पूरा भी करता है। वह समझता है कि भगवान् उस पर खुश हो गया है। चोर के सम्बन्ध में पढ़ कर तो आजका मानव जरूर यह कह उठेगा कि वह चोर गल्त कर रहा था। प्रभु ऐसे कामों में सहायता नहीं देता। उसी समय एक दूसरा व्यक्ति जब अपने धर्म स्थान से होकर दूकान पर पहुँचता है, तब झूठ बोलने व कम तोलने मापने में तनिक भी संकोच नहीं करता। जब नौकरी पर गया, तब कुर्सी पर बैठते ही, अपनी ताकत के अनुसार, जो भी अनुचित साधनों से मिलता है—आम भाषा में जिसे रिश्वत व घूसखोरी कहा जाता है—लेने से परहेज नहीं करता। शाम को फिर अपने धर्म मन्दिर में जाकर अपने प्रभु को रिझाने का यत्न करता है। ऐसे व्यक्ति को चोर की तरह उलटे मार्ग पर चलने वाला नहीं कहा जाएगा। क्यों ? क्योंकि समाज ने इस पद्धति को अपना रखा है। बल इसी बात पर लग रहा है कि धर्म मन्दिर जाने व पूजा-पाठ करने का ही रास्ता ठीक है। हरेक अपने-अपने धर्म मन्दिर की प्रशंसा करता है, "अपनी अपनी डफली, अपना अपना राग।"

अजब तेरा कानून, देखा खुदाया,
जहां दिल दिया, फिर वहीं तुझको पाया।
न यां देखा है, मन्दिर ओ मस्जिद,
फकत यह है कि तालिब, सिदक दिल से आया है।

पर आज वास्तविकता की ओर से आँखें मूंदी हुई है। अन्धाधुन्ध, बिना सोचे समझे, मानव जीवन सड़क पर सरपट मानव भागा जा रहा है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लेते हैं नाम राम का, करते कृष्ण को याद हैं।
कहना न माने एक का, वृथा जन्म गवां रहे हैं।

एक सूफी से जब यह पूछा गया कि "भगवान् का सच्चा भक्त कौन है ?" तो उसने उत्तर दिया—

"वह व्यक्ति जो कभी शिकायत नहीं करता और भगवान् से जो प्राप्त होता है, उसे हँसते-हँसते और प्रसन्नता से स्वीकारता है, चाहे वह सुख हो व दुःख हो।"

मिलें जिसको उसकी, नज़र के सहारे,
उसे क्या तलातम, उसे क्या किनारे।
मुझे क्या डुबोती, कोई मौज-ए तूफां,
न होते जो शामिल, तुम्हारे इशारे।

ईश्वर विश्वासी मानव हर काम में ईश्वर का हाथ देखता है और उसका मन परिस्थितियों का गुलाम नहीं रहता। दुनिया का कोई तूफान उसके मन को कंपा नहीं सकता।

नाखुदा को छोड़कर जिनकी, खुदा पर है निगाह.
हर तरह माफूज किश्ती, उनकी तूफानों में है।

संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिए हम अपनी सन्तानों, सम्बन्धियों, इष्ट मित्रों व धन को मल्लाह समझ रहे हैं पर जब ऐसे मल्लाहों की ओर से दृष्टि हट कर प्रभु की ओर लगेगी, तब जीवन-नौका प्रत्येक प्रकार के तूफान से सुरक्षित हो जाएगी। पढ़ने और सुनने में यह कितनी अच्छी बात है, पर जरूरत है, इसे समझने व मन पर अंकित करने की। इसी की आज कमी है। "जय जगदीश हरे" की आरती बोलते हुए बड़े गद्गद हो जाते हैं—"जो ध्यावे फल पावे, दुःख विनशे मन का। सुख-सम्पत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तन का" पर परिणाम वह नहीं निकल रहा जो आरती के इस पद में दर्शाया गया है, अर्थात् प्रभु का ध्यान करने से न मन का दुःख मिटता है और न सुख-सम्पत्ति आती है। कसौटी यही है कि अगर नाम जपते जपते आयु बीत गयी और वह परिणाम नहीं निकला जिसका संकेत इस आरती में है, तो, या तो यह फार्मूला गल्त है और अगर गल्त है तो उसे प्रतिदिन बोलने-रटने से क्या लाभ ? अगर ठीक है तो परिणाम क्यों गल्त निकल रहा है—यह बुद्धि का विषय है। वही इसका विश्लेषण कर सकती है। खाली प्रतिदिन, रट लेने व बोल लेने से काम चल जाता तो, आज संसार में कोई दुखी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नजर न आता। याद रखिए, ऊपर कहे पद का फार्मूला गल्त नहीं है, सौ फीसदी ठीक है। हम यह जानते हुए भी कि हाइड्रोजन और आक्सीजन के मेल से पानी बनता है, यह नहीं जानते कि इस मेल की प्रत्येक मात्रा कितनी हो और किस ढंग की हो। हम पानी बनाने की कोशिश किये जा रहे हैं, पानी बनता नहीं। तब फार्मूले को ही गल्त समझने लगा जाते हैं। आज नास्तिकता के फैलने का यही कारण है। यही नहीं देखा जाता कि मनुष्य क्या कह रहा है, पढ़ क्या रहा, पर देखा यह जाता है कि उसके कहने और पढ़ने का नतीजा क्या है। जब ईश्वर भक्त और नास्तिक के जीवन में कोई अन्तर नजर नहीं आता, तो यह सब कुछ एक ढोंग-सा दिखाई पड़ता है। यह आस्तिक होते हुए नास्तिक होना है।

खुदा के बन्दों को देख कर ही, खुदा से मुनकर हुई है दुनियाँ।
कि जिस खुदा के हैं ऐसे बन्दे, वह कोई अच्छा खुदा नहीं है॥

ईश्वर प्रणिधान के विश्वासी का यही कर्त्तव्य है :—

बस, अपनी रजा को उसकी रजापर छोड़ दे।
रास्ता खुल जाएगा, कितना ही वह पुर पेज हो॥

❀❀

३१

योग का तीसरा अंग आसन

महर्षि पतंजलि ने आसन को यम और नियम के बाद रखा है। पाँच यम और पाँच नियम की व्याख्या हो चुकी। आसन प्रारम्भ करने का निश्चय करने से पहले यम और नियम का पालन जरूरी है। पर आज व्यक्ति यम नियम की उपेक्षा करके सीधा आसन की ओर प्रवृत्त हो रहा है। इसलिए इस विषय में यहाँ जो कुछ लिखा जायगा उसमें यह तथ्य प्रधान रूप से स्मरण रखना होगा कि यम और नियम का पालन करने से इन आसनों द्वारा यथोचित लाभ उठाया जा सकता है। यह एक विशेष नुक्ता है जिसकी ओर पाठकों का ध्यान खींचना आवश्यक है। आसनों के सम्बन्ध में हम कुछ विस्तार से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लिखेंगे। (१) आसन से क्या अभिप्रेत है ? (२) आसन करने क्यों जरूरी हैं ? (३) आसन कब करने और कब नहीं करने चाहिएं। (४) किस जगह करने चाहिएं (५) आसन करते समय पोशाक क्या हो ? (६) आसन करते समय मन की क्या अवस्था हो ? (७) आसन के साथ हमारे भोजन का क्या सम्बन्ध है ?

(१) आसन का क्या अभिप्राय है ? आसन का शब्दार्थ है, बैठना। पर जिस अर्थ में अष्टांग योग में इसका प्रयोग हुआ है, इससे अभिप्राय है, बैठ कर खड़े होकर अथवा लेट कर शरीर की स्थितियाँ बदलना, अथवा शरीर को खास-खास ढंग से हिलाना-डुलाना। इसके साथ सम्बद्ध कुछ बन्ध हैं, कुछ क्रियाएँ है और कुछ मुद्राएँ हैं। इनकी व्याख्या यथास्थान की जाएगी। यह विषय गूढ़ और यह समझा जाता है कि ये आसन और क्रियाएँ केवल साधु संन्यासी लोगों के लिए हैं। वस्तुतः, ये आसन, प्रायः, गृहस्थियों के लिए भी उतने ही लाभप्रद हैं जितने साधु संन्यासियों के लिए। यह समझना भूल है कि ये आसन केवल हिन्दुओं के हिस्से में आये हैं, मुसलमान—ईसाइयों के लिए नहीं हैं। वस्तुतः, महर्षि पतंजलि की अष्टांग योग माला—जो अनमोल मोतियों से गूँथी हुई है—विश्व के लिए सार्वभौम कार्यक्रम के रूप में है। इसमें देश, जाति, सम्प्रादाय, धर्म की किसी प्रकार की बाधा नहीं है। इसे मानव मात्र तक पहुँचाना आवश्यक है। सारा संसार दुःख से संतप्त है। महर्षि पतंजलि का अष्टांग योग ही एक मात्र सुख का स्रोत है। जहाँ से समूचे विश्व को शान्ति मिल सकती है। आसन इसी माला का एक मनका है।

(२) आसन क्यों जरूरी है ? हमारा शरीर पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि, आकाश, इन पंचतत्वों से बना है। हम जो कुछ खाते-पीते हैं वह भी इन पंच महाभूतों के अतिरिक्त कुछ नहीं है। प्रकृति का ऐसा नियम है कि हम जो कुछ खाते-पीते हैं इनमें से हमारे शरीर के लिए जो अंग्रेजी में 'एस्सिमिलेशन' कहते हैं और जो भीतर रहने योग्य नहीं होता है, उसे विदेशी अंश (फौरन मैटर) कहते हैं। इन अंशों को शरीर की शक्ति भिन्न-भिन्न उपायों से बाहर निकाल देती है अँग्रेजीमें इसे 'एलिमिलेशन' कहा जाताहै। ग्रहण औरत्याग का यह चक्र यदि ठीक चलता रहे, तो स्वास्थ्य का सन्तुलन ठीक रहता है। हम "त्याग" को द्वारों पर अपनी भूलों से रोक लगा लेते हैं। यह द्वार चार हैं (१) मुख और नासिका, थूक व बलगम निकालने वाले (२ और ३) दोनों द्वार मल-मूत्र त्याग के और (४) है, शरीर के रोमकूप जिसके द्वारा पसीने के रूप में शरीर का मल बाहर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

निकलता रहता है। अपनी असावधानता के कारण इन में से किसी में भी जब हम रुकावट पैदा करते हैं—जो हमारे गल्त खानपान से ही हो सकती है, अथवा कई ऐसे कारण भी हैं जो हमारी शक्ति से बाहर के हैं जैसे सड़क पर पड़े मैले वा धूंए से नासिका में आ रहीं दुर्गन्ध, अथवा मिलावटी व बनावटी खाद्य पदार्थों का सेवन, जिसे आजकल रोकना हमारी शक्ति से बाहर है, ऐसे पदार्थों का सेवन अप्राकृतिक कहा जा सकता है। इन अवस्थाओं में सावधान रहने के बावजूद आपके त्याग का कोई-न-कोई द्वार ठीक तौर पर काम करने से रह ही जाएगा। यह विदेशी तत्व शरीर से न निकलने के कारण, भीतर रहकर, शरीर को अवश्य हानि पहुँचाता है। इसलिए प्रकृति माता जो भीतर की सारी व्यवस्था कर रही है—इस विदेशी अंश को किसी असाधारण मार्ग से बाहर निकाल देगी, चाहे ज़ुकाम हो, चाहे बुखार और फुंसी-फोड़े इत्यादि। इसे ही हम बीमारी कहते हैं। वस्तुतः, ऐसी बीमारी के लक्षण हमारे लिए लाभदायक होते हैं। हम इस पृष्ठ भूमि को न समझते हुए घबरा उठते हैं और अपने आपको डाक्टरों की ओर प्रवृत्त करने लगते हैं। शरीर के तीव्र रोग डाक्टरों की ओर से पैदा नहीं होते, किन्तु हमारी बद-परहेजी, लापरवाही, असावधानता अथवा मजबूरी की वजह से जब हम गल्त चीजों को खुराक के रूप में भीतर ले जाते हैं। हम अपनी इन भूलों को ठीक करने के बदले डाक्टरों की शरण लेते हैं, उनकी दवाइयों वा टीकों का प्रयोग करते हैं। दूसरे शब्दों में, हम अपनी भूलों के लिए प्रायश्चित्त करने को तैयार नहीं होते। एक ओर गल्ती करने की प्रवृत्ति तो बनाये रखना चाहते हैं पर दूसरी ओर उन्हें दवाओं के जोर से ठीक करना चाहते हैं। दवाइयाँ स्वयं विजातीय द्रव्य हैं और विदेशी अंश हैं—भला ये ठीक क्या कर सकेंगी? विदेशी अंश को अन्दर दबा देंगी और उसमें वृद्धि कर उस तीव्र रोग को "जीर्ण रोग" व मन्द रोग का रूप दे देंगी। दवाइयाँ तीव्र रोग के लिए तो जिम्मेदार नहीं हैं किन्तु जीर्ण रोग, क्षय रोग, कैंसर इत्यादि को जन्म देने और बीमारी को अन्दर से पैदा करने वाली ये दवाइयाँ ही हैं। यह सत्य आमव्यक्ति की समझ में नहीं आता। इसी का परिणाम है कि ज्यों-ज्यों दवाइयां बढ़ रही हैं, त्यों-त्यों बीमारियाँ भी बढ़ती जाती हैं। बीमारी और दवाई में एक दौड़-सी लग रही हैं पर बीमारी दवाई को अपना पकड़ नहीं दे रही। इसका नतीजा है कि आज बड़े-बड़े अस्पतालों से बहुत सारे रोगियों को चिकित्सा अयोग्य समझ खारिज कर दिया जाता है। अमेरिका में राष्ट्रपति के बाद दूसरे स्तर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के सर्वोच्च व्यक्ति डलेस को भी कैंसर के रोग के इलाज के लिए अपने पद से मुक्त हो अस्पताल में रहना पड़ा। यहाँ से बढ़कर अनुकूल परिस्थितियाँ और इलाज किसे मिल सकते थे ? पर ये सब व्यर्थ सिद्ध हुए और उसे मौत से बचा नहीं सके। आम आदमी के बारे में तो भला कहना ही क्या ? यह स्थिति देखते हुए भी मानव रोग के कारण की ओर ध्यान नहीं देता, बदपरहेजी को परहेज से जीतने की कोशिश नहीं करता।

तबीबों के नुस्खों में रखा है क्या,
कि परहेज है सब से बेहतर दवा॥

इस विदेशी और अनावश्यक अंश को दवाइयों और अप्राकृतिक साधनों से दबाने की कोशिश न करते हुए प्राकृतिक ढंग से बाहर निकालने के लिए आसन और प्राणायाम की विधि ही सर्वोत्तम उपाय है।

❀❀

३२

आसन (२)

मैं तो आसन की झाड़ू के साथ उपमा दिया करता हूँ। जैसे घर की सफाई के लिए झाड़ू का प्रयोग होता है और प्रतिदिन इसकी सहायता से कूड़ा करकट बाहर निकाल दिया जाता है ऐसे ही इस शरीर रूपी मन्दिर को साफ रखने के लिए प्रतिदिन आसन रूपी झाड़ू की जरूरत है। हर रोज सचाई करने पर भी देखा जाता है कि चाहे हम जान बूझ कर घर में कूड़ा न भी फेंकें तब भी कुछ न कुछ सुबह शाम साफ करने के लिए इकट्ठा हो ही जाता है। यही हालत शरीर की है। आसन कोई दवाई नहीं है कि एक दिन कर लेने से बीमारी खत्म, यह भी प्रतिदिन करने की चीज है। इससे लगातार अन्दर का शोधन होता रहता है। संचित विकार बाहर निकलते जाएंगे। भविष्य के लिए कोई विकार अन्दर रह ही न सकेगा। इसका भोजन के साथ भी गहरा सम्बन्ध है। आसन करके विकारों को बाहर निकाल कर अगर हम भोजन फिर इस ढंग का करें जो विकारों को बढ़ाने वाला हो, फिर तो वही

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बात होगी कि घर से कूड़ा उठाकर अन्दर फेंक दिया। ऐसा करने वाले को तत्काल मूर्ख ही कहा जायेगा। शरीर रूपी मन्दिर के सम्बन्ध में ऐसा करने वाले को क्या कहा जाए—यह पाठक स्वयं ही सोच सकते हैं? आज अमली तौर पर यही हो रहा है। कई लोग आसन इस विचार से करते हैं कि हम अनियिमताएं करते रहेंगे पर हमारा कुछ बिगड़ेगा नहीं।

कह दें साफ दावरे, महशर के रूबरू।
हां, हां, गुनाह किये हैं, तेरी रहमत के जोर पर॥

इसलिए, सबसे पहले नियमों की सीमा में रहते हुए हमें भोजन के सम्बन्ध में सावधान रहना जरूरी है। इसके बाद आसन और प्राणायाम सोने पर सुहागे का काम करेंगे। साधक को जीवन का आनन्द प्राप्त हो जाएगा।

(१) शव आसन

आसनों की क्या विधि है और इनसे किस प्रकार शोधन होता है—यह जाने बगैर काम नहीं चलेगा। जब हम आसन करते हैं तो इसमें "सुख आसन" अथवा शव आसन को विशेष महत्त्व दिया जाता है। आसन प्रारम्भ करने से पहले भी "शव आसन" कराया जाता है। प्रत्येक आसन के बाद भी इसे कराया जाता है। इसमें प्राणायाम साथ-साथ चलता है। यही इस कार्य-क्रम की विशेषता है। अन्य व्यायामों की अपेक्षा इन आसनों की यह खासियत है कि दिल को उसकी शक्ति से अधिक काम नहीं करना पड़ता। आसन करने के बाद शरीर हल्का प्रतीत होता है। अन्य व्यायाम शरीर के बाहर के हिस्सों को ही प्रभावित करते हैं पर आसन हमारे भीतर की पद्धति को प्रभावित करते हैं। शोधन का काम इस प्रकार चलता है कि जब हम आसन करते हैं तो किसी न किसी अंग पर विशेष दबाव पड़ता है, वहाँ से विजातीय द्रव्य (फारेन मैटर) बाहर निकलता है और उसकी खाली जगह पर शुद्ध रक्त की माँग पैदा होती है। यह शुद्ध रक्त जो हर समय दिल और फेफड़ों के कारखाने में निरन्तर बनता रहता है, उसे तत्काल खाली स्थान पर पहुँचाने की व्यवस्था जीवन शक्ति करती है इस फार्मूले के परीक्षण के लिए आप अपने अंगूठे व अगुली से दबाव डालकर देखें, तो वह स्थान आपको श्वेत होता दिखाई देगा। दबाव हटते ही, ताजा खून उसकी जगह लेने के लिए तत्काल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वहां पहुँच जाएगा। यह थ्यूरी यहाँ काम करती है। जो विदेशी तत्त्व वहाँ बनते हैं, वे भीतर के निश्चित प्रोग्राम के अनुसार, तत्काल फेफड़ों में पहुँचा दिये जाते हैं। फेफड़े हमारे जीवन में भट्ठी का काम करते हैं। विजातीय द्रव्यों का फेफड़ों में जाकर अन्त हो जाता है। जो अंश शरीर में रहने योग्य होता है वह फेफड़े वापस दिल के हवाले कर देते हैं। जो शरीर में रखने योग्य नहीं होता, वह कार्बन-डाई-आक्साइड गैस का रूप धारण कर लेता है। जब शिव आसन में श्वास को सामान्य स्थिति में करके प्राणायाम प्रारम्भ होता है तो कार्बन-डाई-आक्साइड के रूप में शरीर के विकार बाहर निकलते जाते हैं। शरीर में रुके हुए यही विकार बीमारी और बुढ़ापे के कारण हैं। बीमारी और बुढ़ापे का मूलतः उन्मूलन कर लेने के लिए इससे बेहतर ढंग दुनिया में और कोई नहीं है। इसके बदले में जीवन शक्तियों को अन्दर भरने की मांग पैदा होती है। जब हम श्वास अन्दर भरते हैं, तो जीवन शक्ति का भीतर संग्रह करते जाते हैं। हर शव आसन में यह क्रिया चलती रहती है। आसनों की क्रियाएं ऐसी हैं कि शरीर का प्रत्येक अंग, थोड़ा बहुत, बाहर और अन्दर – दोनों प्रकार से प्रभावित होता रहता है ताकि कहीं भी विदेशी तत्त्व रुके न रहें।

आसनों का मार्ग तप का मार्ग है। यहाँ कोई जबर्दस्ती व लोभ-लालच नहीं है। पर लोग जबर्दस्ती व लोभ के अधीन ही काम करते हैं। इसलिए, इस कार्यक्रम को दैनिक रूप में चलाने के लिए भारी तप व त्याग की आवश्यकता है। कुछ लोग समझते हैं कि मेरी सेहत तो ठीक रहती है। तब वह यही कहते हैं कि "हमें आसन-वासन करने की क्या जरूरत है?" बीमार होकर ही आसन करने की जरूरत समझी जाती है। उसमें भी यह देखा जाता है कि रोग की पहली स्थिति में लोग काम आते हैं। जब डाक्टर जवाब दे दे, तब आसनों की ओर ध्यान देते हैं।

दुख में सिमरन सब करें, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सिमरन करें, तो दुख काहे को होय॥

ऐसे लोग किसी जादू व चमत्कार के इच्छुक होते हैं। लोग, अक्सर, योग को जादू व चमत्कार के अतिरिक्त कुछ समझते ही नहीं। आसन तो प्रतिदिन भोजन की तरह शरीर के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। जैसे, भोजन दवाई नहीं है वैसे ही आसन भी दवाई नहीं है। भोजन और आसन का चोली दामन का साथ है। पर लोगों के दिमाग पर दवाइयों ने ऐसा असर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जमा रखा है कि दिमाग दवाइयों के गुलाम हो गये हैं। इसी गुलामी को दूर करने के लिए दुनियाँ में यदि कोई सुन्दर पद्धति है तो वह आसन और प्राणायाम ही है। पर आजकल इसके लिए लोगों के पास समय नहीं है। लोगों को पैसा खर्च किये बगैर तसल्ली नहीं होती। यहाँ कोई फीस व चन्दा नहीं है। अमीर अपने पैसे के जोर से सेहत खरीदना चाहते हैं।

प्रभु की जो भी न्यामत भारी हैं।
वह मिलती बेकीमत सारी हैं॥

गरीब आदमी के पास जीवन धर्षों की वजह से फुरसत ही नहीं। इसलिए, यह कार्यक्रम सुन्दर होता हुआ भी बहुत कम सौभाग्य शील साधकों के हिस्से में आता है।

❀❀

३३

आसन (३)

आठ बातों का ध्यान रखें

आसनों के सम्बन्ध में आठ बातों का ध्यान रखना चाहिए जिनमें से दो का वर्णन पिछले अध्यायों में हो चुका है अर्थात्, आसन से क्या अभिप्राय है और यह क्यों करने चाहिए। अब बाकी ६ बातों पर विचार करेंगे।

आसन कब करने चाहिएं और कब करने नहीं चाहिए? इसका सर्वोत्तम समय प्रातः ५ से ७ बजे तक है। शौच, दातुन, अगर संभव हो तो स्नान भी करने के बाद ही—आसन करने चाहिएं। अगर सुबह समय न मिले, तो सायं ६ बजे और ८ बजे के बीच भोजन से पहले आसन करने चाहिएं। सप्ताह में प्रतिदिन करते हुए एक दिन का अवकाश भी रखा जा सकता है। कब नहीं करने चाहिएं? शौच से निवृत्त हुए बिना अथवा ज्वर आदि रोग हो, तो आसन नहीं करने चाहिए। भोजन के तत्काल बाद भी आसन नहीं करने चाहिएं। समय और स्थान अनुकूल न हो तो भी आसन का नागा अच्छा रहेगा। आसनों की विधि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

खूब समझ कर और सीख कर करें। किसी विधि ज्ञात की देख रेख के बिना न करें। देवियों के लिए मासिक धर्म में आसन करना मना है। गर्भवती होने पर कई आसन नहीं करने चाहिएं, पर कुछ ऐसे भी हैं जो लाभदायक हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो लाभदायक हैं। कुछ ऐसे आसन हैं जो विशेष बीमारी में नहीं करने चाहिए। कुछ ऐसे भी हैं जो खास रोगों के निवारण में जरूरी होते हैं। धूल भरी आँधी में भी आसन नहीं करने चाहिये क्यों कि ऐसी आँधी में प्राणायाम लाभदायक होने की अपेक्षा हानि-कारक होता है और आसनों के साथ प्राणायाम अनिवार्य है।

चौथी बात है, आसन किस जगह करने चाहिएं। किसी खुले स्थान, बाग इत्यादि में ही आसन करने उचित हैं। जिनके पास बाग इत्यादि जाने का समय न हो तो वे अपने मकान की छत पर, बशर्ते वह चारों ओर से मकानों से घिरी हुई न हो, तब वहाँ भी कर सकते हैं। पाँचवीं बात आसन करते समय पोशाक कैसी हो? कुछ लोग पतलून पहनकर भी आसन कर लेते हैं। यह सर्वथा गलत तरीका है। मौसम के लिहाज से पोशाक में जरूर परिवर्तन होता है। गर्मियों में तो केवल कच्छा ही काफी है, बनियान की भी जरूरत नहीं है। शीतल वायु का शरीर के साथ सीधा सम्पर्क होना बड़ा लाभप्रद है। सर्दियों में शरीर पर बनियान, कमीज और कच्छे के बदले पायजामा पहन सकते हैं। पर जरूरी बात यह है कि कपड़े शरीर से चिपटे न होकर, जरा ढीले होने चाहिएं। सर्दी में खुले बाग की अपेक्षा कोई छतदार स्थान का प्रयोग हो सकता है। शरीर पर कोई ऐसी कसी हुई चीज न हो जिससे खून के चक्कर में बाधा हो, जैसे, हाथ की घड़ी को लगा चमड़ा व धातु का पट्टा, कमर पर बाँधी चमड़े की पेटी, बाजू पर बंधा बाजूबन्द इत्यादि।

छठी बात—आसन करते समय मन की अवस्था क्या हो? जब भी आसन कक्षा प्रारंभ होती है, तो यही कहा जाता है कि मन को इस कार्यक्रम की ओर लगाएं। कोई भी चिन्ता इस समय मन में न हो। मानव अपने शरीर को तो सुन्दर बनाना चाहता है पर मन को सुन्दर बनाने की ओर ध्यान नहीं देता। इसलिए शिव आसन के समय जब केवल प्राणायाम होता है, और मन एकाग्र होता है, तब मन को स्वच्छ बनाने के लिए कुछ उच्च विचार धारण करने चाहिएं। यही "शुद्धचिन्तन" मन का आसन है। व्यक्तिगत सुन्दर जीवन के बिना समाज का सुन्दर निर्माण नहीं हो सकता। योग द्वारा ही समाज का सुन्दर निर्माण और रोग का निराकरण हो सकता है।

❀❀

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३४

आसनों के साथ भोजन का सम्बन्ध

भोजन गलत हो और आसन-प्राणायाम प्रति दिन किये जाएं तब भी परिणाम वह नहीं निकलेगा जिसके हम इच्छुक हैं। यही कारण है कि तप करते हुए भी लोग बीमार रहते हैं। प्रातः उठना और नींद और बिस्तर छोड़ कर बाहर आना, आसन करके शरीर को कष्ट देना, यह सब तप ही है। जल के एक हौज में गन्दे नाले के छिपे हुए सम्पर्क से पानी गन्दा हो रहा था। बहुत कोशिश करने पर भी हौज का पानी साफ न हो सका। जब उस स्थान का पता चला जहाँ से इस गन्दे पानी का प्रवेश चुपके-चुपके हौज में हो रहा था, तब उस रास्ते को बन्द कर देने से समस्या हल हो गयी अर्थात्, हौज की सेहत ठीक हो गयी। यही क्रम हमारे शरीर में चलता है। हम गलत भोजन करके अगर आसन प्राणायाम के ज़ोर पर अपने शरीर को स्वस्थ रखना चाहेंगे और गलत भोजन की गन्दगी पीछे से आती रहेगी, तो उस हौज की तरह हमारी अंतड़ियाँ और मेदा साफ न हो सकेंगे। इस गल्त भोजन को जब बन्द कर देंगे तो आसन-प्राणायाम के बिना भी निभाव हो सकेगा। पर ठीक भोजन के बिना आसन-प्राणायाम निरर्थक हैं। इस रहस्य को न समझ कर ही आज आसन-प्राणायाम का मार्ग अपनाया जाता है। जब इच्छित परिणाम प्राप्त नहीं होता, तब आसन-प्राणायाण को बदनाम किया जाता है कि इनका कोई फायदा नहीं।

जिन्हें है फिक्र मर्ज हम की, नहीं काबिल समझते हैं।
इलाही खैर हो यह, जख्म अच्छा हो नहीं सकता॥

प्रश्न है ठीक प्रकार के भोजन से क्या मतलब है? इस सम्बन्ध में सोचना होगा कि (१) हम क्यों खाते हैं? (२) हमें क्या खाना चाहिए? (३) हमें कितना खाना चाहिए? (४) हमें कब खाना चाहिए? (५) हमें कैसे खाना चाहिए? (६) किस चीज को किस चीज के साथ मिलाकर नहीं खाना चाहिए? (७) हमें कहाँ खाना चाहिए? इत्यादि, यह विचारणीय विषय हैं। इन पर आगे चलकर यथास्थान वर्णन करेंगे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आम जनता क लिए उपयोगी आसन

आम लोगों के लिए कौन से आसन लाभदायक हैं ? योगासन उपसमिति द्वारा निम्नलिखित आसन उपयुक्त निर्धारित किये गये हैं :—

(१) ताड़ आसन (२) त्रिकोण आसन (३) उत्कट आसन (४) भद्र आसन (५) पश्चिम उत्तान आसन (६) भुजंग आसन (७) शलभ आसन (८) धनुष आसन (९) चक्र आसन (१०) अर्ध-मत्स्येन्द्र आसन (११) हल आसन अथवा पूर्व उत्तान आसन (१२) सर्वांग आसन (१३) मत्स्य आसन (१४) योग मुद्रा आसन (१५) शीर्ष आसन (१६) शव आसन।

उप समिति का आदेश है कि ये आसन धीरे-धीरे और क्रमशः करने चाहिए और हर बार थक जाने पर 'शव आसन' जरूर किया जाए। अक्सर कई लोग शव आसन की, जिसे प्रत्येक आसन के साथ करना आवश्यक है—उपेक्षा कर देते हैं, यह गल्त तरीका है।

❀❀

३५

पहले पांच आसन

ताड़ आसन

विधि—एड़ियाँ मिलाकर, पंजे खोलकर खड़े हो जाएँ। दोनों हाथों की तालियाँ मिलाकर छाती के मध्य में जहाँ दोनों ओर पसलियाँ मिलती हैं—गड्ढे के सामने रख दें। इस स्थिति को योग की भाषा में "दर्शन मुद्रा" कहते हैं। फिर दोनों हाथों के अंगूठे आपस में मिलाकर, हाथ की अंगुलियाँ सीधी करके, श्वास को अन्दर भरते हुए हाथों को सिर के ऊपर तान दें। हाथ की तालियों का रुख सामने की ओर हो। साथ-साथ, नीचे से एड़ियाँ भी उठती जाएँ, अर्थात्, पंजों के बल खड़े हो जाएँ, बाजू ऊपर की ओर तने हुए और हाथ के अंगूठे मिले हुए हों, फिर श्वास छोड़ते हुए एड़ियाँ नीचे आती जाएँ और हाथ भी शरीर के साथ दायें-बायें लग जाएँ। इसे बार-बार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसी ढंग से किया जाए। लाभ—हाथ पाँव, छाती और पसलियों में से विजातीय द्रव्य बाहर निकलता है, उनमें लचक आती है, दिल और फेफड़ों को शक्ति मिलती है, रोगों से निवृत्ति होती है। शरीर का भारीपन नहीं रहता। कद की ऊँचाई भी कुछ बढ़ती है। हरनिया की बीमारी को ठीक करता है।

(२) **त्रिकोण आसन—विधि**—इसमें कई ढंग हैं पर यहाँ एक ही ढंग लिखा जाएगा। सीधे खड़े होकर एक पाँव को ऊपर उठाकर टांग को सामने की ओर उठाते जाएँ, यहाँ तक कि, टाँग जमीन के साथ समानान्तर रेखा में आ जाए। जिस ओर भी टाँग उठावें, उस ओर के हाथ से पैर के अंगूठे को पकड़ लें। दूसरा हाथ कमर पर टिका रहे। फिर, दूसरी टाँग को उठाकर पहली टाँग की तरह करें। बारी-बारी से बार-बार दोहरायें। लाभ—इससे पाँव, घुटने और टाँगों में शक्ति का संचार होता है।

(३) **उत्कट आसन—विधि**—सीधे खड़े हो जाएँ। दोनों हाथों को कमर के दोनों ओर कटी प्रदेश पर रख दें। शरीर को नीचे झुकाना शुरू कर दें। पांव और घुटनों के बीच का हिस्सा तो एकदम सीधा रहे। जैसे, कुर्सी की दो अगली टाँगें होती हैं, ऐसा मालूम हो। पीठ को यहाँ तक घुमाएँ कि जाँघें भूमि के साथ समानान्तर हो जाएँ। ऐसा मालूम होगा कि कुर्सी के बगैर आप कुर्सी पर बैठे हैं। इससे घुटनों पर विशेष दबाव पड़ेगा। लाभ—घुटनों में दर्द रहता हो तो ठीक हो जाएगा। जोड़ों के दर्द और कमर दर्द के लिए लाभप्रद आसन है।

(४) **भद्र आसन—विधि**—भूमि पर इस प्रकार बैठ जाएँ कि एड़ियाँ मिली हुई, पंजे खुले हुए और दाँयाँ हाथ कलाई पर रखा हुआ, नितम्ब भूमि पर टिके हुए, हाथ हटाकर दोनों घुटनों को दांये-बांये झुकाना शुरू कर दें। पहले पांव के तलवे आपस में मिल जाएँगे, फिर पाँव की पीठों को भूमि के साथ लगाने का प्रयत्न करें, जिससे पाँव के तलवों का रुख आकाश की ओर हो जाएगा, और हाथों की मदद से दोनों पाँवों को अन्दर की ओर ले जाकर एड़ियाँ शरीर से मिला दें, दोनों घुटनों को हाथों से दबा कर जमीन पर लगाने की कोशिश करें, फिर जरा नितम्ब को उठाकर एड़ियों पर रख लें, फिर घुटनों को भूमि पर लगाइए। लाभ—इससे वीर्य ग्रन्थियाँ प्रभावित होती हैं। वीर्य रक्षा के लिए उत्तम आसन है। स्वप्न दोष व धातु प्रवाह जैसे रोग इससे दूर होते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(५) पश्चिम उत्तान आसन—विधि—इस आसन की दो स्थितियाँ हैं। यह जरा कठिन है पर विशेष आसनों में प्रमुख है। पहली स्थिति—दरी बिछाकर इस पर भद्र आसन की तरह बैठ जाएँ। दोनों एड़ियों को मिलाकर शरीर के साथ मिला दें। दोनों हाथ घुटनों के बीच लाकर, दोनों हाथों की पीठें मिला दे, पीठें मिलाकर दोनों पाँव के पंजों के नीचे हाथ लेजाएँ और हाथ की छोटी अंगुली की ओर से जो तीन अंगुलियाँ हैं, इनसे पाँव के दोनों अंगूठों के लपेट लें, रीढ़ की हड्डी बिल्कुल सीधी रहे। अब घुटनों से बाजुओं को अन्दर की ओर दबावें और पैर के अगूठों से हाथों को नीचे की ओर दबाएं। ये दोनों दबाव कायम रखते हुए पाँव को जहाँ तक जा सके भूमि के साथ लगाते हुए, बाहर निकालते चले जाएँ, यहाँ तक कि टाँगें बिल्कुल सीधी हो जाएँ और घुटनों का निचला भाग जमीन पर लग जाए। कई लोगों की टाँगें पूरे तौर पर सीधी नहीं होतीं, वे अंगूठों की पकड़ को ढीला कर देते हैं। लेकिन अंगूठों को तो मजबूती से पकड़े रखना है, टाँगें सीधी हों व न हों—इसकी परवाह न करें। बल्कि पाँव को एक-एक करके प्रतिदिन थोड़ा आगे बढ़ाने की कोशिश करते जाएँ। ज्यों-ज्यों शरीर में लचक आएगी, टाँगें सीधी होने लगेंगी। जब टाँगें पूरे तौर पर तन गयीं और घुटनों का निचला भाग जमीन पर लग गया, तो फिर श्वास को बाहर निकालते हुए सिर को सामने की ओर झुकाना शुरू किया जाए। अन्तिम ध्येय यह है कि सिर दोनों घुटनों के बीच टिक जाए। पर सिर को घुटनों के बीच लगाने का यत्न करते हुए तीन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है, पहली, अंगूठों की पकड़ ढीली न हो, दूसरी, कोहनियों में खम न आए, तीसरी यह कि घुटने नीचे से ऊपर न उठने लगें क्यों कि घुटनों को सिर से नहीं लगाना अपितु सिर को घुटनों पर लगाना है। यद्यपि यह आसान नहीं है पर विधि पूर्वक करने से ही लाभ होगा। एकदम आँतों पर दबाव पड़ता मालूम होगा। श्वास को कुछ क्षण बाहर रोक कर सिर को घुटनों पर लगाये रखें, फिर श्वास अन्दर भरते हुए सिर ऊपर लेते आयें, और दोनों हाथ सीधे आकाश की ओर उठ जाएँ, फिर श्वास को छोड़ते हुए हाथों को पीठ पीछे ले जाकर इस प्रकार रख दें कि हाथ की अंगुलियों का रुख पिछली ओर हो और कोहनियाँ शरीर के साथ मिली हुई हों। फिर, जरा-सा एड़ियों को आगे करके हाथ की हथेलियों पर और पैर के पंजों पर आश्रित करते हुए शरीर को ऊँचा उठा दीजिए, इससे पांव के पंजे जमीन पर लग जाएंगे और रीढ़ की हड्डी भूमि के साथ समानान्तर हो जाएगी। सिर पीछे की ओर लटक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जाए। इससे यह लाभ होगा कि सिर घुटनों पर लगाते समय अगर आंतें इकट्ठी हो गयी हों, तो, इस प्रकार करने से असली हालत में आजाएँगी। फिर धीमे-धीमे शरीर को जमीन पर ले आइए और श्वास की गति सामान्य करने का यत्न कीजिए, शव आसन कीजिए।

पहली स्थिति का लाभ—यह जितना लम्बा और कठिन आसन है उतना लाभदायक भी है। पेट के तमाम विकारों को यह आसन ठीक करता है। मेदा और आँतों को स्वस्थ रखने के लिए यह विशेष लाभप्रद है। रीढ़ की हड्डी में लचक लाता है, सारे शरीर में से विजातीय द्रव्य को बाहर निकालता है।

दूसरी स्थिति की विधि—पीठ के बल जमीन पर लेट जाइए, दोनों हाथों की अगुलियाँ आपस में फंसा दीजिए, दोनों बाजुओं को सिर के पीछे ले जाइए, हाथ की तलियाँ एक दूसरे को दबाती रहें, बाजू खूबे तने रहें, पैर के पंजों को मिलाकर सामने की ओर तान दें, सारा शरीर ऐसे तन जाए, जैसा लकड़ी का एक तख्ता होता है, दोनों एड़ियों को थोड़ा सा जमीन से उठा लीजिए और बाँयी एड़ी जमीन से उठी हुई वहाँ ही रहे, और दाँयी टाँग को अलग करके ऊपर लेते जाए, यहाँ तक कि ९० अंश पर टाँग खड़ी हो जाए। इस टाँग को खड़ा करके बाँयी टाँग को दाँयी ओर घुमाइए। बाजू, टाँगें, पैर—तने रहें। बाँयी टाँग दूर से ले जाए। फिर, धीरे-धीरे निचली टाँग वापस आये, ऊपर की नीचे आये, दोनों जमीन से ऊपर मिलें, मिलकर नीचे एड़ियाँ जमीन पर लग जाएं। पंजे खोलकर शरीर और श्वास ढीला छोड़ दें। अब फिर इसी तरह हाथों को पीछे ले जाकर बाँयीं टाँग को खड़ा करके दायीं टाँग को बाँयीं ओर घुमाएं औ वापस लाएं। बेशक, दो-तीन बार करें।

लाभ—वीर्य ग्रन्थियाँ प्रभावित होंगी, वीर्य रक्षा, स्वप्न दोष, धातु प्रवाह इत्यादि ठीक करने के लिए सर्वोत्तम आसन है। कंधों में दर्द हो तो ठीक हो जाता है।

❀❀

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३६

छठा, सातवाँ और आठवाँ आसन

शव आसन—सबसे पहले इसका वर्णन करना आवश्यक है क्योंकि इसका सम्बन्ध प्रत्येक आसन के साथ है। इस आसन का मतलब है शरीर को ऐसा शिथिल करना, जैसा "शव" (मुर्दा) होता है। अगर कोई हाथ या टांग को उठाये तो ऐसे उठ व गिर जाए जैसे मुर्दे का शरीर होता है। इसमें किसी प्रकार का प्रतिरोध न हो। भेद यह है कि मुर्दा शरीर में अकड़ होती है पर यहाँ मुर्दे की सी अकड़ नहीं चाहिए, अपितु एकदम ढीलापन हो, शरीर में कोई तनाव न हो। इसी लिए इसका दूसरा नाम है, "सुख आसन"। यह आसन जाने व अनजाने सब आबालवृद्ध करते हैं। दिन भर काम करके थक जाने के बाद रात को सोते समय शव आसन ही होता है जिसमें गहरी नींद और होश का न होना – दोनों का अद्भुत मेल होता है। शव आसन में होश रहते हुए शरीर को शिथिल करना है। रात के सोने की अपेक्षा यह अधिक वैज्ञानिक होना चाहिए। पाश्चात्य विद्वानों ने इस का बड़ा महत्त्व बताया है। इसे ही सबसे कठिन कहा जाता है कारण यह है कि खिचाव पैदा करना जो सहज है पर ढीलापन लाने के लिए बड़ी मेहनत और समझदारी चाहिए। शरीर की शिथिलता के साथ साथ श्वास भी शिथिल हो और साथ ही मन भी विचार शून्य हो, तब पूर्ण सुख आसन का आनन्द अनुभव होगा। यह भी जरूरी है कि कुछ देर पीठ के बल चित लेटने के बाद श्वास सामान्य होने पर पूरी तरह श्वास को बाहर निकाल कर एक दो क्षण बाहर ठहरा कर श्वास भीतर ले जाएं। इससे फेफड़ों के अधिक से अधिक कोष्ठक प्रभावित होंगे। एक-दो क्षण भीतर रोककर श्वास को छोड़ते जाए और दांयी करवट लेते जाएं। इसका तरीका यह है कि दांये बाजू को दोहरा करके, इसी भुजा का सिरहाना बना लें। सिर कोहनी के ऊपर आ जाए। एड़ी पर एड़ी हो, टखने पर टखना हो, घुटने पर घुटना हो, पहले टाँगें सीधी हों, घुटने तो अपनी जगह टिके रहें और एड़ियों को जरा पीछे कर दें जिस से टाँगों में थोड़ा खम आ जाएगा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऐसा करते हुए श्वास को पूर्ण रूप से बाहर निकाल कर एक दो क्षण बाहर रोकें, फिर लम्बा और गहरा श्वास अन्दर भरते जाएँ। एक दो क्षण रोककर पहले टाँगें सीधी करें, फिर पीठ पर आ जाएं, और श्वास का रेचन होता जाए। (रेचन कहते हैं श्वास को बाहर निकालना और पूरक करते हुए श्वास को अन्दर भरना) इसी ढंग से करते हुए फिर बाँयी ओर करवट बदलनी है। अब पीठ पर आना है। जब शरीर बिल्कुल हल्का मालूम हो, फिर दूसरा आसन करना है।

लाभ—शव आसन से शरीर में थकावट नहीं रहती। पेट से हवा खारिज हो जाती है, दिल और दिमाग को शान्ति और आनन्द का अनुभव होता है। इस आसन को हर पुरुष व स्त्री स्वस्थ व रोगी—दोनों कर सकते हैं।

छठा—भुजंग आसन – विधि – पेट के बल लेट जाइए। दोनों हाथों को शरीर के दाँयें-बाँयें कँधों के नीचे इस प्रकार रखिए कि हाथ की अगुलियाँ और अँगूठे आपस में मिले हुए हों, हाथ की तलियाँ जमीन पर रख कर कोहनियाँ दांये कोने पर हों और पाँव के पंजों को पिछली ओर तान दें। अब हाथ की तलियों पर दबाव देकर, श्वास को अन्दर भर कर कुम्भक करके छाती को उठाते चले जाएँ, जैसे फणियर साँप का फन उठता है। नाभि से ऊपर का सारा हिस्सा उठ जाए। फिर, श्वास को छोड़ते हुए वापस आ जाएँ। सुविधा के अनुसार, कई बार कर सकते हैं।

लाभ—इससे छाती और फेफड़े स्वस्थ होते हैं और पेट के तमाम विकार दूर होते हैं। इसे सर्प आसन भी कहते हैं।

सातवां—शलभ आसन—शलभ कहते हैं मकड़ी को। यह व अन्य कई आसन मनुष्य ने पशु पक्षियों से ही सीखे हैं। इसलिए इनके नाम उन्हीं पर हैं।

विधि—पेट के बल लेट जाएँ, दोनों हाथ शरीर के साथ मिलाकर, दांये-बांये लिटाकर, तान दें। इस समय हाथ की अंगुलियाँ और अँगूठे आपस में मिले हुए हों। हाथ की तलियाँ जमीन पर जमी हुई हों, छाती और ठोड़ी को जमीन पर जमाकर रखें, श्वास को अन्दर भरकर, कुम्भक करके, पाँव को तानते हुए, टाँगों को ऊँचा उठाना शुरू कर दें, यहाँ तक कि जाँघें भी पूरे तौर से उठ जाएँ। मकड़ी की पूँछ के समान टाँगें पीछे को तन जाएँ, घुटनों में खम न आने पाये। थोड़ी देर रुककर श्वास को छोड़ते हुए वापस पहली स्थिति में आ जाएँ। इसे कई बार करें। अगर इस आसन को एक टाँग से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बारी-बारी किया जाए तो इसका नाम अर्ध-शलभ आसन होता है।

लाभ—टाँगों के तमाम रोग इससे ठीक होते हैं। कमर दर्द को ठीक करने के लिए यह सर्वोत्तम आसन है। पेट के सब विकार ठीक होते हैं। अगर चाहें तो भुजंग और शलभ—दोनों आसन एक साथ भी हो सकते हैं। शलभ आसन की तरह लेटकर, शरीर का अगला पिछला भाग एक साथ उठाते चले जाएँ। यहाँ तक कि नाभि का अगला भाग साँप के फन की तरह और इधर पिछला भाग जाँघों तक—मकड़ी की पूँछ की तरह ऊपर उठ जाए। सारा बोझ हाथों की तलियों व पेड़ और नाभि के क्षेत्र पर पड़े। बाद में की तलियाँ भी ऊँची उठा दें। अब सारा बोझ पेड़ पर और नाभि पर आ जायगा। दोनों आसनों को अलग-अलग करने से जो लाभ होते हैं, वे तो होंगे ही पर इसमें, विशेष रूप से कटि प्रदेश (एबडोमिनल) पर दबाव पड़ता है और अंग सम्बन्धी सब रोग दूर होते हैं। पाचन शक्ति तेज होती है। मन्दाग्नि, अजीर्णता, वायु-गोला, इत्यादि दोष दूर होते हैं।

आठवाँ—धनुः आसन—इसके कई प्रकार हैं। चूंकि दिल पर इसका सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है, इसलिए दमा व हृदय रोगियों के लिए यह वर्जित है।

विधि—पेट के बल लेट जाए। दोनों एड़ियों को मिलाकर, घुटनों को दोहरा करते हुए, टाँगों को घुमाकर पीठ की ओर ले आएँ। दोनों हाथों से टखनों को मज़बूती से पकड़ लें। अब विधि यह है कि एड़ियाँ और पंजे तो मिले रहें, और पाँव के पंजों को घुटनों की ओर झुकाएँ, पीठ की ओर नहीं। इससे पाँव के तलवे चौड़े होकर आकाश की ओर हो जाएँगे। अब पाँवों को पीछे धकेलिए और पाँव हाथों के पीछे की ओर खेंचे, ताकि छाती और सिर साँप के फन की तरह ऊपर उठ जाएँ. हाथों से पाँवों को आगे की ओर खींचिये, लेकिन ध्यान रहे ऐसा करते हुए कोहिनयों में खम न आए। इस आसन में घुटने जमीन से उठने लगेंगे। इस आसन मे यही काम मुश्किल है कि घुटने आसानी से नहीं उठते, कुछ देर तक अभ्यास करने के बाद उठने लगते हैं। जब तक घुटने न उठें, आसन पूरा नहीं होता है, न ही पूरा लाभ प्राप्त होता है। घुटने उठने पर जाघों को भी पूरे तौर पर उठा देना है। यहाँ तक कि सारा बोझ पेट की नाभि से निचले भाग पर आ जाए। हाथों और पाँवों में एक प्रकार का संघर्ष हो रहा हो। हाथ आगे खींचें और पाँव पीछे, एकदम धनुष का आकार बन जाएँ, वह भी कसा हुआ। अगर सर्दी के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मौसम में करें तो ऐसा प्रतीत होगा कि सर्दी भाग रही है।

लाभ—शरीर के हरेक अंग और जोड़ में से विजातीय द्रव्य निकल जाता है। रीढ़ की हड्डी पर विशेष प्रभाव पड़ता है। कमर दर्द के लिए लाभकारी आसन है। पेट के सब रोग ठीक हो जाते हैं। धनुष आसन के साथ एक उप आसन भी किया जाता है। वह इस प्रकार भुजंग आसन की तरह हाथ कंधों के नीचे और कोहनियाँ दायें-बायें कोने पर खड़ी कर पेट के बल लेट जाएँ, कमर को थोड़ा-सा उठा लें, बाजुओं की ताकत से उल्टे डंड की तरह शरीर को ऊपर उठाते हुए पीछे की ओर धकेलते जाएँ, यहाँ तक कि एड़ियाँ जमीन पर जाकर लग जायें। ध्यान यह रखना है कि हाथ और पाँव जहाँ थे, वहीं टिक रहें, घुटनों में खम न आये, ऐसा मालूम होगा कि पिंडलियाँ फट रही हैं। पिंडलियाँ और एड़ियाँ—जो शरीर के सबसे कठोर हिस्से हैं—इस आसन से प्रभावित होती हैं। इन अंगों का विजातीय द्रव्य हिलता-जुलता है। श्वास को अन्दर भरते हुए ऊपर जाना है, फिर श्वास को छोड़ते हुए वापस आएँ, कोहनियों में खम देते जाएँ, छाती पहले आये, कमर पहले न गिर जाएँ, कमर साथ-साथ आये। जब छाती जमीन पर लग जाये, तब पाँव के पंजों को दाये-बाँये लिटाकर, दाँये पाँव के पंजे को बाँये पाँव पर चढ़ा दें और एड़ियों पर बैठ जाएँ, दोनों हाथों पर दबाव डालकर टाँगे जमीन से उठा लें और एक झूला सा बनाकर टाँगों को बाहर निकाल कर फैला दें और पीठ के बल लेटकर श्वास को सामान्य करके शव शासन, अर्थात् पहली स्थिति में लेट जायें।

लाभ—टाँगों को आम तौर पर और पिंडलियों व एडियों को खास तौर पर यह आसन नीरोग करता है, भुजाओं में शक्ति आती है, कद को लम्बा करता है, एडियों और पिंडलियों में कभी दर्द नहीं होता, थकावट को दूर करता है।

❀❀

धन भेजते हुए या पत्र व्यवहार में
अपनी सदस्य संख्या अवश्य लिखें
—व्यवस्थापक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३७

९ वाँ, १०वाँ, और ११वाँ आसन

चक्र आसन—इसमें शरीर को चक्र के आकार का बनाया जाता है।

विधि—यह दो तरह से किया जाता है। (१) पीठ के बल लेट जायें। दोनों बाजुओं को कोहनियों पर दोहरा हाथों को कन्धे के नीचे टिका लीजिये। हाथ की अंगुलियाँ और अँगूठे आपस में मिले हुये और हाथ की अंगुलियों का रुख पैर की ओर, कोहनियाँ दायें-बायें कोने पर खड़ी हों। टाँगों को दोहराकर पाँव की एड़ियाँ नितम्ब के साथ लगा दें। अब हाथ की तलियों पर जोर देकर कंधे और सिर जमीन से उठाकर शरीर को ऊपर धकेलिये, यहाँ तक कि शरीर कमान की तरह तन जाये। कोशिश करें कि आपके हाथ के पंजे और ऐड़ियाँ एक दूसरे को स्पर्श करें। यह जरा मुश्किल से होगा पर अभ्यास से सिद्ध हो जाएगा। फिर, सिर को जरा जमीन पर रख दीजिये दोनों हाथ उठाकर पेट के ऊपर रख दें। अब सारा बोझ सिर की चोटी पर और पावों के पंजों पर होगा, फिर पाँवों की एड़ियाँ उठा देने से सारा बोझ पंजों पर आ जायेगा। शीर्ष आसन जो नहीं कर सकते, उन्हें कुछ-न-कुछ शीर्ष आसन जैसा लाभ इस आसन से प्राप्त हो जायेगा।

विधि—सीधे खड़े हो जायें। दोनों हाथों को आकाश की ओर ले जाकर तान दें। हाथ की तलियों का रुख सामने की ओर हो, हाथों को पीठ पीछे झुकाना शुरू करें, साथ-साथ पीठ और कमर भी झुकती जाये, यहाँ तक ले जायँ कि हाथ जाकर जमीन पर टिक जायँ। हाथ टिकने पर जब पहली विधि के अनुसार चक्र-आकार में शरीर आ जाए, फिर पहली विधि के अनुसार ही आगे करें।

संकेत—इस आसन को जो प्रथम दिन ही शुरू करने लगें, वे पहली विधि के अनुसार करें। दूसरी विधि जरा कठिन है। अभ्यास हो जाने पर दूसरी विधि से भी यह आसन हो सकेगा

लाभ—चाहे किसी विधि से करें, लाभ दोनों अवस्थाओं में एक जैसा है। पेट के विकारों को ठीक करता है। कमर दर्द कभी होता ही नहीं, अगर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हो तो दूर भाग जाता है। लगातार करने वाले की कमर वृद्ध अवस्था में भी नहीं झुकती। रीढ़ की हड्डी को निर्दोष बनाता है, छाती कमर, हाथ और पाँव को रोग मुक्त कर बलवान् बनाता है।

दसवां आसन-अर्द्ध-मत्स्येन्द्र आसन—इसका शब्दार्थ है, मत्स्य, मछली। योगियों ने मत्स्य आसन भी बताया है। इसका वर्णन आगे क्रम में आएगा। "इन्द्र" कहते हैं राजा को, इसलिए मत्स्येन्द्र, प्रायः, मगरमच्छ को कहते हैं। "अर्द्ध" शब्द लगाने का अभिप्राय यह है कि एकदम मगरमच्छ की तरह शरीर को तान देना तो कठिन है। कई योगी पूर्ण मत्स्येन्द्र आसन भी करते हैं। यह बहुत कठिन है, सामान्य व्यक्ति कर नहीं सकता। योग गोष्ठी में भी "अर्द्ध" ही स्वीकृत हुआ है। इसलिए यहाँ "अर्द्ध-मत्स्येन्द्र" का ही वर्णन होगा।

विधि – नितम्बों पर बैठकर टाँगें सामने की ओर फैला दें। हाथ चाहे जहाँ भी रखें। दाँयीं टाँग को दोहराकर नितम्ब की ओर ले आएं। दाँये हाथ की मदद से दांये पाँव की एड़ी गुदा के ऊपर सीवन पर टिका दें। दाँये पाँव का तलवा बाँयी टाँग के साथ लग जाएगा। फिर बाँये पाँव की सहायता से उठाकर घुटने पर टाँग कों मोड़ते हुए दाँये घुटने पर ले आएं, यहाँ तक आगे बढ़ाएं कि बाँया पाँव दाँयी टाँग के ऊपर से गुजरता हुआ जमीन को छूने लगे, और बाँयी टाँग का घुटना ऊपर खड़ा हो जाए। अब दाँये बाजू को बाँयी टाँग के घुटने के पीछे से घुमाकर दाँये टाँग के घुटने को पकड़ लें और बांये हाथ से बाँयी ओर से घुमाकर पीठ के पीछे ले जाकर दाँयी टाँग को छूने की कोशिश करें। फिर, गर्दन को घुमाकर बाँयी ओर ले जाएं, और जिस हद तक घुमा सकें, घुमाएँ। थोड़ी देर रुककर पहले गर्दन सीधी करके और फिर बाँया हाथ, फिर दांया, और फिर बाँयी टांग, फिर दोनों टाँगों को सीधा करके, पहली स्थिति में आ जाएँ। अब बाँयी टाँग को दोहरा करके बाँये पाँव की एड़ी को गुदा के ऊपर सीवन में सटाकर आगे सब मुकाबले के अंगों से वैसा ही करें जैसापहले किया था। अब गर्दन ने दाँयी ओर घूमना है। इसे एक-दो बार कर सकते हैं।

लाभ—आसन कितना मुश्किल है, यह तो इसकी विधि से पता लग रहा है। शायद सामान्य व्यक्ति समझ भी न सके कैसे करना है। इसलिए यह आसन किसी जानकार के सामने करना ही ठीक रहेगा, अशुद्ध ढंग से करने से हानि की संभावना है। जितना यह कठिन है उतना लाभदायक भी है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इससे पीठ, पेट, पाँव, बाजू, कमर कंठ, नाभि से नीचे का भाग और छाती की तमाम नसों में खिचाव आता है। इससे जठराग्नि तीव्र होती है, पेट का दर्द, अफारा और आँतड़ियों का कोई रोग नहीं रहता, शरीर की तमाम नस-नाड़ियाँ प्रभावित होती हैं, सारे शरीर में रक्त का संचालन ठीक हो जाता है।

(११) हल आसन—इसे पूर्व उत्तान आसन भी कहते हैं। इसका प्रभाव शरीर के पूर्वी भागों पर पड़ता है। इस आसन की तीन स्थितियाँ है। पहली स्थिति का नाम "उत्तान आसन" दूसरी "विशुद्धहल आसन" और तीसरे को इसका 'उपआसन' कहते हैं। तीनों को अलग अलग लिखा जाएगा, क्योंकि "हल आसन" एक शिरोमणि आसन है।

(१) उत्तान पाद आसन—पीठ के बल चित्त लेट जाएँ, दोनों बाजू शरीर के दोनों तरफ जमीन पर इस प्रकार लिटा दें कि हाथ की हथेलियाँ जमीन पर लगी हुई हों और हाथ की अंगुलियाँ और अंगूठा—आपस में मिले हुये हों। बाजुओं को इस स्थिति में तान दीजिए, पाँव के पंजों को सामने की ओर तान दें। जरा-सा, एड़ियों को जमीन से उठाकर अथवा धीमी-धीमी गति से एड़ियों को ऊपर उठाते जाइए। ज्यादा से ज्यादा एक फुट तक उठाना है, अथवा, दो-चार इंच ही उठाना काफी रहेगा। इसमें अधिक ऊँचा उठाना और जल्दी उठाना दोनों ही गल्त हैं, अपितु, थोड़ा उठाना और धीरे-धीरे उठाना अति लाभदायक है। ऐसा अनुभव हो, जैसे पाँव के साथ मानो बोझ बँधा हुआ है। बड़ी मुश्किल से टाँगें ऊपर उठ रही हैं। एक फुट के अन्तर्गत जाकर जरा तनाव दें, थोड़ी देर रुके रहें, फिर उसी धीमी गति से नीचे लाना है। ऐसा पता लगे कि टाँगों कोई रस्सा डालकर ऊपर खींच रहा है, और हम जबर्दस्ती नीचे ला रहे हैं। यहाँ तक कि जमीन स्वयं ही एड़ियों को रोक लेगी, इसके विपरीत एडियों को जमीन पर पटक नहीं देना है, पटकना तो बहुत असान है, रोक कर लाना ही मुश्किलहै। जब एड़ियाँ जमीन को स्पर्श करें तो फिर पाँव के पंजों को दाँये-बाँये खोलकर सुख आसन का आनन्द ले सकते हैं।

(२) विशुद्ध हल आसन—उत्तान पाद की तरह लेटकर हाथ और पाँव तन जाएँ। धीमे-धीमे एड़ियों को उठाकर टाँगों को ऊपर उठाते चले जाएँ। इसमें यद्यपि उत्तान पाद की तरह धीमी रफ्तार न हो, मगर तेज रफ्तार का तो यहाँ कोई काम नहीं। धीरे-धीरे उठाते हुए, टाँगों को कमर के साथ दाँये कोने पर ले आएँ। फिर, रीढ़ की हड्डी का एक-एक मोहरा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उठाते हुए आकाश की ओर ले जाएँ। बाजू जमीन पर लगे रहें, यहाँ तक जमे रहें कि हाथ की तलियाँ और कलाइयाँ भी जमीन से न उठें। फिर, पाँव को सिर के पीछे की ओर धीरे-धीरे झुकाते चलें जाएँ, पर न तो पाँव के पंजों का तनाव ढीला हो न और ही घुटनों में खम आने पाए। पाँव के पंजे जमीन को जाकर छूएँ, ठोड़ी को गले के साथ लगाकर, दबाकर रखिए ताकि "जलंधर बंध', लगे। थोड़ी देर इस स्थिति में रुककर पहले टांगें धीरे से ऊपर ले आयें और फिर रीढ़ की हड्डी का एक-एक मोहरा जमीन के साथ लगाते हुये वापस लाइये। यहाँ तक कि टाँगें पहले की तरह कमर के साथ दायें कोने पर आ जायें, फिर टाँगों को सँभालकर धीरे-धीरे वापस लाएं। यहाँ तक कि जमीन स्वयं ही एड़ियों को रोक ले। फिर पंजे खोल शव आसन करें।

(३) पूर्व उत्तान का उप आसन—पीठ के बल लेटे रहें। दाँये हाथ की मुट्ठी बनाकर छाती की दाँयी ओर कोहनी के भार से दाँये कोने पर खड़ा करें और बाँये बाजू को लेटा हुआ तान दें। ठोड़ी को खूब जोर से बाँयी ओर घुमायें। अब पाँव के पंजों को मिलाकर सामने की ओर तान दें, एड़ियों को किंचिन्मात्र जमीन से उठाकर पंजों की ओर तान दें, धीरे-धीरे दोनों टाँगें उधर घुमायें जिधर मुट्ठी खड़ी की हुई है, अर्थात् दाँयी ओर, यहाँ तक घुमायें कि बाँयी ओर से कमर न उठने पाये, घुटनों में खम न आये, ठोड़ी बाँयी ओर दबी रहे। थोड़ी देर रुककर टाँगों को वापस लायें। एड़ियाँ जमीन पर टिकाकर सिर को सीधा करें और मुट्ठी वाला हाथ नीचे कर दें। फिर बाँये हाथ की मुट्ठी बनाकर बाँयी ओर से पहले की तरह सारा कार्य-क्रम करें, जैसा पहले दायें हाथ की मुट्ठी बनाकर किया था। फिर सुख आसन करें।

लाभ—तीनों स्थितियाँ एक समान ही लाभदायक हैं। इससे पेट, अन्त-ड़ियाँ, जिगर और तिल्ली—खास तौर पर प्रभावित होते हैं। इससे जठराग्नि अपना काम पूर्ण रूप से करने योग्य बनाती है, पेट का मोटापा ठीक होता है, भूख खूब लगती है, अपचन दूर होता है, कधे प्रभावित होते हैं रीढ़ की हड्डी प्रभावित होती है, इसमें लचक आती है, शरीर सुन्दर और सुडौल बन जाता है, दिल-दिमाग को शक्ति मिलती है। अगर किसी को धरण पड़ी हुई हो तो यह आसन उसका अचूक इलाज है।

❀❀

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३८

१२वाँ, १३वाँ, १४वाँ, १५वाँ, आसन

सर्वांग आसन—इसे आसनों का राजा कहा गया है। शीर्ष आसन के बाद सबसे अधिक लाभदायक आसनों में इसका प्रथम स्थान है।

विधि—पूर्व उत्तान आसन की भाँति पीठ के बल लेटकर दोनों हाथों की तलियाँ जमीन पर रखते हुये बाजुओं को शरीर के दाँये-बाँये लेटाकर तान देना है। पाँव के पंजों को मिलाकर सामने की ओर तानकर एड़ियों को जरा सा ऊपर उठाकर धीरे-धीरे टाँगों को ऊपर उठाते चले जायें। जब टाँगें पूरी तरह उठ जायें, तो फिर कमर को उठाना शुरू कर दें। हल आसन की तरह रीढ़ हड्डी की एक-एक गाँठ उठती चली जाये, यहाँ तक कि टाँगें सीधी आसमान की ओर हो जायँ, पाँव के पंजे आकाश की ओर रुख करके तान दें। हाथों का सहारा लेकर जरा पीठ को और ऊपर उठायें, यहाँ तक कि सारा शरीर कंधों पर आधार बनकर सीधे कोने पर खड़ा हो जाये, पाँव न तो सिर की ओर झुकें और न ही पीछे की ओर, ठोढ़ी जाकर गले के नीचे के भाग-जहाँ एक गड्ढा सा है—पर दबाकर जमा दें। इसी को "जालंधर बन्ध" कहते है। इस स्थिति में १० मिनट तक रुके रह सकते हैं। हाथ छोड़ सकें तो छोड़कर अन्यथा हाथों के सहारे रीढ़ की हड्डी का एक-एक मोहरा जमीन से लगाते हुये वापस लायें। टाँगों को भी रोक कर धीरे-धीरे नीचे लायें, यहाँ तक कि एड़ियों को रोक लें, पंजे खोलकर शव आसन में लेट जायें।

इसके साथ, विपरीतकरण की भी स्थिति बन सकती है। वह इस प्रकार कि जब टाँगें कन्धों पर सीधी खड़ी हों और हाथ पीठ को सहारा दे रहे हों, उस समय हाथों को जरा ऊँचा उठाना शुरू कर दें, कमर के नीचे के हिस्से तक ले जाएं, फिर कोहनियों पर दबाव देते हुये हाथ के पंजों के सहारे टांगों को सामने की ओर झुकाना शुरू कर दें, यहाँ तक झुकायें कि गिर न जायें, जरूरत से ज्यादा झुकाने से गिरने का खतरा रहता है। एकदम हाथों पर दबाव बहुत पड़ेगा। सर्वांग आसन में खून का बहाव सीधा ऊपर से नीचे की ओर रहता है। विपरीत करण में झुकाव वाली स्थिति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बनने से खून का बहाव तेज हो जाता है। जिसका शरीर इस स्थिति में काँपने लग जाता है वे या तो यह आसन करें नहीं, अथवा करें तो टाँगों को बहुत कम सामने की ओर झुकाएँ, नहीं तो दिल पर ज्यादा बोझ पड़ने का खतरा रहता है।

लाभ—यह आसन प्रत्येक रोग के लिए अचूक नुस्खा है। इसमें रीढ़ की हड्डी खास तौर पर प्रभावित होती है, जैसे हल आसन में और यह जो एक-एक मोहरा उठाते समय, उठाने और वापस लाते समय, जमीन से लगा कर वापस आने के लिए कहता हूँ तो इसका मतलब है कि धीरे-धीरे इस का क्रम चले ताकि रीढ़ की हड्डी प्रभावित होकर उसमें लचक पैदा हो जाए। लचक ही जवानी है और सख्ती बुढ़ापा है, लचक सेहत और सख्ती बीमारी है। जब बूढ़ा होकर आदमी झुक जाता है, तब उसमें यही तो कमी आती है कि रीढ की हड्डी में लचक नहीं रहती, निर्बलता के कारण झुकाव आगे को हुआ, तो फिर रीढ़ की हड्डी लचक की कमी की वजह से सीधी नहीं हो सकती। कमर तब झुकी की झुकी रह गयी। दूसरी विशेषता इस आसन में यह है कि जब जालन्धर बन्ध लगता है तो गले की ग्रन्थियाँ (थाईरेट और पेराथाईरेट ग्लैन्डस) और अन्य ग्रन्थियाँ, जो लो लबाब व थूक बनाने की जिम्मेदार हैं, प्रभावित होती हैं। लबाव व थूक ठीक बनने लगता है। यह वही थूक व लबाव है जिसके भोजन के साथ मिलकर भीतर जाने से भोजन ठीक प्रकार हज्म होता है। पाचन शक्ति सुचारू रूप से काम करती है। कब्जी जैसी बीमारियों का नामोनिशाँ नहीं रहता। इसलिए यह सदा नौजवान रखने वाला आसन है। जवानी व बुढ़ापे का सम्बन्ध उम्र के साथ नहीं, बल्कि जिसकी पाचन शक्ति ठीक काम करती है, वह १०० साल की उम्र में भी जवान है। पाचन शक्ति के बिगड़ जाने से २५ साल की उम्र में भी बूढ़ा हो जाता है। कवि के शब्दों में :—

जो आकर न जाए वह बुढ़ापा देखा,
जो जाकर न आये वह जवानी देखी।

लेकिन इस आसन का यह दावा है कि—

जो जाकर भी आये वह जवानी देखी,
जो आकर भी जाए वह बुढ़ापा देखा।

इस लिए सदा युवा रहने वाले के लिए यह आसन बड़ा लाभदायक है। गले के भी तमाम रोग इससे दूर होते हैं। अंड कोष फूल जाने व हर्निया के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लिए बहुत लाभप्रद है। जो आदमी पैदल चलकर थक गया हो, घर पहुँच कर इस आसन को कर ले, उसकी थकावट का नामोनिशां न रहेगा। थकावट आखिर है क्या ? खून का बहाव बहुत देर तक पाँव की ओर रहना, पाँव और पिंडलियों का भारी हो जाना। जब सर्वांग आसन किया जाता है, तब रक्त का प्रवाह नीचे की ओर से ऊपर जाकर सारे शरीर में सामान्य स्थिति पैदा कर देता है। जब किसी हिस्से में भारीपन न रहे, थकावट कैसी ? जो सरकारी नौकर व आफिस में सारा दिन कुर्सी पर बैठकर काम करते हैं और चाय पी-पी कर अपनी थकान दूर करने की कोशिश करते हैं, वह जरा इस नुस्खे को भी दफ्तर से घर आने पर १० मिनट के लिए आजमाकर करके देखें, उन्हें मालूम हो जाएगा कि जितनी ताजगी इस आसन के करने से मिलती है, वह दुनियाँ की तमाम बनावटी ताजगियों से कहीं उत्तम है। इस पर कोई पैसा-टका भी खर्च नहीं होता, केवल १० मिनट का त्याग चाहिए। क्योंकि

प्रभु की जो भी न्यामत भारी हैं,
वह मिलती बेकीमत सारी हैं।

विपरीतकरण के सम्बन्ध में तो यहाँ तक कहा गया है कि "जिसने की विपरीत करणी, उसने और वर्जिस क्या करनी।" सर्वांग आसन के नाम से ही प्रकट है कि यह सब अंगों को प्रभावित करने वाला कायाकल्प के समान है।

तेरहवाँ मत्स्य आसन :—मत्स्य कहते हैं मछली को। विधि :— पद्म आसन लगा लें। दायीं टाँग को मोड़ कर हाथ की सहायता से दाँयें पाँव की एड़ी बाँयी टाँग के ऊपर, बाँयी टाँग की जड़ में लगा दें। फिर, इसी तरह बाँयी टाँग मोड़कर, बाँये पाँव की एड़ी, दाँयी टाँग की जड़ में टिका दें। यह स्थिति कायम रखते हुए पीठ पर इस प्रकार लेटें कि सिर की चोटी जमीन पर टिक जाए। कन्धों से लेकर कमर तक का भाग ऊपर उठा रहे, छाती ऊपर की ओर उभरी रहे। दाँये हाथ से बाँये पैर का अंगूठा और बाँये हाथ से दाँये पैर का अंगूठा पकड़ लें। सारा शरीर एक बार सिर की चोटी और नितम्बों के सहारे टिक जाएगा। फिर, घुटनों को जमीन पर लगाने का यत्न करें लेकिन हाथों से पाँव के अंगूठे मजबूती से पकड़े रहें। वीर्य की ग्रन्थियों पर जबर्दस्त खिचाव पड़ेगा। वह हिस्सा जो टाँगों और पेट को आपस में मिला रहा है जिसे पंजाबी में खुच्च कहते हैं, विशेष तौर पर प्रभावित होगा, बशर्ते घुटनों को जमीन पर लगाने का प्रयत्न किया जाए, घुटने जरा मुश्किल से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ही जमीन पर लगते हैं पर अभ्यास से क्या नहीं हो सकता ?

लाभ—गर्दन, पेट और छाती के विकार दूर होते हैं, गले की बीमारियों में खास तौर पर लाभदायक है। रीढ़ की हड्डी में भी लचक आती है। नितम्बों पर विशेष दबाव पड़ने से इनके दोष दूर होते हैं। कब्जी को तोड़ने के लिए भी इस से मदद मिलती है। अपान वायु नीचे से सुभीते से निकलने लगती है। इस आसन को १० मिनट तक करने से ज़्यादा लाभ की आशा रखी जा सकती है। अगर पानी में इस स्थिति में तैरने का अभ्यास हो जाए तो यह आसन बहुत लाभप्रद हो सकता है।

चौदहवां-योगमुद्रा :—मुद्रा शब्द से अभिप्राय क्लेशों और रोगों का मर्दन, अर्थात्, विनाश। मुद्राएँ कई प्रकार की हैं पर यहाँ एक से ही मतलब है।

विधि—यह मुद्रा दो प्रकार से हो सकती है। पहली पद्मासन में बैठ जाएँ, दोनों भुजाओं को पीठ के पीछे ले जाकर दांयें हाथ से बाँयें हाथ की कलाई पकड़ लें और सिर को सामने झुकाते चले जाएँ। श्वास बाहर निकलता जाए। यहाँ तक कि मत्था जमीन पर लग जाए, लेकिन पीछे से नितम्ब न उठें, फिर, धीरे-धीरे श्वास अन्दर भरते हुये सिर को वापस लाएं और कई वार ऐसा करें। (दूसरी विधि) पद्म आसन में बैठ जाएं। दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बना कर दाँये हाथ की मुठ्ठी बाँये पाँव की एड़ी पर और बाँये हाथ की मुट्ठी दाँये पाँव की एड़ी पर रखकर दबाव दें, सिर को सामने झुका कर ठोड़ी को जमीन के साथ लगाने का प्रयत्न करें। यह स्थिति पहली स्थिति से कुछ कठिन है। ठोढ़ी सुभीते से जमीन पर नहीं टिकती, माथा या नाक तो लग जाते हैं। यह स्थिति जितनी मुश्किल है उतनी ही अधिक लाभदायक है।

लाभ—पेट के विकार ठीक होते हैं। शरीर के पीठ सम्बन्धी भाग प्रभावित होते हैं, कब्ज दूर होती है, भूख खूब लगती है। दूसरी विधि से शीघ्र लाभ प्राप्त होते हैं।

पन्द्रहवाँ शव-आसन है, जिसका वर्णन ३६ वें अध्याय के प्रारम्भ में हो चुका है।

❀❀

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३९

(१६) शीर्ष आसन

शव आसन सहित पन्द्रह आसनों का वर्णन पिछले अध्यायों में हो चुका। अब १६ वाँ आसन है जो सब आसनों का राजा है। यह एक आसन करने से ही कई आसनों का लाभ पहुँच जाता है। जितना अधिक इसका महत्त्व है उतना ही इसकी विधि को समझना जरूरी है। गल्त ढंग के करने पर हानि की सम्भावना है। इसलिए करने से पहले किसी जानकार की देख रेख का प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

विधि—यह कई तरीकों से किया जाता है। सब तरीकों के करने से लाभ लगभग एक ही तरह के होते हैं। जब शरीर का बोझ माथे पर पड़ रहा हो तो उसे कपाल आसन कहते हैं, जब सिर की चोटी पर पड़ रहा हो तो उसे शीर्ष आसन कहते हैं। यहाँ उसी तरीके का जिक्र किया जाएगा जो आम तौर पर मशहूर है। इसके करने के लिये एक नर्म गदेले या चादर की कई तहें लगाकर उसे सामने की ओर रख लें। इसी पर हाथ और सिर को टिकाना है, सिंहासन व वज्रासन की स्थिति में बैठ जाएं। वह इस तरह कि घुटने दोनों जमीन पर टिके हों, पंजे जमीन पर और एड़ियाँ खड़ी हुई, नितम्ब एड़ियों पर टिके हुए, रीढ़ की हड्डी और गर्दन सीधी रखकर एक दो कुम्भक प्राणायाम करके श्वास को शान्त कर लें। फिर, दोनों हाथों की अंगुलियाँ आपस में फंसाकर हाथों का पृष्ठ भाग गदेले व तहशुदा चादर पर रख दें, दोनों कोहनियाँ भी इस तहशुदा पर टिक जाएं। सिर को गुँथी हुई अंगुलियों के मध्य इस तरह रखें कि सिर की चोटी ठीक बीच में आ जाए। अब नितम्बों को एड़ियों से उठा लें और जरा पाँवों को आगे करते जाएं, पाँव सिर के समीप आ जाएं। फिर, जरा पंजों को जमीन से उठा लें। शुरू-शुरू में गिरने का डर रहेगा। इसलिए या तो कोई दूसरा आदमी पास में खड़ा कर लें जो जरूरत पड़ने पर थोड़ा सहारा दे दे, अथवा प्रारम्भ में दीवार का सहारा ले लें। बाद में, जब करने का ढंग आ जाए तो इन सहारों की जरूरत नहीं रहेगी। पाँव के पंजे जमीन से उठाकर एड़ियाँ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नितम्बों के साथ लगाने का यत्न करें। अगर पहले दिन इतना ही कर पायें तो काफी रहेगा। कुछ दिन इतना ही अभ्यास करें। जब इस पर काबू पा लें तो फिर घुटनों को ऊपर की ओर सीधा करें। जब घुटने भूमि के साथ सन्तुलित हो जाएं, तब पाँवों को आकाश की ओर उठाना शुरू कर दें। यहाँ तक कि, टाँगें एक दम सीधी हो जाएँ। सारा बोझ कोहनियों और सिर की चोटी पर आ जाएगा। पहले दिन केवल १५ सैकेन्ड करना ही काफी होगा। फिर, धीमे-धीमे समय बढ़ाते जायें। १० मिनट तक इस समय को बढ़ाया जा सकता है। इससे अधिक करने के बारे में कुछ योगियों का मतभेद है। पर बहुपक्ष का यही विचार है कि १० मिनट से अधिक करना लाभप्रद नहीं होता। यह भी ध्यान रखें कि तंग कपड़े पहन कर यह आसन न करें। ढीला पायजामा हो अथवा सबसे अच्छा तो लंगोट वा कच्छे का ही प्रयोग हो। अपनी शक्ति के अनुसार इस स्थिति में रुककर फिर उसी क्रम से वापस आयें, जिस प्रकार ऊपर गये थे। पहले टाँगों को दोहरा करें, घुटनों को मोड़ कर भूमि के साथ सन्तुलित करें, फिर घुटने पेट के साथ लगा दें और फिर पाँव के पंजे जमीन पर लगा लें, पर एकदम सिर को ऊँचा न उठायें, अपितु पहले सिर को गूँथी हुई अंगुलियों के बीज रखते हुये दाँयी ओर इस तरह घुमायें कि दाँया कान हाथ की तलियों को छूने लगे, सिर को बीच में ले आयें, फिर, बाँयी ओर इस तरह घुमायें कि बाँया कान हाथों के बीच आ जाये। फिर, सिर को वापस लाकर एड़ियों पर सिंहासन की तरह बैठ जायें और तीन-चार मिनट कुम्भक प्राणायाम करके उठ जायें और सामान्य श्वास प्रश्वास में प्रवृत्त हो जायें। अगर दूसरे आसन स्थान करने हों तो सब के बाद ही इसेकिया जाये।

जब शीर्षासन में खड़े होने का खूब अभ्यास हो जाये तो फिर टाँगों को एक-एक कर के आगे-पीछे भी झुका सकते हैं। उठीं हुई टाँगों से ही पद्म आसन लगा सकते हैं। पद्म आसन लगाकर घुटनों को पेट के साथ लगाना, फिर ऊपर उठाना—इसे कई बार दोहराया जा सकता है।

लाभ—इस आसन को यदि सर्व रोग नाशक भी कह दें तो कोई अत्युक्ति न होगी। पर केवल एक दिन कर लेने से रोगों का नाश नहीं होगा प्रतिदिन नियमपूर्वक करने से भूख बढ़ेगी, पाचन शक्ति ठीक होगी, कब्जी टूट जायेगी, मधु मेह नहीं रहेगा, रक्त विकार, नेत्र विकार, जुकाम, सिरदर्द बवासीर, और पेशाब सम्बन्धी सब रोग दूर हो जायेगे। जीवन शक्ति की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वृद्धि होगी। सारे शरीर का रक्त गतिशील हो जायेगा और विजातीय द्रव्य जहाँ भी रुके होंगे, हिल जायेंगे, फेफड़ों में पहुँच कर उनका दाह कर्म संस्कार हो जाएगा। कार्बन डायआक्साइड का रूप धारण करके बीमारी और बुढ़ापे के दोष धीरे-धीरे बाहर निकलते जायेंगे।

गुरुकुल काँगड़ी के मुख्याधिष्ठाता स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी ने इस आसन के सम्बन्ध में अपने अनुभव लिखते हुए कहा था कि "शीर्षासन से मेरी भूख बढ़ी, स्वप्न दोष की शिकायत दूर हुई, आँखें खुलती सी अनुभव होने लगीं, सिर दर्द को काफी आराम हुआ और उसका यह एक बढ़िया नुस्खा मैंने बनाया हुआ था, कब्जी न रही, शरीर हल्का और फुर्तीला हो गया, प्राणायाम करने में बड़ी सुविधा होती थी। हर तरह की थकावट दूर होती थी और काम करने में दिल लगता था।

इस अनुभव से पाठकों को लाभ उठाना चाहिये।

❀❀

४०

योग का चौथा अंग—प्राणायाम

महर्षि पतंजलि ने योग के आठ अंगों में आसन के साथ प्राणायाम को जोड़ दिया है। मैं यहाँ तक कह सकता हूँ कि प्राणायाम के बिना आसन अधूरे हैं। यह जोड़ी हमेशा साथ-साथ चलती है। जैसे यम-नियमों की जोड़ी का पूरी तरह पालन करने से लाभ होता है, इसी तरह प्राणायाम करने वालों को यह ध्यान रखना होगा कि वही साधक इनसे पूरा लाभ उठा सकेगा जो आसन और प्राणायाम—दोनों का अभ्यास करेगा। आसन-प्राणायाम करते हुये भी कई लोग रोगी रहते हैं। इसका एकमात्र कारण यम-नियमों का पालन न करना है। इससे आसन प्राणायाम का महत्व भी कम हो जाता है। अखिल भारतीय योग स्वास्थ्य गोष्ठी के अन्तर्गत प्राणायाम उपसमिति के संयोजक श्री एस० पी० मण्डल ने अपनी रिपोर्ट में कहा था—

"पर्याप्त खोज और अनुसंधान के बाद प्राणायाम उपसमिति ने यह सुझाव दिया है कि प्राणायाम प्रारम्भ करने से पहले साधक को प्राणायाम के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सम्बन्ध में मूल भूत सिद्धान्त अवश्य सीखने चाहियें। उपसमिति की यह माँग है कि प्राणायाम किसी प्राणायाम शिक्षक की देख-रेख में ही करने चाहिएं।" इससे आगे उपसमिति कहती है "कुछ प्रारम्भिक व्यायाम अर्थात् आसन करने के बाद अथवा सूर्य नमस्कार के बाद ही किसी जानकार की देख-रेख में निम्नलिखित प्राणायाम करने चाहियें :—

(१) अनुलोभ विलोम, प्राणायाम कुम्भ के बिना (२) भ्रमरी (३) सूर्य भेदन (४) उज्जायी (५) शीतकारी (६) शीतली (७) भस्त्रिका (८) मूर्च्छा (९) प्लाविनी।

उप समिति के निश्चयानुसार पहले मूल भूत सिद्धान्तों का ज्ञान आवश्यक है। दृढ़ नींव पर ही पक्का भवन खड़ा हो सकता है। ये सिद्धान्त तीन शीर्षकों के अन्तर्गत हैं —(१) प्राणायाम कहाँ करने चाहिएं (२) क्यों करने चाहियें और (६) प्राणायाम करने से पहले या करते समय या करने के बाद किन बातों का ध्यान रखा जाय।

(१) प्राणायाम कहाँ करने चाहिएं—खुली और शुद्ध वायु में ही प्राणायाम करने चाहियें। इसके लिए खुले मैदान बाग, नदी, तट, इत्यादि उत्तम स्थान हैं। बस्तियों में बागों का वही स्थान है जो हमारे शरीर में फेफड़ों का है। जहाँ बाग न हों, खुला मैदान हो जहाँ लोग टट्टी पेशाब न करते हों, उसका भी उपयोग हो सकता है। जहाँ यह भी न हो, वहाँ घर की ऊपर की छत से काम चलाया जा सकता है। जहाँ मिलों का कोयला और धूँआ लगातार हो वहाँ प्राणायाम करने से लाभ के बदले हानि ही होगी। इसलिये स्थान का ध्यान रखना सर्वाधिक मुख्य है। केवल खुली हवा का ही ध्यान काफी नहीं हैं, बल्कि यह भी कि हवा स्वच्छ भी हो। कोई गन्दा व दुर्गन्ध युक्त स्थान अनुचित रहेगा। बाग में भी जनता की टट्टियों और मैले के स्थान से जहाँ दुर्गन्धि आती है बच कर प्राणायाम करने से ही लाभ हो सकता है। बागों में अगर सिगरेट-बीड़ी पीने पर पावन्दी लगा दी जाय, तो और भी अच्छा होगा।

(२) प्राणायाम क्यों करें ? महर्षि पतंजलि के निम्न सूत्र से इसका पूरा उत्तर मिल जाता है :—

तत् क्षये प्रकाशावणम्

अर्थात् प्राणायाम करने से हमारे भीतर के प्रकाश पर जो आवरण हैं वे नष्ट हो जाते हैं। हमारे शरीर, मन बुद्धि पर रोग, चिन्ता और अज्ञान के जो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पर्दे पड़े हैं वे हट जाते हैं, जैसे किसी अँधेरे कमरे में बिजली का बल्ब जलाने से अँधेरा स्वयं भाग जाता है, वैसे ही प्राणायाम से हमारे भीतर प्रकाश हो जायगा। हमारे शरीर, मन और बुद्धि नीरोग निश्चिन्त, पवित्र और सम्पूर्ण शक्तियों के भंडार बन जायेंगे। योग के ग्रन्थों में यह भी लिखा है—

प्राणायामात् पुष्टि र्गात्रस्य बुद्धि स्तेजो यशो बलम्।
प्रवर्धन्ते मनुष्यस्य तस्मात् प्राणायाम माचरेत्॥

अर्थात्, प्राणायाम से शरीर के अंग पुष्ट होते हैं। बुद्धि, तेज, यश और बल, इन सबकी वृद्धि होती है। इसलिये प्राणायाम अवश्य करना चाहिये। इस सम्बन्ध में उपनिषद् वाक्य इस प्रकार हैं :—

प्राणो वै बलं तत् प्राणे प्रतिष्ठितम्

प्राण ही बल है क्योंकि प्राणों में ही बल का निवास है।

प्राणायाम का शब्दार्थ ही यह है कि प्राणों को लम्बा करना। अनजाने भी हर मनुष्य प्राण तो अन्दर ले जाता है और अपान को बाहर निकालता है। इसके बिना तो जीवन ही कायम नहीं रह सकता, पर प्राण अपान की गति ओर की विशेष ध्यान देने और इन दोनों की गति को लम्बा करने को ही प्राणायाम कहते हैं। आम तौर पर श्वास प्रश्वास लेने से अपने फेफड़ों के बहुत कम भाग को हम प्रभावित कर सकते हैं पर प्राणायाम से फेफड़ों का वह भाग भी प्रभावित होता है जो सामान्यतः अप्रभावित रह जाता है। योगियों के पास प्राणायाम हो एक विशेष गुण है जो सामान्य पुरुषों के पास नहीं है।

❀❀

४१

प्राणायाम क्यों करना चाहिए ?

फेफड़ों में, एक योगी के कथानुसार, ७ करोड़ २२ लाख वायु कोष हैं। इनमें से एक साधारण मनुष्य, आम हालत में, दो करोड़ वायु कोषों को काम में लाता है, शेष ५ करोड़ २२ लाख बेकार रहते हैं। इनका प्रयोग न होने से इनमें मैल भर जाता है। यही मैल नाना प्रकार की बीमारियों का कारण बनता है। इसलिये, बीमारियों से बचने के लिये प्राणायाम जरूरी है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक अन्य स्थान पर प्राण के नाप के सम्बन्ध में लिखा है कि साधारण मनुष्य ४०० घन इंच वायु १ मिनट में अपने अन्दर भर सकता है। पर प्राणायाम करने से ६२२ घन इञ्च वायु १ मिनट में अपने अन्दर भर सकता है। १ मिनट कुम्भक प्राणायाम करने से १५ श्वासों की बचत हो जाती है। इस प्रकार प्राणायाम से आयु दीर्घ होती है। महर्षि चरक ने लिखा है कि प्राणों को सुरक्षित रखने से मनुष्य दीर्घ आयु प्राप्त करता है। दीर्घायुष्य के अभिलाषी व्यक्ति को प्राणायाम द्वारा अपने अन्दर प्राण शक्ति को अवश्य रोकना चाहिए। प्रश्न उठेगा कि जब आयु निश्चित है तो कम अधिक कैसे हो सकती है? इसका उत्तर है कि आयु महीनों और वर्षों के रूप में निश्चित नहीं है, किन्तु, प्राणों के रूप में निश्चित है। जितना हम प्राणों को कम खर्च करेंगे, उतने ही हमारे प्राण बचत में रहकर आयु को लम्बा करेंगे। हमारे श्वास की स्वाभाविक गति कुछ इस प्रकार है कि बैठे हुये जितने समय में हम १२ श्वास लेंगे, भोजन करने से उतने समय में १० श्वास लिये जायेंगे, गाने और रोने में २० श्वास, चलते समय २४ श्वास, सोते हुये ३० श्वास, क्रोध करते हुए ४८ श्वास, विषय भोग करते हुये ६५ श्वास खर्च होते हैं। अर्थात्, सबसे अधिक श्वास का खर्च वीर्य नाश के समय होता है। इसीलिये व्यभिचारी मनुष्य की आयु लम्बी नहीं हो सकती। इस सिद्धान्त की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि जब हम दूसरे प्राणियों की आयु पर दृष्टिपात करते हैं, तो पता चलता है कि जो प्राणी जितने श्वास ज्यादा निकालता है, उसकी उतनी ही आयु कम होती है। जैसे खरगोश एक मिनट में ३८ श्वास बाहर निकालता है, इसकी औसतन आयु, सबसे कम, अर्थात् ८ वर्ष है। इसके मुकाबले में कछुआ, एक मिनट में केवल ५ श्वास निकालता है। उसकी औसतन आयु ५० वर्ष है। १ महर्षि चरक ने अपने ग्रन्थ "आयुर्वेद" में लिखा है कि "जो मनुष्य ज्ञानवान्, विचारशील, तपस्वी व संयमी है, और जो प्राणायाम आदि योगाभ्यास में सदा तत्पर रहता है, उसे कभी भी रोग नहीं सताते, श्वेतर श्वेता उपनिषद् में लिखा है :—

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः, प्राप्तस्य योगाग्नि मयं शरोरम्।

जो मनुष्य योगाभ्यास द्वारा अपने शरीर को योग अग्नि से तपा लेता है, उसे न रोग होते हैं, न बुढ़ापा आता है और न ही वह अकाल मृत्यु को प्राप्त होता है। एक अंग्रेज विद्वान् के शब्दों में "बीमारी और मौत पर विजय पाने के लिये प्राणायाम अत्यावश्यक हैं।" मनु महाराज अपनी स्मृति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में प्राणायाम के विषय में लिखते हैं :—

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ।।

जिस प्रकार सोना, चाँदी आदि धातुओं को अग्नि की भट्टियों में तपाने से उनके सब दोष नष्ट हो जाते हैं, इसी प्रकार प्राणों का व्यायाम करने से इन्द्रियों के सब दोष अथवा शरीर सम्बन्धी सब रोग नष्ट हो जाते हैं।

कितनी सुन्दर यह उपमा है। दूसरे शब्दों में यह तप का मार्ग है। ऋग वेद के एक सूक्त में प्राणायाम का वर्णन इस प्रकार आया है :—

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्यआवातु परा अन्यो वातुयद्रपः ।।

अर्थात्, हमारे शरीर में दो प्रकार के प्राण और अपान—नाम के वायु चल रहे हैं। इन दो में से एक "सिन्धु", अर्थात्, हृदय तक चलता है और दूसरा बाहर के वायुमंडल तक है। प्राणायाम का अभ्यासी पुरुष उनमें से एक, अर्थात्, प्राण वायु लेने से अपने भीतर आरोग्य, उत्साह और जीवन शक्ति को ले आये। दूसरे, अर्थात्, अपान वायु जो तेरे अन्दर निर्बलता और रोग है, उन्हें शरीर से बाहर ले जाये।" इस मंत्र में हृदय को "सिन्धु" नाम से कहा गया है। सिन्धु समुद्र को कहते हैं। हृदय की सिन्धु से उपमा इसलिये दी गयी है कि, जिस प्रकार, समुद्र में आकर सब नदियाँ गिरती हैं, इसी प्रकार हमारे शरीर में रक्त वाहिनी नाड़ियाँ—जिन्हें "शिरा" कहते हैं, जिन्हें रक्त की नदियाँ कहा जा सकता है, वे सबकी सब नदियाँ हमारे हृदय रूपी समुद्र में आकर गिरती हैं। जिस प्रकार सूर्य की किरणें समुद्र के खारी पानी को भाप बनाकर, आकाश ले जा, उसे मधुरता देती हैं, वापस उसे भूमि पर बरसा देती हैं, इसी प्रकार प्राणायाम रूपी सूर्य की किरणों से हमारे हृदय रूपी समुद्र का सारा रक्त फेफड़ों में जाकर, शुद्ध और निर्मल हो जाता है। वह शुद्ध रक्त धमनियों, अर्थात्, नाड़ियों द्वारा शरीर में वापस जाकर उसे स्वस्थ और बलवान् बना देता है। वेद ने हृदय को सिन्धु से उपमा देकर कितने सुन्दर ढग से प्राणायाम के लाभों को प्रकट कर दिया है। ऋग्वेद में इससे अगला मंत्र प्राणायाम पर और भी अधिक प्रकाश डालता है :—

आ वात वाहि भेषजं विवात वाहि यद्रपः ।
त्वहि विश्व भेषजो देवानां दूत ईयसे ।।

इसका शब्दार्थ है—(वात) हे प्राण वायु! तूँ हमारे अन्दर (भेषजं)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रोगों को दूर करने वाली औषध शक्ति को ले आ, और हे अपान वायु! तू (यद् रपः) हमारे भीतर जो अनेक प्रकार के रोग व निर्बलतायें हैं, उन्हें (विवाहि) बाहर निकाल ले जा, क्योंकि हे प्राण शक्ति! तू निश्चय, से, (विश्व भेषजम्) संसार भर के सम्पूर्ण रोगों की अचूक औषधि है, और तू (देवानाँ दूतः) देवताओं, अर्थात्, दिव्य शक्तियों का दूत बन कर, हमारे भीतर (ईयसे) प्रवेश कर रहा है।

इस वेद मंत्र को पढ़कर प्राणायाम के महत्त्व का पता चलता है। कितने सुन्दर ढंग से वेद ने प्राणायाम करने की प्रेरणा की है। केवल प्राणायाम को ही सम्पूर्ण रोगों की अचूक औषधि बताया है। इतना ही नहीं, प्राणायाम को देवताओं का दूत भी कहा गया है। मैं समझता हूं, प्राणायाम आरम्भ करते और उसे समाप्त करते समय इस वेद मंत्र का पाठ करने से हमारे मन पर बड़ा प्रभाव पड़ेगा। प्राणायाम न केवल शरीर किन्तु मन और बुद्धि को भी पवित्र और शक्तिशाली बनाता है।

साम वेद में भी प्राणायाम की महिमा कही गयी है। निम्नलिखित मंत्र में प्रार्थना है:—

वात आवातु भेषजं शम्भु मयोभू नो हृदे।
प्रन आयूंषि तारिश॥

अर्थ—यह भीतर और बाहर जाने वाले वायु हमारे हृदय के लिये औषधि रूप होकर कल्याणकारी हों और हमारी आयु को भी लम्बा करने वाला हो।

❀❀

४२

प्राणायाम के सम्बन्ध में कुछ निर्देश

प्राणायाम करने से पहले व करते समय व करने के बाद जिन बातों का ध्यान रखना चाहिये, हम उनका वर्णन करते हैं। इस सम्बन्ध में योग ग्रन्थों में लिखा है।

प्राणायामादि युक्तेन सर्व रोगक्षयो भवेत्।
अयुक्ताभ्यास योगेन सर्व रोग समुद्भव॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थ—विधिपूर्वक प्राणायाम करने से हर प्रकार के रोगों का नाश होता है और विधि रहित प्राणायाम करने से सब प्रकार के रोग पैदा हो जाते हैं।—इसलिये प्राणायाम करने से पहले हमें निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए:—

(१) प्राणों को प्रवाहित करने के लिये, भोजन और जल की नाड़ियों की तरह तीन प्रकार की नाड़ियाँ हैं :—

(२) **पिंगला**—नाक में दाँयी ओर से वायु श्वास प्रश्वास चलाती है। इसे सूर्य नाड़ी और यमुना नाड़ी भी कहते हैं।

(३) **इडा नाड़ी**—नाक के बाँयी ओर से जो श्वास प्रश्वास चलाती है। इसे चन्द्र नाड़ी व गंगा नाड़ी भी कहते है।

(४) **सुषुम्णा नाड़ी**—नाक के दोनों द्वारों से जो एक साथ श्वास प्रश्वास चलाती है। इसे सरस्वती नाड़ी भी कहते हैं।

इन तीनों का मेल जब भृकुटि में होता है तो इसे "त्रिवेणि" कहते हैं। जब तक ये नाड़ियाँ सुचारू रूप से अपना काम न करें, तब तक प्राणायाम ठीक प्रकार से न हो सकेगा।

योग ग्रन्थों में लिखा है।

मलाकुलासु नाडिषु मारुतो नैव मध्यग :

अर्थात्, मल से युक्त नाड़ियों में प्राण कभी भी भली प्रकार प्रवेश नहीं कर सकता जो प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य है। यह भी लिखा है—

शुद्धिमेति यदा सर्वं नाड़ी चक्रं मला कुलम्।
तदव जायते योगी प्राण संग्रहणे क्षमः॥

अर्थ–मल से युक्त सारा नाड़ीचक्र जब शुद्ध हो जाता है, तब ही योगी जन प्राणायाम के द्वारा प्राणों को भली प्रकार अन्दर धारण कर सकते हैं। स्पष्ट है, इन नाड़ियों को शुद्ध करना प्राणायाम प्रारम्भ करने से पहले अत्यावश्यक है। इन्हें शुद्ध करने के लिए आसन और क्रियाओं की जरूरत है। क्रियाओं में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण जलनेती व सूत्रनेती है। इनका विस्तृत वर्णन यथा स्थान आगे किया जाएगा। यहाँ इतना लिखना पर्याप्त है कि एक नासिका द्वारा जल चढ़ाकर दूसरी ओर से निकाल देना या मुँह की ओर से निकाल देना—इससे प्राण का मार्ग सुगम हो जाता है। इन नाड़ियों का सम्बन्ध हमारी रीढ़ की हड्डी के साथ भी है इसलिए ऐसे आसन करने से रीढ़ की हड्डी प्रभावित हो, जैसे, पश्चिमोत्तान आसन, पूर्वोत्तान आसन, सर्वांगासन, शीर्ष आसन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इत्यादि—भी जरूरी हैं, ताकि प्राण की गति विधि में कहीं रुकावट पेश न आए। ये आसन और क्रिया करने के बाद ही प्राणायाम करने का अधिकार मिल सकता है। आसन करने से पहले पेट का साफ होना और खाली होना जरूरी है। प्राणायाम के इच्छुक को अपना आहार शुद्ध और सात्विक बनाना जरूरी है, तभी पूरा लाभ प्राप्त हो सकेगा। प्राणायाम को सफल बनाने के लिए वीर्य रक्षा की ओर ध्यान देना परम आवश्यक है। जो ब्रह्मचारी है वह स्वप्न में भी वीर्य नाश नहीं होने देता। जो विवाहित हैं उन्हें भी संयम से रहना चाहिए। गीता में कहा गया है "संयम रहित, विषयासक्त मनुष्य से प्राणायाम आदि योग साधन का होना अत्यन्त कठिन है यह मेरा निश्चित मत है" (अ०-६।१६) केवल पुस्तक से पढ़कर व किसी से सुनकर बिना समझे प्राणायाम नहीं करना चाहिए। प्राणायाम कई प्रकार के हैं। कई ऐसे हैं जिनके करने से शरीर में गर्मी पैदा होती है, कई ऐसे हैं जिनके करने से शरीर में सर्दी का अंश बढ़ जाता है कई ऐसे भी हैं जो न गर्म हैं और न सर्द। इसलिए प्राणायाम करने के लिए ऋतु, स्थान और प्रकृति—इन तीनों का ध्यान रखना जरूरी है। किस ऋतु में, अर्थात्, सर्दी, गर्मी, बरसात, इनमें कौन सा प्राणायाम उचित है, कैसा स्थान है, अर्थात्, गर्म, सर्द या सामान्य। प्रकृति, अर्थात्, वात, पित्त, कफ इनमें से कौन सा अंश प्रकुपित है, किस हालत में कौन सा प्राणायाम लाभ-प्रद है। इन तत्त्वों को समझ कर ही प्राणायाम करना उचित है।

किसी भी प्रकार के प्राणायाम को आरम्भ करने से पहले श्वास को बाहर निकाल देना जरूरी है। बाद में पूरक किया जाए। शीतली या शेतकारी प्राणायाम – जिसका वर्णन यथास्थान आएगा—को छोड़ कर लगातार श्वास प्रश्वास नासिका द्वारा लेना ही उचित है। आसन करने के बाद प्राणायाम करने से पहले श्वास प्रश्वास को सामान्य कर लेना भी जरूरी है। बिना रोक टोक श्वास को चलने देने से श्वास कुछ क्षणों में ही अपने आप सामान्य हो जाता है। जब तक श्वास सामान्य गति में न हो, तब तक प्राणायाम करना वर्जित है। प्राणायाम करने से पहले मन को शान्त कर लेना चाहिए। किसी प्रकार का बोझ, चिन्ता, घबराहट उस समय मन पर न हो। क्रोध और शोक की अवस्था में भी प्राणायाम निषिद्ध है।

प्राणायाम करते समय निम्न बातों का विशेष ध्यान रखा जाए :—

(१) पहले यह देखना है कि कौन से प्राणायाम हम खड़े होकर कर सकते हैं, कौन से चलते हुए और कौन से बैठकर, बैठक भी सुखासन में, पद्मासन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में, सिद्धासन में, या स्वस्तिका आसन में। कौन सा प्राणायाम अधिक लाभ प्रद रहेगा। एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्राणायाम के साथ बन्ध लगाना बड़ा जरूरी है। इससे प्राणायाम शक्तिशाली बन जाता है। बन्ध तीन हैं (१) **मूल बन्ध**-अर्थात्, जननेन्द्रिय और गुदा को ऊपर की ओर खींच कर सुकेड़ना उतनी देर के लिए जितनी देर श्वास सुगमता से रुका रह सके। (२) **जालंधर बन्ध**-इसमें ठोड़ी और गले के निचले भाग में जो गड्ढा-सा है, उसमें ठोड़ी को लगाकर रखना (३) **उद्यान बन्ध**- इसमें श्वास को बाहर निकाल कर पेट को सुकेड़ कर कमर के साथ लगा देना और इतनी देर श्वास रोकना कि दम घुटने न लगे।

प्राणायाम करते समय लम्बे, गहरे, धीरे, पतले और सूक्ष्म श्वास लेने चाहिएं। पतले और सूक्ष्म से मतलब है—श्वास के भीतर बाहर आते जाते कोई आवाज न आए। कुंभक करते हुए भी कभी भी दम घुटने की स्थिति न आने पाये। अन्यथा, लाभ की अपेक्षा हानि की सम्भावना है। प्राणायाम के सम्बन्ध में एक अन्य सूक्ष्म रहस्य की बात मैं यहाँ लिखना जरूरी समझता हूँ। वह यह कि जिस वायु को आक्सीजन कहा जाता है—जो हमारे शरीर को जीवन प्रदान करती है। इसे ही कुछ लोग प्राण समझ लेते हैं। आक्सीजन और प्राण में बड़ा भारी भेद है। प्राण भगवान् की दी हुई एक ऐसी शक्ति है जो हमारे जीवन का आधार है, न कि आक्सीजन। अगर आक्सीजन पर ही जीवन आधार होता तो विज्ञान ने ऐसे उपकरण तैयार कर लिये हैं, जिनके द्वारा जब व्यक्ति के भीतर पर्याप्त मात्रा में आक्सीजन न जा रही हो उसे आक्सीजन जरूरत के अनुसार दी जा सके। अगर आक्सीजन पर ही जीवन निर्भर होता तो वैज्ञानिक किसी को मरने न देते। पर प्राण की यह अद्भुत शक्ति हमारे गले में निवास करती है। नासिका के छेद तो केवल बाहर के वायु को भीतर ले जाने और भीतर की गन्दी वायु को बाहर ले जाने के मार्ग मात्र हैं। वस्तुतः, प्राणायाम तो गले में जो उपकरण प्रकृति ने बना रखा है उसके द्वारा ही होता है। आक्सीजन अन्दर आता रहे, कार्बन डायोक्साईड बाहर जाता रहे, इसका हमें पता ही न लगे, यह काम तो प्राणायाम के साथ अपने आप चलेगा ही। गीता (अ० ४ श्लोक २९) के शब्दों में "प्राण को अपान में और अपान को प्राण मे आहुति के तौर पर होम करने की जरूरत है।" इसलिए प्राणायाम करते समय इस प्राकृतिक उपकरण का विशेष ध्यान रखने की जरूरत है। यह न समझ लें कि केवल आक्सीजन और कार्बन डायोअक्साइड

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

को अन्दर ले जाने और बाहर निकालने को ही प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम के साथ-साथ हमें आहार ऐसा करना चाहिए जिससे नाड़ियों में मल न भरे, अर्थात्, हल्का और सात्विक भोजन हो।

❀❀

४३

पहला प्राणायाम--अनुलोम विलोम

बिना कुम्भक इन प्राणायामों को करने के लिये सिद्ध आसन, पद्म आसन, या स्वस्तिका आसन में बैठना चाहिये। गर्मी का मौसम हो तो नासिका के बांये छिद्र से श्वास को धीरे-धीरे अन्दर भरना चाहिये, सर्दी का मौसम हो तो बाँये छिद्र से भरना अच्छा रहेगा। दाँये हाथ को उठाकर नासिका के दोनों छिद्रों के दाँये बाँये इस प्रकार रखें कि हाथ का अंगूठा दाँये छिद्र की ओर हो और अंगुलियाँ बाँयी तरफ हों। जब बाँये स्वर से श्वास को अन्दर भरने लगें तो अंगूठे से नासिका के दाँये छिद्र को दबाकर रखें। जब श्वास अन्दर भर लें, तब, चूँकि यह बिना कुम्भक करना है, इसलिये, हाथ के बीच की और उसके साथ वाली अंगुली से नासिक के बाँये छिद्र को दबा दें और दाँयी ओर से अंगूठे का दबाव हटा कर दाँये छिद्र से श्वास को बाहर निकाल दें। श्वास को अन्दर रोकना नहीं, न ही बाहर रोकना है। फिर दाँये छिद्र से श्वास भर कर इसे अंगूठे से दबा दें और बाँये से अंगुलियों का दबाव हटा कर बाँये से बाहर निकाल दें। इस प्रकार श्वास को बगैर अन्दर बाहर रोके बाँये से भरकर **दाँये छिद्र से और दाँये से भरकर बांये छिद्र के हाथ के अंगूठे और अंगुलियों की मदद लेते हुए लगातार अन्दर भरते और बाहर निकालते जाएँ। यह बड़ा सहज प्राणायाम है।**

लाभ—यह प्राणायाम फेफड़ों को तो शक्ति शाली बनाता ही है, रक्त की शुद्धि करता है, शरीर को स्वस्थ व नीरोग बनाता है, सिर दर्द और चक्कर आते हों तो उन को दूर करता है। पर जिस समय सिर दर्द और चक्कर आते हों उस समय नहीं करना चाहिये।

भ्रमरी प्राणायाम—यह एक ऐसा प्राणायाम है जिसे लेटकर, बैठकर व

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

खड़े होकर तीनों प्रकार कर सकते हैं। सबसे अच्छा तरीका लेट कर करना ही है। जिस समय कारोबार से थककर तबीयत उकता रही हो, तो शव आसन में सीधा पीठ के बल लेट जायें। दोनों भुजाओं को सिर के दांयें-बायें पीछे की ओर लिटा और फैलाकर रख दें। शरीर तना हुआ न हो। टांगें भी लम्बी और खोलकर रख दें। शरीर शिथिल कर दें। अब दोनों नासिका छिद्रों से श्वास को लम्बा और गहरा लेते हुये अन्दर भरते चले जायें। ५-७ सेकेंड अन्दर रोककर दोनों छिद्रों से भ्रमण की भर-भर जैसी आवाज करते हुये बाहर निकाल दें। इसे भ्रमरी प्राणायाम इसलिये कहते हैं क्योंकि भ्रमर की तरह इसमें भर-भर की आवाज निकालनी पड़ती है। इस प्राणायाम का प्रयोग प्रकृति अपने आप कर देती है। जब किसी आदमी को कोई चोट लगती व अन्य कष्ट होता है, तब वह स्वयंमेव भ्रमर की आवाज की तरह आवाज से श्वास को बाहर निकालता है। इस भ्रमर ध्वनि से रोगी को आराम प्रतीत होता है। पर भ्रमरी प्राणायाम का ज्ञान न होने के कारण वह प्रकृति की प्रेरणा से ही स्वयं करता चला जाता है। अगर जानबूझ कर इसकी पृष्ठ-भूमि को समझते हुये किया जाये, फिर भ्रमरी प्राणायाम की महिमा स्पष्ट हो जायेगी।

लाभ—यह प्राणायाम करने से शरीर की तमाम नाड़ियों में एक प्रकार का कम्पन होता है जो प्राणायाम समाप्त होने पर सारे शरीर को आनन्दित करता रहता है, मस्तिष्क की, शारीरिक व मानसिक थकानों को दूर करता है। हृदय के रोगियों के लिये इसका विशेष महत्त्व है।

(३) तीसरा प्राणायाम—सूर्य भेदन—अनुलोम विलोम प्राणायाम की तरह सिद्ध आसन, पद्म आसन या स्वस्तिका आसन में बैठकर दाँयें हाथ को उठाकर नासिका के छिद्रों के दाँयें बाँयें इस तरह रखें कि अंगूठा दाँयी ओर और अंगुलियाँ बाँयी ओर हों। इसमें दाँयी ओर से अर्थात् सूर्य नाड़ी से ही श्वास को भरें और बाँयी ओर से अंगुलियाँ छिद्र को दबा कर रखें। थोड़ी देर अन्दर रोक कर दाँयें छिद्र को अँगूठे से दबा कर बाँये छिद्र से श्वास को बाहर निकाल दें। अनुलोम विलोम की तरह उलट कर बाँये से श्वास नहीं भरना, अपितु, फिर बाँयें छेद को अंगुलियों से दबाकर दाँयें छेद से श्वास भरकर बाँये छेद से निकालते चले जायें। बार-बार ऐसा करना है। अनुलोम और सूर्य भेदी प्राणायाम में केवल यही अन्तर है कि यहाँ सिर्फ सूर्य नाड़ी से भरना है और चन्द्र नाड़ी से निकालना है, चन्द्र नाड़ी से लौट कर नहीं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भरना है।

लाभ—इससे शरीर में स्वाभाविक गर्मी पैदा होती है। सर्दी के मौसम में किया जाये तो सर्दी बहुत कम लगती है। सर्दी से ठिठुरता व्यक्ति इसका प्रयोग करे तो उसे आराम अनुभव होगा। अगर शरीर में वात प्रकुपित है तो यह प्राणायाम उसे ठीक कर देगा। शरीर को हानि पहुँचाने वाले जो कीटाणु हैं उनका नाश इस प्राणायाम से होता है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

चौथा-उज्जायी प्राणायाम—इसे गहरा श्वास भी कहा जा सकता है। बिना श्वास को रोके, साधारण रूप में रेचक और कुम्भक करने को उज्जायी प्राणायाम कहते हैं। एक योगी का कहना है कि उज्जायी प्राणायाम करने के लिये भी सूर्य भेदी की तरह सिद्ध, पद्म अथवा स्वस्तिका आसन में बैठकर दाँये हाथ को नासिका के छिद्रों के दाँये बाँये उसी तरह रखें जैसे सूर्य भेदी में, पर सूर्य भेदी में तो सिर्फ सूर्य नाड़ी से भरकर चन्द्र नाड़ी से श्वास बाहर निकालना है, पर उज्जायी में पहले सूर्य भेदी करके जरा रुककर, फिर चन्द्र नाड़ी, अर्थात् बाँये छिद्र से श्वास को भरते जायें और सूर्य नाड़ी, अथवा दाँयें छिद्र से बाहर निकालते जायें। दस बार यह करके फिर स्वर बदल दें। हाथ के अगूठे और अँगुलियों की मदद यथापूर्व लेते जायें। अनुलोम, विलोम, सूर्य भेदी और उज्जायी में थोड़ा-थोड़ा भेद है जिसे पाठक तीनों की विधि पढ़कर समझ सकते हैं। केवल स्वरों के हेर-फेर का ही अन्तर है, लेकिन, लाभ अलग-अलग हैं। उज्जायी प्राणायाम से प्रकुपित वात पित्त, कफ, सम अवस्था में रहते हैं, कोई तत्व प्रकुपित नहीं होता, शरीर के समस्त दोषों को दूर करने में यह सहायक है। भूख को बढ़ाता है और ईडा, पिंगला, सुषुम्णा, तीनों को शुद्ध करता है।

(५) शीत्करी प्राणायाम—इसी नाम से प्रसिद्ध है। ठंडक पैदा करने वाला यह प्राणायाम है। इसकी विधि है—सिद्ध, पद्म व स्वस्तिका आसन पर बैठ कर, ऊपर और नीचे के दाँतों को आपस में भींच दें और जबान को दाँतों की दीवार से लगा दें, जबान से दाँतों को दबा कर रखें, होंठ खुले रहें और वायु को मुँह के द्वारा भीतर लें, जैसे सर्दी लगने पर सी-सी की आवाज आती है। श्वास को लम्बा और गहरा अन्दर भर कर वायु को भीतर भर लें और मुँह बन्द कर दें, श्वास को गले से नीचे उतार दें, यथा शक्ति अन्दर रोकें, अर्थात्, जिससे दम न घुटने पाये, फिर नासिका द्वारा श्वास को बाहर निकाल दें, फिर मुँह की ओर यथा पूर्व भरें। इसे बार-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बार करें। कम-से-कम २०-२५ बार करने से लाभ प्रतीत होगा। इसके बाद आप को ऐसा अनुभव होगा, जैसे, आपकी जबान पर बनावटी बर्फ रखी हो।

लाभ—शरीर में गर्मी बढ़ी हुई हो, व पित्त प्रकुपित हो, इस से एक दम ठीक हो जाता है। गर्मी की ऋतु में अगर गर्मी सता रही हो, इस प्राणायाम के करने से गर्मी का वेग कम हो जाता है। यह प्राणायाम शरीर को सुन्दर व पुष्ट बनाता है। इससे दाँतों के रोग भी दूर होते हैं।

(६) शीतली प्राणायाम—शीत्करी और शीतली प्राणायाम, लगभग एक सदृश ही हैं, एक सदृश ही इन से लाभ हैं। ये दोनों गर्मियों में करने से ही लाभ देते हैं। इन दोनों प्राणायामों में श्वास अन्दर लेने के लिये मुँह का द्वार खोलते हैं, अन्यथा, प्रत्येक प्राणायाम में श्वास नासिका द्वारा ही लिया जाता है। शीतली प्राणायाम में बैठने की विधि शीत्करी की तरह ही है। श्वास मुख द्वारा ही भीतर लिया जाता है। शीत्करी में दाँत मिला कर रखते हैं पर शीतली में दाँत नहीं मिलाते। जबान को दोहरा कर चोंच की शक्ल में बना लेना और दाँतों को बाहर निकाल कर और होठों को खोल कर मुख द्वारा श्वास को अन्दर खेंचना और मुँह बन्द करके नासिका द्वारा शीत्करी की तरह बाहर निकाल देना, बार-बार इस प्रकार करना है।

लाभ—बिल्कुल शीत्करी की तरह, सिवाय इसके कि इस में दाँत ऐसे प्रभावित नहीं होते जैसे शीत्करी में होते हैं।

❀❀

४४

प्राणायाम (२)

अब तक ६ प्राणायामों का विचार हो चुका। अब बाकी के तीन प्राणायामों पर विचार करेंगे।

(७) भद्रका प्राणायाम—इसके कई नाम हैं और करने की विधि में सर्वथा सामान्य भेद है। इसे भस्त्रिका प्राणायाम भी कहते हैं। इसके अन्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नाम, कपालभाती, अमृत प्राणायाम और धौंकनी प्राणायाम हैं। यह बैठकर व खड़े होकर—दोनों प्रकार किया जा सकता है। खड़े होकर करने में दोनों हाथों को उठा कर कमर के दाँये-बाँये कटि प्रदेश पर लटका दें। बठ कर करना हो तो सिद्ध व पद्म आसन पर। प्रायः बैठ कर करना ही अधिक लाभप्रद होगा। इन दोनों में से किसी आसन पर ऐसे बैठें कि घुटने ज़मीन पर लगे रहें। दोनों हाथों को दाँये-बाँये, अपने अपने घुटनों पर रख दें। रीढ़ की हड्डी एकदम सीधी हो। फिर भद्रका का सूक्ष्म रूप, जिसे अमृत प्राणायाम कहते हैं, करें, अर्थात् मुँह बन्द रख कर नासिका के दोनों छिद्रों द्वारा श्वास को अन्दर-बाहर निकालें, जिसमें कुम्भक न हो, और श्वास केवल गले तक स्पर्श करके वापस आ जाये। इसमें पेट साथ-साथ नहीं उठता। कुछ देर तक इसे करें। बाद में दूसरा रूप—धौंकनी या कपाल भाती करने के लिये, नासिका द्वारा जल्दी-जल्दी श्वास को अन्दर-बाहर करें, लौहार की धौंकनी की तरह श्वास को चलाना। इसमें नाभि के नीचे का हिस्सा श्वास के साथ-साथ अन्दर-बाहर होता रहे। जब श्वास अन्दर जाये तो पेट अन्दर को पिचक जाये, जब श्वास बाहर निकले तो पेट बाहर निकल जाए। इस तरह कुछ देर के लिये श्वास को चलाकर लम्बा, पूरक करके श्वास को अन्दर रोक दें और उद्यान बन्ध लगा दें। कुछ क्षण अन्दर रोक कर, फिर, श्वास को बाहर निकाल दें। बाद में शुद्ध भस्त्रिका या भस्त्रा प्राणायाम करने के लिए श्वास की गति को अधिक तीव्र कर देना है, लेकिन श्वास प्रश्वास को धौंकनी की अपेक्षा जरा लम्बा कर देना चाहिये, जैसे, एकदम फेफड़ों को पम्प किया जा रहा हो। पेट साथ-साथ अन्दर-बाहर होगा। ध्यान रहे, सिवाय पेट के अन्य कोई अंग न हिले। कन्धे व छाती को ऊपर-नीचे नहीं करना है। ये लम्बे श्वास भी इस प्रकार जल्दी-जल्दी लें, जैसे धौंकनी चलती है। अन्दर और बाहर श्वास को रोकना नहीं। इस प्राणायाम के तीनों प्रकार एक साथ भी हो सकते हैं, अथवा अवस्थाओं के अनुसार तनिक भेद के साथ भी हो सकते हैं।

लाभ—अमृत प्राणायाम से तो गले की ग्रन्थियाँ प्रभावित होती हैं पर यह प्राणायाम गले के रोगों को ठीक करता है।

धौंकनी, कपाल भाती, भस्त्रिका या भस्त्रा प्राणायाम पेट की तमाम नसों और नाड़ियों को हिला कर मल विकारों से भरे नलों को शुद्ध करते और जठराग्नि को बढ़ाते हैं, कब्ज को तोड़ते हैं, शरीर की तमाम नाड़ियों और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रक्त को शुद्ध करते हैं, दिल की शक्ति बढ़ती है, खाँसी, दमा, फेफड़े सम्बन्धी रोग दूर होते हैं, पाचन शक्ति बढ़ती है, मन को स्थिरता प्राप्त होती है और वात, पित्त, कफ की न्यूनता व अधिकता को सामान्य करते हैं। योगी लोग इसी से कुण्डलिनी शक्ति को भी जागृत करते हैं। संक्षेपतः, यह सर्वोत्तम प्राणायाम है।

(८) **मूर्च्छा प्राणायाम**—यह प्राणायाम जरा कठिन है, जैसा कि, इसके नाम से ही प्रसिद्ध है। यह प्राणायाम किसी जानकार के निरीक्षण के बिना कभी नहीं करना चाहिए। इसमें मूर्च्छित दशा सदृश स्थिति बन जाती है। पता नहीं, योग गोष्ठी में आम जनता के लिये यह स्वीकृत कैसे हो गया ? पर चूँकि यह स्वीकृत हो गया है, इसलिये, इसके सम्बन्ध में लिखना तो है ही।

पहली आवश्यक बात यह है कि पहले कहे गये प्राणायामों में करने के बाद ही इस प्राणायाम को करने का साहस करना चाहिए, विशेषतः, भ्रमरी प्राणायाम इससे पहले होना जरूरी है ताकि श्वास एकदम सामान्य अवस्था में आ जाए। इसके बाद इस तरह आसन लगायें कि बाँये पाँव की एड़ी गुदा को स्पर्श करे और दाँये पाँव को घुमाकर बाँयी जाँघ में इस तरह रखें कि दाँये पाँव की एड़ी जननेन्द्रिय के मूल में लगी हुई हो और दाँये पाँव की पीठ बाँयी जाँघ के ऊपर टिक जाए। दोनों घुटने भूमि पर लगे रहें, रीढ़ की हड्डी बिल्कुल सीधी और गर्दन भी बिल्कुल सीधी हो। दोनों नासिका छिद्रों से लम्बा और गहरा श्वास भर कर अन्दर रोक लें। ठोढ़ी को गले के नीचे जो गड्ढा-सा है, उसमें टिका कर जालन्धर बंध लगा लें। फिर, दाँये और बाँये हाथ को दोनों गालों के दाँये-बाँये ले जाकर इस ढंग से अंगुलियों को फैला कर रखें कि दोनों कानों के छिद्रों को बन्द कर लें। अंगूठे के साथ वाली अंगुलियाँ दाँयी-बाँयी आँख को कोमलता से दबा कर रखें। दोनों ओर की बीच की अंगुलियाँ नाक के दोनों छिद्रों को बन्द करके दबाएँ। चौथी अंगुली, सबसे छोटी अंगुली को, दोनों ओर से मुख पर रख कर होठों को दबा कर रखें। श्वास को भीतर रोक कर मूल-बंध और उड्यान बंध लगावें। अब परिणाम यह होगा कि सारा रक्त मुँह की ओर प्रवाहित होगा। वीर्य ऊपर की ओर चढ़ना शुरू कर देगा। चेहरे पर बड़ा दबाव प्रतीत होगा। जब यह देखें कि कुम्भक से साँस घुटने की नौबत आ गयी है या सिर चकराने लगा है, तो नासिका से अंगुलियाँ हटाकर जालन्धर बन्ध लगा रहते हुए, धीमे-धीमे श्वास

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

को बाहर निकालते चले चाएँ। ध्यान रहे, जरूरत से ज्यादा रोकने से चक्कर खा कर गिर जाने और मूर्च्छा आ जाने की सम्भावना होती है। इसीलिए आरम्भ में ही लिखा गया है कि कहीं से पढ़कर ही इस प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिए। विशेषतः, जो दुर्बल हृदय के हैं वे तो इस प्राणायाम के करने का प्रयत्न ही न करें। करने वाले का मुँह एक दम लाल हो जाता है। केवल तीन बार ही उपर्युक्त ढंग से करना पर्याप्त रहेगा।

लाभ—इस प्राणायाम के करने से शरीर में नाद बड़ी तीव्र गति से होता है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है। शरीर के मल नष्ट होते हैं। सबसे बडा लाभ यह है कि वीर्य सम्बन्धी तमाम विकार दूर होते हैं। स्वप्न दोष के लिए, विशेषतः, लाभदायक है। मुख पर तेज और ओज चमकने लगता है। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये उत्तम प्राणायाम है। मूल बन्ध साथ लगाने से कुंडलिनी शक्ति का जागरण होता है।

प्लाविनी प्राणायाम—आसनों के वर्णन में पाठक मत्स्य आसन के सम्बन्ध में पढ़ चुके हैं। मत्स्य आसन को प्लाविनी आसन भी कहते हैं। जो प्राणायाम प्लाविनी या मत्स्य आसन की स्थिति में किया जाए, उसे प्लाविनी प्राणायाम कहते हैं।

विधि—पद्मासन में बैठना होता है, सिद्धासन इसमें नहीं चलता, पद्मासन ही जरूरी है। इस आसन में बैठ कर दोनों हाथों को दाँये-बाँये आकाश की ओर उठाते जाएँ और श्वास को अन्दर भरते जाएँ जिससे पेट फूलता जाए। हाथों को ऊपर उठाने से यह लाभ होता है कि फेफड़ों के तमाम छिद्र शुद्ध वायु को ग्रहण करने के लिए खुल जाते हैं और अधिक से अधिक श्वास अन्दर भरा जा सकता है। दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में गुत्थी कर सिर पर दोनों हाथ रखें और शरीर को पीछे की ओर इस प्रकार लेटा दें जैसे मत्स्य आसन में लिखा जा चुका है। फिर, श्वास को छोड़ते हुए शरीर को वापस लाएं, फिर हाथों को वापस घुटनों पर रख दें, फिर नये सिरे से शुरू करें। इसे अपनी इच्छा से कई बार करें। इसमें किसी प्रकार की हानि की सम्भावना नहीं है।

लाभ—इसका अभ्यासी साधक जल के ऊपर बैठकर जल में बड़ी आसानी से तैर सकता है। इससे शरीर में हल्कापन आता है, फेफड़ों के अधिक से अधिक कोष्ठकों पर प्रभाव पड़ता है जिससे अनेक प्रकार की व्याधियाँ दूर होती हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्राणायाम के सम्बन्ध में मेरी जो भी जानकारी थी और किसी भी स्थान से मैं जो जानकारी प्राप्त कर सका, उसके अनुसार यहाँ सब कुछ लिख दिया है। पर मेरा यह दावा नहीं है कि मैंने जो कुछ लिखा है, इसमें सुधार की संभावना नहीं है क्योंकि मैं भी इस विद्या में अभी विनम्र जिज्ञासु हूँ।

❀❀

४५

क्रियाएँ

यह क्रियाएँ आसन-प्राणायाम से पहले करनी चाहियें ताकि इनसे पूरे लाभ उठाये जा सकें। योग संगोष्ठी की यौगिक क्रिया समिति की रिपोर्ट के अनुसार साधारण व्यक्ति को निम्नलिखित क्रियाएं करनी चाहियें—(१) जल नेति (२) सूत्र नेति (३) उषा पान (४) कपालभाती (५) अग्नि सार क्रिया (६) नौली (७) गजकरणी (८) त्राटक (९) मूलशोधन रिपोर्ट में कहा गया है कि उपर्युक्त क्रियाएं सब को सीखनी चाहिये और किसी जानकार शिक्षक के परामर्श से करनी चाहियें। योग के अनुशीलन में आसन—प्राणायाम का अवसर जल्दी नजर नहीं आता जितना कि क्रियाओं का होता है। अब प्रत्येक क्रिया की व्याख्या की जाएगी।

(१) **जलनेती—विधि**—इसके तीन प्रकार हैं। पहला—एक नासिका छिद्र में जल भर कर दूसरे छिद्र से बाहर निकाल देना, अथवा, इसके विपरीत। दूसरा—नासिका के एक-एक छिद्र में जल भर कर मुँह के रास्ते बाहर निकाल देना। तीसरा—मुँह में पानी भर कर नासिका छिद्रों द्वारा बाहर निकाल देना। तीसरी प्रकार की जल नेती बहुत कम लोग करते हैं। एक परिचित सज्जन द्वारा बताये गये अपने अनुभव के अनुसार, आज से लग भग २० वर्ष पहले अपनी नौकरी के समय उन्हें एकदम अनुभव होने लगा कि आँखों की ज्योति कम हो रही है। अच्छे से अच्छे डाक्टर ने यही कहा कि अब नेत्र ज्योति कम हो रही है, जा रही है और वापस नहीं आएगी। उनकी स्थिति यह हो गई कि वे लिखने पढ़ने के योग्य भी न रहे। सौभाग्य से एक योगी महात्मा मिल गये और उन्होंने मुख से पानी भरकर नासिका के दोनों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

छिद्रों द्वारा पानी बाहर निकाल देने की—जल नेती करने की—सलाह दी। इस सज्जन ने इसी ढंग से तत्काल जल नेती का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया, दिन-प्रति दिन इनकी नेत्र ज्योति वापस आती गयी। डाक्टरों को इस क्रिया ने चकित कर दिया। अब ७० वर्ष की आयु में भी इस नेती क्रिया की कृपा से यह सज्जन कहते हैं कि "मुझे ऐनक लगाने की भी आवश्यकता नहीं है।" इस सज्जन ने इस नेती का प्रदर्शन भी हमारी योग कक्षा में किया। इस तीसरी नेती से मैं भी अपरिचित था। मुझे तो पहली दो नेतियों की ही जानकारी थी। इस सज्जन ने मुँह द्वारा पानी भरकर नासिका से निकाल कर दिखाया। इस नेती के लिए किसी विशेष बर्तन की आवश्यकता नहीं है, एक गिलास ही पर्याप्त है जिसमें ऊष्ण जल डाल कर यह क्रिया सुविधा से की जा सकती है। पहली दो प्रकार की नेतियों से यह कठिन है और बिना समझे करने से गले में गोते आने की सम्भावना रहती है।

पहली दो प्रकार की नेतियों के करने के लिए एक खास प्रकार का लम्बी नाली वाला लोटा होता है। इसमें आध सेर के लग भग जल आ जाता है। इसके सिरे पर पीतल का एक बटन इस ढंग से लगाया जाता है जिससे नाली का छेद कायम रहे। वह नाक के छेद में इस प्रकार फिट हो जाता है कि हवा का आना जाना बन्द हो जाता है। पानी को ऊष्ण करके थोड़ा सा नमक डाल कर देख लें कि पानी सर्वथा स्वच्छ है, जरूरत हो तो कपड़े से पानी को छान लिया जाए। पानी सहन करने योग्य हो। लोटे में पानी डालकर इसकी नाली पर लगे बटन को नाक में फिट कर दें। दूसरी ओर से सिर को नीचे झुका दें। पानी अपने आप पिंगला के रास्ते प्रवेश कर ईडा की ओर से निकलना शुरू हो जाएगा एक धार सी बंध जाएगी। थोड़ी देर इसे चलने दें। फिर नाक साफ कर लें। इसी प्रकार नासिका के दूसरे छेद से करें। अब पानी ईडा की ओर से भर कर पिंगला के रास्ते निकालते जाएँ। नाक के अन्दर एक नाली है जो दोनों छिद्रों को आपस में मिला रही है और दोनों छिद्रों को गले के साथ मिला रही है। दाँये बाँये नासिका के दोनों छेदों से पानी निकालने के फल स्वरूप इस नाली का शोधन हो जाएगा, कहीं भी मैल रुका होगा तो बाहर निकल जाएगा।

जब दोनों नासिका छिद्रों को साफ कर लें तो फिर एक छिद्र से जल भर कर दूसरे छिद्र को हाथ की अंगुली से दबाकर बन्द कर दें। स्वभावतः, पानी गले की ओर रूख करेगा। इस पानी को मुँह के रास्ते बाहर निकाल दें। अब

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नाली पूर्ण रूप से साफ हो जाएगी। मुँह से निकालते समय पहले शायद कुछ परेशानी सी मालूम हो, या गोता आए, पर अभ्यास करने से आदत बन जाने पर यह कष्ट भी नहीं होगा। कई हालात में इस लोटे के बिना भी काम चल सकता है रबड़ की नाली से भी पानी नाक के एक छिद्र में भर कर दूसरे छिद्र से बाहर निकाल सकते हैं। कुछ लोग हाथ के चुल्लू में पानी भर कर भी काम चला लेते हैं पर अच्छा तरीका लोटे का ही है।

लाभ – इस क्रिया से कितना लाभ होता है यह लिखना सम्भव नहीं है। महर्षि चरक ने आयुर्वेद में इसका महत्त्व लिखा है। गर्दन से ऊपर जितने अंग है, गला, जीभ, दाँत, नाक, आँख और सिर, इन सबके लिये यह क्रिया अमृत तुल्य है। इन सब अंगों की नस नाड़ियाँ आपस में मिली हुई हैं। इस क्रिया से सब एक समान प्रभावित होती हैं। गले के रोगों और श्वास के रोगों के लिये तो यह क्रिया एक अमोघ औषध है। मेरे एक परिचित सज्जन को वर्षों से नजला और जुकाम की शिकायत रहती थी। उसे मैंने इस लोटे से जलनेती का सुझाव दिया। वे कहते हैं कि इस नेती के प्रयोग से वर्षों के नजले जुकाम का नामोनिशां भी न रहा। खाने पीने की गड़बड़ी से इन सज्जन को जब कुछ तकलीफ नजर आती है, तो फौरन इस नेती का प्रयोग करने से तत्काल वह दूर हो जाती है। खाँसी और दमे तक के रोग को जड़ से उखाड़ देने के लिए यह अचूक नुस्खा है। नेत्र ज्योति को बढ़ाने का सर्वश्रेष्ठ साधन है। सिर में चक्कर आते हैं, या दर्द रहता हो, कानों में दर्द या पीप हो, इन सब के लिये भी यह क्रिया लाभकारी है। गले से ऊपर के रोगों के लिए यह अमोघ औषध है, बशर्ते खाने पीने के सम्बन्ध में परहेज रखा जाए।

❀❀

४६

क्रियाएँ—(२) सूत्र नेती

इसमें जल की जगह नाक की नाली की शुद्धि सूत्र द्वारा की जाती है। सूत्र से अभिप्राय, कच्चे धागों को बटकर एक इतनी मोटी रस्सी तैयार करनी होती है जो नाक के छिद्रों में से सुविधा से गुजर सके। नेती के लिए इसे सूत्र

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के नाम से पुकारा जाता है। इसे वस्त्र नेती भी कहते हैं। बटकर और मोम लगाकर जरा कड़ी बना ली जाती है ताकि नाक में सीधी चलकर टिक सल। आज कल यह काम रबड़ की ठोस नाली से भी लिया जाता है। सूत्र की अपेक्षा यह रबड की नाली आसान रहती है। दोनों में से कोई हो, पर करने की विधि एक ही है, जो इस प्रकार है—पहले सूत्र या रबड़ को नासिका के एक छिद्र से प्रविष्ट करके धीमे-धीमे इसे भीतर करते जायें, वह अपने आप गले तक जा पहुँचेगी। फिर, हाथ की दो अगुलियों (अंगूठे के साथ वाली) से गले में हाथ डाल कर रस्सी या रबड़ को पकड़ लें और धीमे-धीमे खेंचते हुए मुख से बाहर ले आवें। अब पिछला सिरा बाँयें हाथ में पहले ही पकड़ा होना चाहिए और दाँये हाथ से अन्दर की रस्सी व रबड़ को बाहर खेंच कर नाक में इसे धीमे-धीमे आगे-पीछे करें नाक में जहाँ भी मैल फंसा होगा, इस प्रकार करने से अपने आप बाहर निकल आएगा, चार बार हिलाकर रस्सी को मुँह के रास्ते बाहर निकाल लें। नाक अच्छी प्रकार साफ करके, फिर, इसी प्रकार नाक के दूसरे छेद से रस्सी व रबड़ को गुजारे और पूर्ववत् विधि से करें। इस प्रकार नासिका के दोनों छिद्रों को साफ करने से नासिका की पूर्ण शुद्धि हो जाएगा। शुरू शुरू में कुछ सनसनाहट सी महसूस होगी, और अगर कहीं जरा रगड़ा दे दिया तो भीतरनाक की नाली के छिल जाने की सम्भावनाहो जाएगी। यह खतरा जल नेती में नहीं है। इसलिये सूत्र नेती भी किसी जानकार के निर्देशन में करनी उचित है। रस्सी या रबड़ की नाली अच्छी तरह धोकर रखी जाए ताकि फिर प्रयोग में आ सके। प्रत्येक व्यक्ति लिये पृथक्-पृथक् रस्सी व रबड़ होनी चाहिये। इसके लाभ लगभग, वही हैं जो जल नेती के सम्बन्ध में कहे जा चुके हैं।

(३) उषापान—उषा उस शुभ समय का नाम है जब प्रातः काल जाती हुई रात्रि और आते हुए दिन का मिलाप होता है। प्रायः मनुष्य उस समय अपने बिस्तरे को छोड़ देता है। पान कहते हैं पीने को। इस उषा पान का शब्दार्थ हुआ, प्रभात के समय पीना। इसकी विधि यह है कि प्रातः बिस्तरे को सूर्य चढ़ने से पहले छोड़कर और शौच जाने से पहले, कुल्ला करके मुँह साफ कर लिया जाए। जल नेती व सूत्री नेती, पीछे बतायी विधि से करके, लोटे के द्वारा नाक के रास्ते पानी पीया जाए, अर्थात्, गले से बाहर निकालने के बदले पानी अन्दर पेट में पहुँचाया जाये। कई साधक दूध भी इसी तरह पीते हैं। इसे दुग्ध नेती कहते हैं। जो नाक रास्ते न पानी चाहें, वे गिलास से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मुँह द्वारा ही पी सकते। वह भी उषा पान कहलाता है पर नाक के रास्ते पीने से, अपेक्षा कृत, अधिक लाभ होता है। इस सम्बन्ध में आयुर्वेद में कहा गया है :—

विगत घन निशीथे प्रात रुत्थाय नित्यम्,
पिबति खलु नरो यो घ्राण रन्ध्रेण वारी।
स भवति मति पूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्य तुल्यः।
बलि पलित विहीनः सर्व रोगे वियुक्तः॥

जो मनुष्य प्रातः काल घना अँधेरा दूर होने पर उठकर नासिका द्वारा जल पान करता है, वह पूर्ण बुद्धि व नेत्र ज्योति में गरुड़ के समान हो जाता है, उसके बाल जल्दी श्वेत नहीं होते और वह सब रोगों से सदा मुक्त रहता है।

रोग मुक्ति का इस उषापान को आयुर्वेद ने एक मात्र नुस्खा बता दिया है। क्यों ? इसलिए कि उषा पान करने से जन्म जन्मान्तर की कब्जी दूर हो जाती है। पेट साफ हो जाता है। यह कब्जी ही सब रोगों की जड़ है। जब यह जड़ कट जाएगी, तब कोई भी रोग कहाँ रहेगा ? हालत यह है कि लोग कब्जी तोड़ने के लिए नाना प्रकार की दवाइयाँ तो खायेंगे, पर, इस अचूक नुस्खे की ओर ध्यान नहीं दिया जायेगा। इसी लिए एक कवि के शब्दों में :—

रवश टेढी है दुनियां की, कभी सीधी नहीं होती।
जहाँ लाखों मसीहा और, ऋषि-मुनियों ने सर मारा॥

उषापान के लाभ बहुत करके तो आयुर्वेद के ऊपर के श्लोक में ही आ गये हैं। इसमें कुछ जोड़ना हो तो यह कि इससे नेत्र ज्योति बढ़ती है और पेट के तमाम विकार दूर होते हैं।

(४) चौथी क्रिया—कपालभाती—इसका उद्देश्य कपाल, अर्थात्, मस्तिष्क की शुद्धि है। यह भस्त्रा या भस्त्रिका प्राणायाम का ही रूप है, विशेषतः, जल नेती करने के बाद इसकी जरूरत होती है।

विधि—जल नेती करने के पश्चात् नासिका के एक छिद्र पर हाथ का अँगूठा रखकर दूसरे नासिका छिद्र से जोर से हवा को बाहर निकालें। फिर, इस छिद्र को हाथ की अंगुलि से बन्द करके दूसरे नासिका छिद्र से बलपूर्वक वायु बाहर फेंके। इसे जल्दी-जल्दी बदल कर जोर से श्वास को बाहर निकालते जायें। फिर, हाथ के अंगूठे और अंगुलियों का सहारा छोड़कर दोनों नासिका-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

छिद्रों से धौंकनी की तरह चलायें। इससे एक तो जल नेती का रुका हुआ पानी बाहर निकल जायेगा और दूसरा नाक की जल नेती द्वारा विशुद्ध नलियों से स्वच्छ वायु को अन्दर भरकर फेफड़ों के प्रकोष्ठों को साफ किया जा सकेगा। इसके लाभ भस्त्रा प्राणायाम में विस्तार से आ चुके हैं।

(५) अग्नि सार क्रिया—इसका अभिप्राय जठराग्नि को उत्तेजित करना है। यह भी धौंकनी प्राणायाम से, प्रायः, मिलती जुलती क्रिया है। श्वास को अन्दर भरें और पेट को अन्दर पिचकावें, और, बिना श्वास के अन्दर रोकने के, श्वास को बाहर निकालें तो पेट से खूब अच्छी तरह बाहर निकालें—अर्थात्, पेट को फुलायें, फिर श्वास को अन्दर भरकर कुम्भक करके पेट को भीतर की ओर रोक कर रखें और फिर बाहर निकाल कर बाहर कुम्भक करके, बाहर की ओर पेट रोक रखें। दोनों तरह से कर सकते हैं।

लाभ—इससे पेट की मन्दाग्नि प्रज्वलित होती है, भूख न लगती हो तो भूख लगने लगती है, पाचन शक्ति में कमजोरी हो तो वह दूर हो जाती है।

(६) नौली क्रिया—इससे तमाम आँतों का व्यायाम होता है। नौली को शुरू करने से पहले उड्यान बन्ध लगाना जरूरी है। पहले सीधे इस प्रकार खड़े हो जायें कि दोनों पाँवों के बीच एक फुट का फासला हो, और दोनों पैर एक दूसरे के समानान्तर हों। दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर इस प्रकार रखें कि चारों अंगुलियाँ बाहर की ओर और अंगूठा अन्दर की ओर हो। शरीर सामने की ओर झुक जाए। श्वास को गहरा और लम्बा करके बाहर निकालें और पेट को पिचका कर कमर के साथ लगा दें। एकदम पेट में गड्ढा पड़ जाएगा। सामने की ओर देखते रहें। नौली करने के इच्छुक पहले इतनी क्रिया ही कुछ दिन करें। जब इसका खूब अभ्यास हो जाए तो उड्यान बन्ध करके सामने की ओर देखने के बदले पेट की ओर देखें। नौली करनी हो तो पैरों को भी पहले आपस में मिला दें। फिर, श्वास को बाहर निकाल कर उड्यान बन्ध किया जाये। नौली के फिर चार प्रकार हैं (१) मध्यमा नौली, (२) दाँयी नौली (३) वाम नौली (४) चक्र नौली। जब आप पेट की ओर देखेंगे तो नल और नाभि के चारों ओर का स्थान बाहर निकल आएगा। इसे केवल आगे-पीछे करें। यह मध्यमा नौली है। फिर, दाँये हाथ को दाँए घुटने पर दबायें। इस समय नल दाँयी ओर हो जाएगा, फिर बाँये हाथ से बाँये घुटने को दबायें तो नल बाँये चला जाएगा,। इसे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
दाँयी-बाँयी नौली कहते हैं। फिर दाँये-बाँये और मध्यमा का चक्कर बाँध दें आँते चक्की की तरह घूमनी शुरू कर दें। इसे चक्र नौली कहा जाता है। यह सारी क्रिया करते समय श्वास बाहर रुका रहे। रोक न सकें तो सीधे खड़े हो जायें। श्वास अन्दर भर लें। दोबारा करना हो तो फिर पूर्वोक्त ढंग से करें। यह क्रिया योग की क्रियाओं में प्रथम श्रेणि की क्रिया गिनी जाती है। इसे सीखने के लिए भी किसी प्रमाणिक व्यक्ति के निर्देशन की जरूरत है।

लाभ—यह क्रिया पेट के रोगों के लिए सर्वाधिक लाभप्रद है। नियम-पूर्वक करने से पेट की बीमारी नहीं रहती, विशेषतः, कब्जी तो इससे भाग जाती है। वात, पित्त, कफ का सन्तुलन रहता है, आँतों को यह क्रिया शुद्ध करती है, विशेषतः, गुर्दों (कोलन) की शुद्धि के लिए तो यह राम बाण है।

❀❀

४७

क्रियाएँ (३) गजकरणी

६ क्रियाओं का वर्णन हो चुका। अब साँतवीं क्रिया—कुंजर क्रिया व गजकरणी है। कुंजर का अर्थ है, हाथी, और गज का अर्थ भी हाथी है। इसलिए, मतलब यही है कि हाथी की क्रिया। हाथी क्या करता है? अपनी सूंड में पानी भरकर अपनी सूंड से ही बाहर निकाल देता है। इस क्रिया की नकल करना ही कुंजर क्रिया है। इसे चलधोती भी कहते हैं।

विधि—पहले काग आसन में बैठ जाएं, अर्थात्, कौए की तरह बैठना। दोनों पाँवों के तलवे जमीन पर टिका कर दोनों हाथ घुटनों पर रख कर बैठ जाएं। पानी को गरम करके पास रख लें। इसमें थोड़ा सा नमक डाल लें। गिलास से पानी शुरू कर दें। इतना पीएँ कि गले तक पानी भर जाये। अब इस पानी को बाहर निकालना है। इसके दो तरीके हैं। पहला तो यह कि पानी पीकर अपनी जगह पर खड़े हो जायें। इस क्रिया के लिये जगह ऐसी चुनी जाये, जहाँ हम अपने घर का फालतू पानी बहाते हों अथवा, जंगल का ऐसा खुला स्थान हो जहाँ इस पानी के गिराने से किसी को आपत्ति न हो। खड़े होकर शरीर को सामने की ओर झुका दें जिससे शरीर का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऊपर का हिस्सा भूमि के समानान्तर हो जायें। तर्जनी और मध्यमा—दोनों अंगुलियों को गले में ले जाकर ठोकर लगायें। ज्यों-ज्यों आप अंगुलियों को गले के अन्दर डालकर आगे पीछे करने की कोशिश करेंगे, त्यों-त्यों पानी के फव्वारे मुँह से निकल कर भूमि पर ऐसे पड़ेंगे जैसे नलका खोल देने से पानी बाहर आ जाता है। अगर भीतर का पानी रुकता मालूम हो तो अंगुलियों से गले में गुदगुदी करने से सारा पानी बाहर आ जाएगा। अगर कुछ पानी भीतर रह भी जाये, तो उसके बाद न्यौली क्रिया कर ली जाये। इससे बचा हुआ पानी आँतों द्वारा टट्टी की नालिकाओं (कोलन) में चला जायेगा। टट्टी खुल कर आ जाएगी। पानी को बाहर निकालने का दूसरा तरीका एक और है। एक रबड़ की नाली खास ढंग की बनी होती है। आगे से जरा नोकदार, और, नोक के साथ ही नाली में एक सुराख होता है। पानी नाली के द्वारा भी पीया जा सकता है और गिलास के द्वारा भी, सहज तरीका गिलास द्वारा पीना ही है। गिलास से पानी पीकर नाली के नोकदार हिस्से को गीला करके, मुँह के भीतर ले जाकर, गले से नीचे उतारने की कोशिश करें। थोड़ा-सा भीतर ले जाने पर पानी इस नाली के रास्ते बाहर आना शुरू हो जायेगा। नाली के दूसरे सिरे से—जो नलके की तरह खुला होगा, पानी धार बनकर बाहर निकलना शुरू हो जायेगा। पानी अगर पूरा न निकले तो नाली को थोड़ा और आगे बढ़ाने का यत्न करें। इससे बाकी रहा पानी भी बाहर निकल आयेगा। आसान तरीका अंगुलियों से पानी निकालने का ही है। इसमें रबड़ की नाली खरीदने की जरूरत न रहेगी और रबड़ की नाली को अन्दर ले जाने की विधि सीखने की भी जरूरत न रहेगी। इसलिये अंगुलियों से काम चला लेना ही बेहतर रहेगा।

जिस तरह नेती दो प्रकार की है, सूत्र नेती और जल नेती, इसी तरह धोती भी दो प्रकार की है, वस्त्र धोती और जल धोती। योग संगोष्ठी में सूत्र नेती और जल नेती को अलग-अलग बताया गया है, इसलिये इनका वर्णन पृथक्-पृथक् किया गया है पर धोती के सम्बन्ध में वस्त्र धोती का जिक्र नहीं किया गया। यह है भी मुश्किल। इसके करने में भय भी है, शायद, इसी लिये योग संगोष्ठी में इसे स्वीकृत नहीं किया गया है। फिर भी वस्त्र धोती से लाभ वही होता है जो जल धोती अथवा कुँजर क्रिया से होता है। जल धोती में किसी खतरे की सम्भावना नहीं होती। इसलिये यहाँ वस्त्र धोती का वर्णन नहीं किया जायेगा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लाभ—हमारे भोजन और जल को भीतर ले जाने वाली जो नाली है, उसकी विशेष रूप से शुद्धि होती है, पेट का दूषित मल इससे बाहर निकल आता है, श्वास प्रणाली में से कफ बल्गम इत्यादि बाहर निकल जाते हैं। जिन्हें खाँसी व दमे की शिकायत रहती हो, उनके लिये यह क्रिया एक अचूक दवा है। इसके करने के बाद श्वास बड़े आराम से चलने लगता है, रक्त शुद्ध हो जाता है, अपचन और कब्जी भी दूर हो जाती है, जठराग्नि की शक्ति बढ़ती है। यह ध्यान रहे कि यह क्रिया निराहार और प्रातः ही करनी चाहिये।

(८) त्राटक—विधि—बैठने के आसनों में से किसी ऐसे आसन पर बैठें जिसमें कुछ देर बैठने का अभ्यास हो। त्राटक कहते हैं, बिना आँख झपकाये किसी लक्ष्य की ओर टकटकी बाँधकर देखना। सूर्य और चाँद को भी लक्ष्य बना सकते हैं, किसी तारे को भी, अथवा दीवार पर किसी चिह्न को भी। सूर्य और चन्द्र की ओर लगातार देखने से हानि की सम्भावना भी रहती है। पर योगीजन मन को स्थिर रखने के लिये इसका भी अभ्यास करते हैं। अगर कोई करना चाहे तो इसका तरीका यह है—सुख आसन पर बैठ कर सूर्योदय के समय, उसकी ओर मुँह करके ऐसे स्थान पर बैठें, जहाँ सूर्य की किरणें छू रही हों। पीपल के दो हरे पत्ते अथवा अन्य किसी वृक्ष के पत्ते आँखों के सामने इस प्रकार आ जाएँ, कि उनके भीतर से सूर्य की किरणें गुजर सकें—इन पत्तों को लेकर दोनों आँखों के सामने रख लें। इन पत्तों में से सूर्य की ओर टिकटिकी लगाकर देखना शुरू कर दें। इस तरह सूर्य की किरणें हरे पत्तों में से होकर आँखों पर पड़ेंगी, तब हानि की संभावना नहीं रहेगी। नंगी आँखों से सूर्य को देखने की अपेक्षा यह तरीका सहज भी है। मैस्मरिज्म और हिप्नोटिज्म वाले चिह्न पर टिकटिकी लगाकर अपनी आँखों की शक्ति बढ़ाते हैं। मुझे तो अनुभव केवल हरे पत्तों द्वारा त्राटक करने का है। इसलिए मैं तो केवल इसी का परामर्श दे सकता हूँ जो बिना किसी हानि की क्रिया है।

लाभ—हरे पत्तों द्वारा इस क्रिया को करने से आँखों की दृष्टि बढ़ती है, कम-से-कम १५ मिनट तक और अधिक-से-अधिक १ घण्टे तक बैठ कर करना। आध घण्टा प्रति दिन करने से ऐनक के उतरने की सम्भावना है। आँखों का कोई रोग समीप नहीं आता। इसी सिद्धान्त के अनुसार जब आँखों का आपरेशन होता है, तब डाक्टर हरी पट्टी आँखों पर बाँध देते हैं, ताकि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सूर्य का प्रकाश हरी किरणों के रूप में आँखों पर पड़े। मस्तिष्क की निर्बलता भी इससे दूर होती है।

(६) मूल शोधन—इसका दूसरा नाम वस्ती है। अंग्रेजी में इसे एनिमा कहते हैं। इसे करने के कई तरीके हैं। (१) आम प्रचलित अनीमा, इसमें अनीमा चीनी के बर्तन का होता है। रबड़ की नाली लगाने के लिए पेंदे में एक सूराख के साथ टूटी-सी लगी होती होती है, उसमें रबड़ की नाली का एक सिरा लगा कर, दूसरे सिरे पर प्लास्टिक की नोकीली नाली (नोजल) लगी होती है। बर्तन में पानी भर कर किसी ऊँची जगह पर रख दें। उस नोकीली नाली (नोज़ल) के सिरे पर वेजलीन, मक्खन व तेल लगाकर गुदा में उसे डाल दिया जाता है और नोजल पर लगे नलके की टूटी के समान बटन को खोल दिया जाता है। इस स्थिति में बांयी ओर लेटकर पानी पेट में भरना सबसे अधिक अच्छा होता है: नोजल का मुँह खुल जाने से पानी पेट में जाना शुरू हो जायेगा। सर्दियों में पानी को कोसा कर सकते हैं। गर्मियों में नलके का पानी काम में लाया जा सकता है। अधिक प्रभाव पैदा करना हो तो एक नीबू पानी में निचोड़ा जा सकता है। जितना पानी चढ़ाने की इच्छा हो, उतना ही बर्तन में डालना चाहिये। अधिक पानी चढ़ाने को "वायलेंट अनीमा" (प्रबल अनीमा) कहा जाता है। पहले समय सेर-डेढ़ सेर पानी चढ़ाया जाता था, पर आजकल के विशेषज्ञ कहते हैं कि डेढ़ पाव व आध सेर पानी से काम चल सकता है। थोड़ा पानी चढ़ाने को "नान-वायलेंट अनीमा" (सहज अनीमा) कहा जाता है। अधिक पानी चढ़ाने से उसे भीतर रखने की शक्ति नहीं रहती। सहज अनीमा में इस तरह पानी चढ़ाकर पेट को हाथ से मलना चाहिये, दाँये बाँये की ओर घड़ी की चाल की तरह, ताकि पानी आँतों में भर जाये। कम पानी चढ़ाने वालों के लिये एक आध सेर का गिलास मिलता है। जिसके साथ रबड़ की नाली लगी होती है। यह गिलास अनीमा के बर्तन का काम देता है। अगर पानी चढ़ाकर सर्वांग आसन कर लिया जाये तो पेट की सफाई बड़ी अच्छी तरह हो जाती है।

पेट में रोक रखने वाला अनीमा (रिटेंड अनीमा)—**विधि**—रात को सोते समय आध पाव पानी चढ़ाकर सो जाना, प्रातः शौच खुलकर आ जायेगा। जिन्हें दवाइयाँ खाकर व जुलाब लेकर, अथवा गोली खाकर (ब्ल्यू पिल्स) पाखना खुलकर लाने की आदत पड़ी हुई है, उनके लिये लाभदायक, उत्तम और सस्ती विधि यही है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(६) मूलशोधन—योगीजन जिसे बस्ती व मूल शोधन कहते हैं—**विधि :**—यह वही लोग कर सकते हैं जो उद्यान बन्ध और नौली क्रिया भली प्रकार करना जानते हों। आठ इञ्च लम्बी नकली-गोल लकड़ी व काने की बनी हो, एक दम सीधी हो और जिस में छेद खुले हों—उसके एक सिरे को तर्राश कर इस तरह बना लें कि गुदा में आसानी से जा सके। इसके सिरे पर भी वेजलीन, तेल या मक्खन लगा लें। सेर-डेढ़-सेर पानी एक बर्तन में डालकर इसके ऊपर बैठ जायें। इस नली का चिकना किया हुआ सिरा गुदा में चार इञ्च तक ले जायें, बाकी चार इंच पानी में दें, हाथ भूमि पर टिके रहें। श्वास को बाहर निकाल कर उद्यान बँध लगाकर मध्यम न्यौली करने की तरह नलकी की भीतर रोक रखें और श्वास को बाहर रोककर रखें, पानी अपने आप चढ़ना शुरू हो जायेगा। जब समझें कि श्वास बाहर नहीं रुक सकता तो नलकी को बाहर निकाल दें और बाद में श्वास भरें। पहले श्वास के भरने से पानी बाहर जायेगा।

अगर समझें कि पानी पूरा नहीं चढ़ा तो दोबारा करें। दोबारा करते हुये नलकी का बाहर का सिरा अंगुली से बन्द रखें और न्यौली प्रारम्भ कर के अंगुली हटा दें। पानी चढ़ जाने पर नलकी बाहर खींच लें और पहली विधि के अनुसार करें।

(४) ऊँचे स्तर के योगी कहते हैं कि नलकी की भी क्या जरूरत है ? खुले टब में लेट कर या साफ पानी के तालाब में खड़े हो कर ही न्यौली करके गुदा द्वारा पानी को भीतर खेंचा जा सकता है। पर यह तो पर्याप्त अभ्यास के बाद ही हो सकता है। सबसे सस्ती पर कठिन विधि यही है।

लाभ—इससे टट्टी की नालियाँ और आँतें बिल्कुल साफ हो जाती हैं, भूख बढ़ती है, कब्जी दूर हो जाती है, अर्थात्, पेट के सब विकारों का अन्त हो जाता है। खून साफ हो जाता है। तिल्ली और जिगर के लिये विशेष लाभप्रद है। इसके करने वाले के पास सुस्ती नहीं आती। चेहरे पर तेज आता है, सिर का भारीपन दूर होता है।

❀

वी० पी० पो० में व्यय अधिक होता है अतः चन्दा समाप्ति की सूचना मिलते ही धन भेज दें। कूपन पर ग्राहक नं० और पूरा पता भी लिखें। —व्यवस्थापक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मूलभूत नियम

योग—गोष्ठी की चौथी उप समिति "स्वास्थ्य के मूल भूत नियम और मालिश" के सम्बन्ध में थी। इस समिति ने १० सिफारिशें की हैं :—

(१) आसन और प्राणायाम कर लेने से पहले क्रियाओं का कर लेना जरूरी है। कुछ आसन बिना क्रिया के भी किये जा सकते हैं।

(२) आसन—प्राणायाम के लिये दो समय ठीक हैं, किसी भी ऋतु में सूर्योदय से पहले अथवा सूर्योदय के बाद। पर अच्छा समय ब्रह्म मुहूर्त का ही है।

(३) अगर आसन, प्राणायाम स्नान करने से पहले किये जाएं तो स्नान करने के लिये पर्याप्त समय तक प्रतीक्षा करनी चाहिए, अर्थात्, सामान्य स्थिति आ जाने तक।

(४) भोजन करने के बाद तीन घण्टे से पहले आसन—प्राणायाम नहीं करने चाहिए।

(५) आसन—प्राणायाम के बाद हल्का भोजन करना चाहिए।

(६) इस मार्ग पर चलने वालों के लिए सात्विक आहार ही करना आवश्यक है, अनाज, फल, सब्जी, दूध और दूध की बनी चीजें।

(७) ब्रह्मचर्य व्रत का, यथा शक्ति, पालन करें।

(८) आसन-प्राणायाम किसी जानकार की देख रेख में करने चाहिए।

(९) योग—व्यायाम के लिये समय का पालन और नियमित रूप से करना—दोनों शर्तें अनिवार्य हैं। यह तप का मार्ग है, प्रतिदिन ठीक समय पर और नियमित रूप से आना और यह सारे यौगिक व्यायाम करना।

(१०) **मालिश**—सप्ताह में एक बार मालिश की जानी चाहिए। मालिश करते समय यह सावधानता आवश्यक है कि हाथ के रगड़ने की क्रिया ऐसी हो कि रक्त का प्रवाह हृदय की ओर बढ़े, अर्थात्, हृदय के ऊपर के हिस्से पर मालिश की जाये, जैसे कन्धे, बाजू, छाती, गला, गर्दन, सिर इत्यादि हाथ ऊपर से नीचे की ओर गति करें। पाँव, टाँगें, नितम्ब, पेडू पर मालिश कर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रहे हों तो नीचे से ऊपर की ओर हाथ गति करें। पसलियों व पीठ पर करते हुए भी हाथ का रुख दिल की ओर रक्त ले जाने में सहायक हो। मालिश के लिए कच्ची घानी का सरसों का तेल ही सर्वोत्तम है।

पाँचवीं उपसमिति—यह है "मानसिक, नैतिक, सामाजिक और आत्मिक विकास के साथ योग का सम्बन्ध।" इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

(१) योग का अर्थ है, मिलाप व जोड़ना। योग ही भगवान् से मिलने का एक मात्र वैज्ञानिक मार्ग है। मनुष्य ने अपने आपको केवल शरीर समझ रखा है। यह शरीर पाँच कोषों का बना हुआ है—(१) अन्नमय कोष (२) प्राणमय कोष (३) मनोमय कोष (४) विज्ञानमय कोष और (५) आनन्द-मय कोष।

भगवान् सच्चिदानन्द, सर्व व्यापक, सर्व शक्तिमान् हैं। भगवान् के नियमों को अपनाते और हर सम्भव प्रयत्न करते हुए, आसन—प्राणायाम की विधि से भगवान् की कृपा का पात्र बनकर, और पाँचों कोषों को शुद्ध-पवित्र बनाते हुए प्रभु से मिलना है—वही योग का अभिप्राय है। योग कई प्रकार का है—(१) हठ योग (२) कर्म योग (३) भक्ति योग (४) क्रिया योग और (५) लय योग।

योग का कोई भी नाम हो पर योग व योग की सिद्धि मानव के लिए ध्येय नहीं है, पर यह सब साधन हैं—प्रभु प्राप्ति के लिए। इस उपसमिति ने निश्चय किया है कि "समस्त योग क्रियाएँ अथवा तकनीक एक उद्देश्य के लिये साधन रूप हैं, अपने आप में उद्देश्य नहीं हैं।

आज हठ योग के प्रचारक बहुत हैं। इसके प्रचार से शारीरिक उन्नति तो कुछ हो जाती है पर मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक उन्नति के सम्बन्ध में योग के प्रचारक होकर भी यह लोग बहुत सीमा तक पिछड़े हुए हैं। फलतः, अगर योग से हमारी आंशिक उन्नति होती है, तो समझना चाहिये कि हम योग का तत्त्वार्थ समझने में असफल रहे हैं। एक योग—निष्ठ व्यक्ति के मन, वचन और कर्म में सदा सामंजस्य रहना चाहिये। इसलिये योग में प्रवृत्त होने वाला व्यक्ति यह ध्यान रखे कि उसने केवल शरीर को ही लचक-दार बना कर रोग-रहित नहीं करना, किन्तु मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक दृष्टि से भी अपने जीवन को शुद्ध-पवित्र बना कर ऊँचा उठाना है। भगवान् को सर्वव्यापक जानकर अपने आपको संकुचित क्षेत्र से बाहर निकालना ही योग का लक्ष्य है।

❀❀

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

४९

कुछ क्रियात्मक सुझाव

यम और नियम, अर्थात्, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, तथा नियमों में, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान—इनका पालन करते हुए सचाई और आत्मविश्वास का जीवन व्यतीत करना अवाश्यक है। भोजन सात्विक हो। यह बुनियाद रखकर पद्मासन अथवा स्वस्तिकासन पर बैठने की आदत बनाएँ, जिससे रीढ़ की हड्डी बिल्कुल सीधी रह सके। सादा प्राणायाम जिसे "हित कुम्भक" प्राणायाम कहते हैं, इसमें श्वास का अन्दर ले जाना और बाहर छोड़ना—समकाल में हो और अन्दर रोकना व बाहर रोकना भी समकाल में हो—इस प्रकार शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक रूप से व्यक्ति ऊँचा उठ सकेगा। इसका फल स्वान्तः सुख की प्राप्ति होगी। तुलसीदासजी ने अपनी रामायण में तीन प्रकार के सुख लिखे हैं।

(१) **बाह्य सुख**—जिसमें शरीर स्वस्थ हो और सांसारिक ऐश्वर्य भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो।

(२) **अन्तः सुख**—इसमें भीतर का सुख हो, अर्थात्, मन शान्त और बुद्धि निर्मल हो, सन्तोष के धन से भरपूर हो। प्रायः, देखा जाता है कि जिसे बाह्य सुख प्राप्त हैं, वह अन्तः सुख से वंचित रहता है। खाने-पीने के सब साधन उपलब्ध हैं, लड़के-लड़कियाँ हैं, मकान, मोटरें भी हैं, पर मन बेचैन रहता है, चिन्ताएँ और फ़िक्र घेरे रहते हैं। ऐसे लोग बाहर से सुखी कहला सकते हैं पर भीतर से नहीं। कई ऐसे हैं जो योग की साधना बड़ी तत्परता से करते हैं पर जीवन निर्वाह के लिए दूसरों के आधीन हैं। आजकल योग साधकों की, प्रायः यही हालत देखी जाती है। ऐसा होते हुए भी अगर ये लोग सन्तुष्ट और प्रसन्न हैं, तो वे अन्तः सुखी हैं। तुलसीदास जी "स्वान्तः सुख" को आदर्श मानते हैं, जिसमें बाहर का भी सुख हो और भीतर का भी पूर्ण सुख हो, ऐसी शान्ति जो मन के भीतर और बाहर, दोनों में समरूप हो। इस प्रकार के "स्वान्तः सुख" की प्राप्ति ही योग का उद्देश्य है। मैं अपने शब्दों में कहूँ तो "हर हाल मस्त रहना" ही स्वान्तः, सुख का रूप है। प्रत्येक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

व्यक्ति इसकी कामना तो करता है पर मार्ग जरा कठिन है, तप का मार्ग है, चढ़ाई का रास्ता है। इस पर पहले तो कोई चलता ही नहीं, और, अगर चलता है तो जल्दी थक जाता है, साहस छोड़ देता है, क्यों कि बाह्य सुख का मजा तो वह जानता है, बार-बार उधर ही दौड़ता है। अन्तः सुख का आनन्द देखा नहीं, अनुभव में आए तो उधर आकर्षण पैदा हो। किनारा आने से पहले ही नौका डूब जाती है।

सायल के पास पहुँच कर, तू मुतमय्यन न हो।
अक्सर सफीने डूबे हैं, सायल के पास ही॥

श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि सिद्धि के लिये लाखों व्यक्ति प्रयत्न करते हैं पर लाखों में से कोई एक लक्ष्य तक पहुँचता है, वह भी अनेक जीवनों के बाद। यह लक्ष्य ही स्वान्तः सुख का है। इसलिए मैंने इस मार्ग को "कष्ट साध्य" बताया है। पर यह मार्ग किसी व्यक्ति विशेष तक ही सीमित नहीं है, अपितु प्रत्येक को मार्ग पर चलने की पूर्ण स्वतन्त्रता और अधिकार भी प्राप्त है।

(३) यम-नियम का पालन करते हुये निष्काम सेवा से मन पवित्र होता है। पवित्र होने पर मन धारणा और ध्यान में लगता है। अन्ततः, साधक अपने आपको पहचानता है। आत्मा और शरीर के ठीक स्वरूप को देख सकता है। सब प्रकार की विषय-सम्बन्धी चंचलताओं से बचा रहता है। इसी लिए कहा गया है—

"निष्काम सेवा ही ऊँचा योग है।"

जब योग में स्थिर होकर स्थिर सुखासन पर बैठें, तो शरीर में तनाव बिल्कुल न हो, जिससे देर तक बैठने में दिक्कत न हो। बैठकर ध्यान को चाहे शरीर के किसी बाह्य अंग पर, जैसे नाक की नोक अथवा भृकुटि के बीच का स्थान है, वहाँ लगाएँ, अथवा भीतर के किसी अंग पर, जैसे हृदय की धड़कन है, इस पर वृत्ति टिकायें, साथ में अपने प्रभु का नाम जप, जिसके उच्चारण करने से प्रभु में प्रीति बढ़ती है। उच्चारण होठ व वाणी से नहीं, किन्तु हृदय में ही होना चाहिये। हृदय में भगवान् का प्रगाढ़ स्मरण हो तो तीनों ताप नष्ट हो जायेंगे, "स्वान्तः सुख" की प्राप्ति हो जायेगी। गांधी जी ने लिखा है—

"ज्यों-ज्यों मैं सोचता हूं, त्यों-त्यों मुझे अनुभव होता है कि भगवान् का नाम हृदय से ज्ञानपूर्वक लेना एक पूर्ण इलाज है और हर प्रकार के दुःखों के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दूर करने का इलाज है, अर्थात्, शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक।" तभी हम अपने भीतर "राम राज्य" की स्थापना कर सकते हैं। राम राज्य क्या है—गोस्वामी तुलसी के शब्दों में :—

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज में नहिं काहू व्यापा॥

इस संसार को नाटक गृह समझ कर अपने आप को एक नाटक खेलने वाला समझे और इसी के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करे। जो पार्ट उसे दिया गया है, उसे बढ़िया ढंग से निभाये। अपना पार्ट समाप्त होने पर जब नाटक की पोशाक उतारनी पड़े, साजो-सामान छोड़ना पड़े, तो नाटक के पात्र के समान दुःखी न हो, अपितु अपने वास्तविक रूप में आकर प्रसन्न हो। इस संसार रूपी नाट्यशाला में राग-द्वेष से रहित होकर अपना पार्ट अदा करे। मेहर कवि के शब्दों में :—

जहाँ भी हो जिक्र तेरा, हो जिक्रे खैर मेहर।
जब याद तुझे करें तो, सब अदब से किया करें॥

धारण, ध्यान, समाधि की ओर प्रवृत्त होने से ही यह मानसिक स्थिति उपलब्ध होगी। यही योग का अन्तिम लक्ष्य है।

(४) चौथा सुझाव मौन व्रत का है। यह एक उत्तम साधन है। केवल वाणी को बोलने से बन्द करके नहीं किन्तु उसे मन को मौन रखने तक बढ़ाना है, ताकि हमारा अपने विचारों पर भी पूर्ण संयम हो सके। मौन व्रत से हम अपने भीतर शक्ति का संचार कर सकते हैं। गांधी जी के शब्दों में :—

"कम बोलने वाला, शायद ही कभी, विचारों को बेकाबू होने देगा।"

इसलिए योग के साधक को मौन व्रत का अभ्यास करना आवश्यक है।

(५) योग-आसन की क्रियाएँ नवयुवकों को सिखानी आवश्यक हैं ताकि उनके आगामी जीवन की बुनियाद दृढ़ हो सके। इसके फलस्वरूप युवकों का जीवन, आचार-व्यवहार और विचार अपने देश और विश्व के लिये उपयोगी बन सकेगा।

(६) साधारण व्यक्ति के लिये सत्संग में जाना और अच्छी धार्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय भी योग-साधना का एक अच्छा उपाय है। सत्संग में भक्ति पूर्ण भजन हों और वे श्रद्धापूर्वक गाये जाएँ।

इस प्रकार योग से मानव के मानसिक और आत्मिक विकास में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सहायता मिलेगी जिसका आधार श्रद्धा होगी। इस मार्ग में श्रद्धा पर विशेष बल दिया गया है। श्रद्धा से ही प्रेम उपजता है। प्रेम से ही पूर्ण आनन्द की प्राप्ति होती है।

(७) प्रत्येक व्यक्ति को अपने लिए अपना अनुकुल समय खोज लेना चाहिए। पर योग में बैठने के लिए दो समय ही श्रेष्ठ हैं—एक सूर्य के आने से पहले और एक सूर्य के जाने के बाद, प्रातः लगभग ५ बजे और सायं लगभग ६ बजे, अपने हालात के अनुसार। इस समय साधना करनी आवश्यक है। केवल शरीर के लिए ही नहीं किन्तु मन के लिए भी, क्योंकि, योगियों के शब्दों में:—

बहुत सारी बीमारियों का कारण मनोविकार होते हैं
और स्वस्थ मन स्वस्थ शरीर के लिए सहायक होता है।

समाप्त

❀❀

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation Chennai

क्या आपका कोई मित्र है ?

या

आप का कोई सम्बन्धी है.....

तो क्या

आप यह नहीं चाहते कि—

जन-ज्ञान का सन्देश

उन तक भी पहुँचे ?

फिर क्यों नहीं आज ही उन्हें भी

सदस्य बना कर धर्म लाभ उठाते ?

हमारी इच्छा है कि 'जन-ज्ञान'

अब १० हजार छपे

यह इच्छा एक दिन में पूरी हो सकती है यदि

आप केवल एक नया सदस्य

बना कर भेज दें।

१० हजार 'जन-ज्ञान' शीघ्र से शीघ्र

छपना ही चाहिए।

विनीत

भारतेन्द्रनाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भारी संख्या में बांटें

अनुपम वैदिक साहित्य

१. **वैदिक सत्संग पद्धति (हिन्दी व अंग्रेजी)**
हिन्दी और अंग्रेजी में एक साथ, प्रत्येक मंत्र के प्रत्येक शब्द की अन्वय सहित व्याख्या: अंग्रेजी और हिन्दी में मूल्य २रु०। सजिल्द का मूल्य २॥रु०।

२. **वैदिक सत्संग पद्धति (हिन्दी) नया संस्करण**
(केवल हिन्दी में) इसमें प्रत्येक मंत्र के साथ उसका अर्थ दिया गया है। २८ पौंड बढ़िया कागज, तिरंगा बढ़िया आवरण, महर्षि का तिरंगा चित्र। २८ पौंड कागज, चुने हुए, भजन। ८४ पृष्ठ। मूल्य ६० पैसे। ५०) सैकड़ा।

३. Ten Commandments of the Arya Samaj स्व० पण्डित चमूपति एम० ए० लिखित आर्य समाज के दस नियमों की पूर्ण प्रभावकारी व्याख्या, जिसका मूल्य पहले १ : ५० था अब केवल एक रु० प्रति। ७)५० की १० प्रतियाँ मिल रही हैं। पुस्तक में महर्षि का चार रंग में चित्र अपूर्व है।

४. Vedic Way of life —ला० दीवानचन्द्र कृत—१)

५. Layers of life —ला० दीवान चन्द कृत—२)

६. Message of the Arya Samaj to the Universe.
—भारतेन्द्र नाथ लिखित ३० पैसे। २५) सैकड़ा

७. Vedic Sandhya & Prayer संध्या और प्रार्थना दोनों की हिन्दी अंग्रेजी में व्याख्या। ३० पैसे। २५) सैकड़ा

८. **वैदिक गीता (भाष्य)** २)
महान् विद्वान् स्व० आत्मानन्द जी का यह गीता भाष्य प्रचार की दृष्टि से अनुपम है। कर्म और प्रेरणा के अद्भुत संगम इस भाष्य की अपनी विशेषता है। योगेश्वर कृष्ण का तिरंगा चित्र और उनका वीर वेश देखकर आप मुग्ध हो जायेंगे।

९. **योगेश्वर कृष्ण**—भगवान् कृष्ण का यह जीवन चरित्र लाखों व्यक्तियों तक पहुँचाना चाहिये। ब्र० जगदीश विद्यार्थी एम० ए० लिखित मूल्य ४० पैसे। ३०) सैकड़ा।

१० **क्रान्तिकारी दयानन्द**—युग प्रर्वतक दयानन्द के क्रांतिकारी स्वरूप से सभी को परिचित कराने हेतु पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। प्रोफेसर संतराम एम० एस० सी० लिखित।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

११. **यज्ञ प्रसाद** —महात्मा आनन्द स्वामी कृत मूल्य ४० पैसे। ३०) सैकड़ा आप यज्ञ करते होंगे तो यज्ञ के बाद प्रसाद भी बाँटते ही होंगे। यह प्रेरक महात्मा जी का रचना प्रसाद है। इसे मंगाइये और भावना फैलाने हेतु वितरण कीजिए।

१२. **गीत मंजरी**..... ..... ८० पैसे

ईश्वर भक्ति के गीत और प्रभु से प्रार्थना करते हुए यदि आप सचमुच अपने आप को भुलाना चाहते हैं तो गीत मंजरी का सहारा लीजिए। पुस्तक अपने ढंग की अनूठी है।

१३. **ज्ञान प्रकाश** —हरिशरण सिद्धांतालकार मूल्य १) ५० पैसे
—दीनानाथ सिद्धांतालंकार

आर्य समाज के २ विद्वानों की लेखनी ने सत्यार्थ प्रकाश का सार जिस आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है वह प्रचार के लिए अनुपम है। सत्यार्थ प्रकाश के गूढ़ रहस्यो तक पहुँचने के लिए ज्ञान प्रकाश पढ़िए, और प्रसारित कीजिए—१०) की १० प्रति, और ७५) सैकड़ा। शीघ्र मंगाइए, स्टाक बहुत थोड़ा है।

१४. **वेद ज्योति**—४०० मंत्रों का अर्थ सहित संग्रह—मूल्य ३)।

१५. **प्रार्थना मंत्र व्याख्या**—प हरिशरण जी सिद्धांतालंकार लिखित प्रार्थना मंत्रों की अनुपम व्याख्या। मूल्य ४० पैसे

१६. **भारत की अवनति के ७ कारण**——ब्र० जगदीश एम० ए० की लोह लेखनी द्वारा लिखित पृष्ठ ६८। मूल्य ४० पैसे। ३५)। सैकड़ा २५०) हजार।

१६. Light of Truth.....७५ पैसे।

१८. **वैदिक अध्यात्म ज्योति**—४०८ मंत्रों का अर्थ सहित संग्रह मूल्य २)

यह सम्पूर्ण साहित्य भारी संख्या में मंगा कर
अपने क्षेत्र पर वेद पताका लहराइए

जन-ज्ञान प्रकाशन

१५९७, हरध्यान सिंह रोड़, (निकट ३१ नाई वाला)
करौल बाग नई दिल्ली-५

अपने आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर कुल व्यय का २०
प्रतिशत साहित्य वितरण पर लगाइए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

निम्न ग्रंथ प्रकाशन के लिए आपके सहयोग की प्रतीक्षा में हैं

१. **वेद और बाइबिल**—इस अनुपम पुस्तक में आमने-सामने एक ही विषय पर वेद और बाइबिल प्रस्तुत किए गए हैं, वेद मंत्रों के अर्थ भी हैं। पुस्तक कितनी उपयोगी होगी इसकी कल्पना ही करें—पृष्ठ हैं लगभग १००। इसके प्रकाशन के लिए कम से कम १०००) चाहिए।

२. The Light of the Vedes—आर्य समाज के [एक महान् विद्वान द्वारा ५०० के लगभग वेद मंत्रों का अंग्रेजी अनुवाद बिल्कुल तैयार है। विदेशों में वेद की माँग पूरी करने का यह आरम्भिक साधन होगा। प्रकाशन के लिए २०००) चाहिएं—पृष्ठ होंगे २००।

३. **वैदिक सिद्धान्त**—आर्य समाज के धुरन्धर विद्वान् और साराजीवन आर्य समाज के लिए अर्पित करने वाले विद्वान् की अमर कृति। पृष्ठ २००। धन चहिए २०००)

४. **वैदिक-धर्म-परिचय**—आर्य समाज के विचारक विद्वान और नेता एक संसद सदस्य द्वारा लिखित ग्रंथ प्रेस में जाने के लिये बिल्कुल तैयार है। नयी शैली और नये ढंग में पुस्तक अनुपम है। धन चाहिये २०००)

५. **५२ वेद मंत्रों की व्याख्या**—४०० पृष्ठों के लगभग तैयार है। हम इसे वेद प्रचार सप्ताह पर २५००० छापना चाहते हैं। लागत से भी कम में देना चाहते हैं। घर-घर पहुँचाना चाहते हैं। घाटा उठाने के लिये धन चाहिये ५०००)

ऐसे ही लगभग २० ग्रंथ तैयार हैं। प्रभु का आशीर्वाद और ऋषि दयानन्द के सैनिकों का प्यार मिला तो १९७१ के आरम्भ तक सभी छपेंगे और आर्य समाज का गौरव बढ़ेगा।

भाइयो और बहनो!

यदि आपका कर्तव्य आपको प्रेरणा दे सके तो वैदिक-ज्योति प्रसार के लिये भूखे रहकर भी साधन जुटाओ।

आपकी शक्ति ही हमारा बल है—

विनीत

भारतेन्द्र नाथ

संचालक

जन-ज्ञान-प्रकाशन

१५९७, हरध्यानसिंह रोड, नई दिल्ली ५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation Chennai

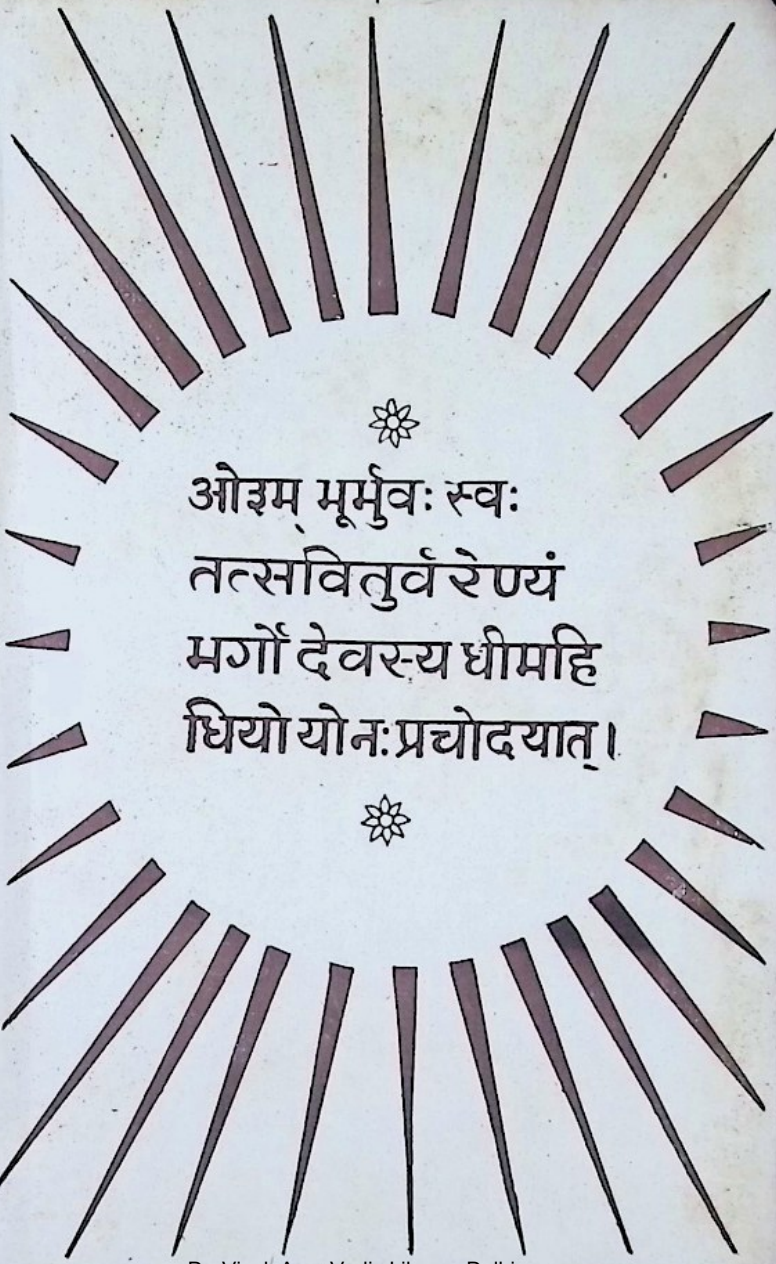

ओ३म् भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात्।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन-ज्ञान (मासिक) अप्रैल Rd. No.
नई दिल्ली-५ १९७० D. 1631

गायत्री-महामन्त्र के अर्थ पर विचार करना चाहिए। इस मन्त्र द्वारा, सारे विश्व को उत्पन्न करने वाले परमात्मा का जो उत्तम तेज है उसका ध्यान करने से बुद्धि की मलिनता दूर हो जाती है और धर्माचरण में श्रद्धा और योग्यता उत्पन्न होती है। दूसरे किसी मत में प्रार्थना के मन्त्रों की ऐसी गहराई और सच्चाई नहीं है।

—महर्षि दयानन्द

संपादक-मुद्रक-प्रकाशक—श्रीमती पंडिता राकेश रानी द्वारा
रायसीना प्रेस, दिल्ली में मुद्रित।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi